बुन्देलखण्ड की कृष्ण काव्य परम्परा में
"कृष्ण चन्द्रिका"
का अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की
उपाधि हेतु प्रस्तावित

शोध प्रबन्ध

शोधकर्ता :—
श्रीमती राधा रावत
प्रवक्ता
कस्तूरबा कन्या इण्टर कालेज, झांसी

शोध-निर्देशक :—
डा० सियाराम शरण शर्मा
पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती राधा रावत ने मेरे निर्देशन में "बुन्देलखण्ड की कृष्ण काव्य परम्परा में "कृष्ण चन्द्रिका" का अध्ययन" विषय पर पी-एच0डी0 के लिए यह अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण किया है । इन्होंने अत्यन्त सूझ-बूझ एवं मौलिक दृष्टि से शोध-कार्य सम्पन्न किया है । इनका मुख्य शोध "रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका" पर आधारित है । बुन्देलखण्ड में कृष्ण चन्द्रिका की एक परम्परा रही है, किन्तु "रूपसिंह की कृष्ण चन्द्रिका" पर सर्वप्रथम इन्होंने शोधपरक दृष्टि से इसका मूल्यांकन एवं विवेचन प्रस्तुत किया है, जिसे एक साहित्यिक एवं समीक्षात्मक उपलब्धि स्वीकार किया जायेगा ।

यह भी प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती राधा रावत ने शोध कार्य पूर्ण करने के लिए मेरे निर्देशन के अवसर पर मेरे समक्ष 200 दिवस से अधिक की उपस्थिति दी है ।

स्थान : झाँसी
दिनांक: 1-12-1989·

सियाराम शरण शर्मा

(डॉ0 सियाराम शरण शर्मा)
शोध पर्यवेक्षक
पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी·

विषय - सूची

क्र0	विषय	पृष्ठ-संख्या

—— क्रमशः दो पर.

—— :0: ——

प्राक्कथन

बुन्देलखण्ड भारत का वह भू-भाग है जो अति प्राचीनकाल से ही सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। आज बुन्देलखण्ड आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भले ही पिछड़ा हो, किन्तु उसका अतीत अत्यन्त समृद्धशाली रहा है। बुन्देलखण्ड अभी भी ऐसी महान विभूतियों से विभूषित है, जिनपर अभी साहित्य इतिहास लेखकों और आलोचकों की दृष्टि पूरी तरह से नहीं जा सकी है। यहाँ का अल्पज्ञात एवं अज्ञात साहित्य जीर्णशीर्ण बस्तों में बँधा हुआ दीमकों की भोज्य सामग्री बना हुआ है। अनेक दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियाँ शोधकर्ताओं की अपेक्षा कर रही हैं। ऐसी ही एक महत्वपूर्ण कृति ठाकुर रूपसिंह द्वारा रचित "कृष्ण चन्द्रिका" को मैंने अपनी शोध-यात्रा में ढूँढ़ निकाला। इसे बुन्देलखण्ड की विशिष्ट साहित्यिक उपलब्धि मानते हुये मैंने इस पर शोध कार्य करने का निश्चय किया। बुन्देलखण्ड में "कृष्ण-चन्द्रिका" लेखन की जो परम्परा रही है उसमें इस ग्रन्थ का अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत् कृष्ण काव्य धारा को प्रवाहित करनेवाले प्रथम कवि मैथिल कोकिल विद्यापति हैं। विद्यापति ने कृष्ण काव्य की जिस माधुर्य धारा का प्रादुर्भाव किया है, उस पर गीत गोविन्दकार जयदेव का विशेष प्रभाव माना जा सकता है। जयदेव का काव्य संस्कृत साहित्य की वस्तु है अतः विद्यापति से ही हिन्दी कृष्ण काव्य धारा का श्रीगणेश होना सिद्ध होता है। हिन्दी में कृष्ण काव्य धारा को व्यापक रूप प्रदान करने का श्रेय महात्मा सूरदास को जाता है।

सूर के उपरान्त हिन्दी कृष्ण काव्य की एक सुदीर्घ परम्परा विच्छिन्न रूप में मिलती है जिसमें सूर के अनुकरण पर ही श्रृंगार एवं वात्सल्य से परिपूर्ण मधुर गीत गाये गये हैं। इस परम्परा में सर्वप्रथम अष्टछाप के वे कवि आते हैं, जिन पर वल्लभाचार्य एवं गोस्वामी विट्ठलनाथ की विशेष कृपा थी तथा जो उक्त दोनों आचार्यों के आग्रह एवं अनुरोध पर ही विभिन्न राग-रागिनियों में कृष्ण भक्ति सम्बन्धी विभिन्न गीतों का प्रणयन किया करते थे। इनमें से सूर के अतिरिक्त कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविन्द - स्वामी, नन्ददास एवं चतुर्भुजदास प्रसिद्ध हैं। अष्टछाप के इन कवियों के उपरान्त कृष्ण काव्य धारा में मीराबाई का भी विशेष स्थान है। कृष्ण भक्ति की इस धारा को आगे बढ़ाने में मीराबाई के पश्चात् नरोत्तमदास, हरीराम, गोविन्द-दास, स्वामी हरिदास तथा हितहरिवंश आदि का भी उल्लेख आवश्यक है।

रीतिकाल में आकर कृष्ण काव्य की यह धारा भक्ति के पावन क्षेत्र से हटकर भौतिक विलास के क्षेत्र की ओर मुड़ गयी जिसके फलस्वरूप रीति ग्रन्थों एवं श्रृंगारपूर्ण मुक्तकों की रचना अत्यधिक हुयी, किन्तु भक्ति भावना से युक्त कृष्ण काव्य धारा को आगे बढ़ाने में ग्वाल कवि घनानन्द, भगवत् रसिक नागरीदास, अलबेली कवि हित वृन्दावनदास, ब्रजवासीदास, कृष्णदास, गिरधर-दास, सरयूराम आदि ने अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर कृष्ण काव्य की रचनायें कीं।

आधुनिक काल में भी कृष्ण काव्य का पर्याप्त प्रणयन हुआ, पर आधुनिक कालीन कवियों में भक्तिकालीन कवियों की भाँति न तो उतनी भावोत्कृष्टता है और न उतनी तीव्रानुभूति ही। आधुनिक कृष्ण-भक्त कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथदास रत्नाकर, अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", वियोगी हरि, मैथिलीशरण गुप्त आदि अनेक उल्लेखनीय कवि हैं, जिन्होंने इस परम्परा को प्रवहमान रखा।

हिन्दी साहित्य की भाँति ही बुन्देलखण्ड में भी कृष्ण भक्ति का विकास अत्यन्त प्राचीनकाल से हुआ है। उत्तरी भारत में कृष्ण भक्ति का विकास चौदहवीं व पन्द्रहवीं शती में हुआ। उसी समय बुन्देलखण्ड में भी कृष्ण-

भक्ति की लहर उठी । कृष्ण भक्ति की परम्परा का यह प्रभाव ग्वालियर, ओरछा, पन्ना आदि राज्यों पर भी पड़ा । बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य परंपरा का प्रवर्त्तन विष्णुदास से माना जाता है, इनका रचनाकाल 1435-43 ईस्वी माना गया है । बुन्देलखण्ड में कृष्ण का ऐश्वर्यात्मक रूप अधिक चित्रित हुआ है, बाद में माधुर्यात्मक । बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य के उद्भव काल में ही संगीत के उत्कर्ष के कारण रागबद्ध पदों की सृष्टि हुयी और उसी का प्रभाव सूरदास पर भी पड़ा । बुन्देलखण्ड में कृष्ण भक्ति विषयक अनेक प्रबन्ध रचे गये अतः यहाँ का कृष्ण काव्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है । बुन्देलखण्ड के कृष्ण काव्य का वर्गीकरण कई रूपों में किया जा सकता है । उदाहरणार्थ — भक्ति भावना की दृष्टि से माधुर्यात्मक, ऐश्वर्यात्मक, गीतात्मक एवं प्रबन्धात्मक सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से उसे दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । सम्प्रदायबद्ध व सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण काव्य । बुन्देलखण्ड में सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में सम्प्रदायबद्ध कृष्ण भक्ति का विकास हुआ । राधावल्लभ एवं सखी सम्प्रदायों का ही प्रभाव अधिक दृष्टि - गोचर होता है । यहाँ वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख कवि गोविन्द स्वामी और राजा आसकरन हैं । राधावल्लभ सम्प्रदाय में हरीराम व्यास, दामोदरदास, चतुर्भुजदास, मुरलीधर, रसिकदास, हितराम कृष्ण चौबे, हठी जिव, गरीबदास गोस्वामी आदि कुछ प्रमुख कवि हैं । सखी सम्प्रदाय के प्रमुख कवि नरहरिदास, स्वामी रसिकदास, रसिकदेव, ललित मोहनीदास आदि हैं ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्य धारा को उतना महत्व प्रदान नहीं किया गया जितना सम्प्रदायबद्ध को । भक्तिप्रधान होने के कारण यह धारा अनुभूति प्रधान एवं काव्य सौष्ठव से परिपूर्ण है । इसके प्रवर्त्तक विष्णुदास हैं ।

बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य की प्रबन्ध धारा नखशिख परम्परा, लीला-काव्य परम्परा, मंगल काव्य परम्परा आदि के रूप में भी विकसित हुई । बुन्देलखण्ड में नखशिख परम्परा का प्रवर्त्तन 16वीं शताब्दी में ओरछा के कवि बलभद्र मिश्र ने किया । इस परम्परा के ग्रन्थ मुक्तक रूप में भी उपलब्ध हैं ।

लीला काव्य परम्परा आख्यानक गीत व प्रबन्ध दो रूपों में मिलती है । आख्यानक गीतों में गेयता ही प्रमुख होती है । गेय लीला काव्य बुन्देलखण्ड में उपलब्ध है, किन्तु इन पर अभी शोध नहीं हुआ है । लीला काव्य परम्परा के प्रमुख कवि विष्णुदास माने जा सकते हैं । यों तो इस परम्परा में स्वतिन सुजान-सिंह के आश्रित कवि मेघराज, बुन्देलखण्ड के राजा बलसिंह, मंचित द्विज, लाल-कवि, द्विज हरिकेश, ओरछा राज मन्दिर के पुजारी पण्डित मोहनदास, प्रागदत्त, पद्माकर, मानदास, नवलसिंह, वृषभान कुँवरि, उम्मेदसिंह व्यास, गंगाधर व्यास आदि अनेक प्रतिनिधि कवि हैं ।

बुन्देलखण्ड में कृष्ण चरित काव्य परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । इस परम्परा में कवि विक्रम, बीरकवि, दीवान अमरसिंह, गोपाल कवि आदि प्रमुख हैं । बुन्देलखण्ड में मंगल काव्य परम्परा विष्णुदास कृत रुक्मिणी मंगल से प्रारम्भ होती है । कृष्ण काव्य की कथापरक प्रबन्ध काव्य धारा का बुन्देलखण्ड में प्रवर्त्तन विष्णुदास ने 1435 ई० में किया था तब से 19वीं शती के अन्त तक इस काव्य धारा में अनेक प्रबन्धों की रचना हुई । कृष्ण काव्य धारा के प्रबन्धकार तुलसी और केशव की शैलियों के अनुग रहे हैं । तुलसी की शैली को कृष्णायन (रामायण) की शैली और केशव की शैली को कृष्ण चन्द्रिका (रामचन्द्रिका) की शैली कहा जा सकता है । कृष्ण काव्य धारा के प्रबन्धकारों ने इन्हें काव्य गुरु मानकर इनकी प्रबन्ध शैलियों का अनुसरण किया है ।

इस प्रबन्ध काव्य धारा को मुख्य रूप से तीन धाराओं में विभाजित किया जा सकता है । (1)-कृष्णायन काव्य परम्परा, (2)-कृष्ण चन्द्रिका काव्य परम्परा, (3)-अन्य कथापरक प्रबन्ध काव्य परम्परा । कृष्णायन काव्य परम्परा का प्रवर्त्तन गुमानकृत कृष्णायन से माना जा सकता है । इस परम्परा के द्वितीय कवि मंचित द्विज हैं । बाद में बिहारीदास शुक्ल, बसन्त महाराज, राधेश्याम-कथावाचक, पण्डित रामस्वरूप मिश्र, पण्डित द्वारका प्रसाद मिश्र आदि कवियों ने भी इस परम्परा में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया ।

कृष्णायन काव्य परम्परा के समानान्तर कृष्ण चन्द्रिका काव्य परंपरा भी बुन्देलखण्ड की ही देन है। जिसका प्रारम्भ द्विज गुमान ने केशवकृत राम-चन्द्रिका की शैली पर किया। इस परम्परा के अन्य प्रमुख कवि श्रीमोहनदास मिश्र हैं। बाद में बख्शराम जी, राधाकृष्ण चौबे, लैंढ़ा के कवि श्रीबाबूरामजी, बल्देवदास एवं समथर के कवि श्रीरूपसिंह ठाकुर "रूपराम" ने भी इस परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया।

अन्य कथापरक प्रबन्धों के अन्तर्गत् खण्ड काव्य या प्रबन्ध काव्य आते हैं। बुन्देलखण्ड में ऐसे ग्रन्थों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई है। इन प्रबन्धों का प्रमुख प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत् है। इस परम्परा के अन्तर्गत् रघुराम कायस्थ, ओरछा के दिवान कवि कुँवर मेदिनीमल जू, श्रीरसाचौबे, प्रेमदास गहोई, आदि उल्लेखनीय कवि हैं।

ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण चन्द्रिका की रचना संवत् 1956 में हुई। अधिकांश कृष्ण भक्त कवियों की भाँति श्रीमद्भागवत् से प्रभावित होकर समथर स्टेट के अंतर्गत् मौजा बसैया के निवासी ठाकुर रूपसिंह ने संवत् 1956 में अपने ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ की। कवि ने अपनी कृष्ण चन्द्रिका में घटनाओं का संयोजन व वर्णन बड़ी कुशलता से किया है। महत्वपूर्ण प्रसंगों का विस्तृत वर्णन है। ग्रन्थारम्भ गणेश-वन्दना से किया है। कथानक 90 अध्यायों में विभक्त है। कवि की विशेषता यह है कि उसने एक ही दोहे में आधार ग्रन्थ का नाम तथा अध्याय का उल्लेख कुशलता-पूर्वक किया है। उक्त कृष्ण चन्द्रिका का नामकरण भी कवि ने शायद रामचन्द्रिका अथवा पूर्वरचित कृष्ण चन्द्रिकाओं के आधार पर ही किया होगा। कृष्ण काव्य धारा की इस परम्परा में ठाकुर रूपसिंहकृत् यह कृष्ण चन्द्रिका ही मेरे शोध-ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य है।

कृष्ण चन्द्रिका का प्रबन्ध सौष्ठव बहुत उत्तम है। कथा का आधार श्रीमद्भागवत् का दशम् स्कन्ध है। घटनायें शृंखलाबद्ध तथा कथा को गति प्रदान करनेवाली हैं। कथा में प्रमुखतः कृष्ण के शौर्यपूर्ण तथा चमत्कारी कार्यों का वर्णन है। कवि ने वात्सल्य एवं शृंगार के अत्यन्त मार्मिक व सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं।

कवि का रासलीला वर्णन पाठक को स्वत: रास रंग में निमग्न कर देता है ।

इनकी भाषा का अपना अलग ही माधुर्य है । ग्रन्थ में बुन्देली,ब्रज-भाषा और खड़ी बोली का सफल प्रयोग हुआ है । भाषा क्लिष्टता और कृत्रिमता से कोसों दूर है । विविध छन्दों का सफल प्रयोग कवि के पिंगल पारायण होने का परिचय देता है । श्रृंगार वर्णन मर्यादित है ।

रूपसिंह एक प्रतिभाशाली कवि हैं । कृष्ण भक्ति उनमें रम रही थी, अत: उनकी काव्य शक्ति कृष्ण लीला वर्णन में फूट पड़ी है । कृष्ण चन्द्रिका एक बृहदाकार ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में तत्कालीन बुन्देली संस्कृति एवं लोकजीवन का सफल चित्रण है । प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने मुख्य रूप से कृष्ण की पाप संहारक शक्ति, लोक-मंगलकारी व लोकरंजक रूप का ही चित्रण किया है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ठाकुर रूपसिंह अपने युग के सचेतन कवि हैं, वे अपने समय में प्रचलित विभिन्न काव्य धाराओं, विविध भावों एवं अभिव्यक्ति शैली के प्रति जागरूक रहे हैं । उनका मूल्यांकन साहित्य के विविध पक्षों के प्रहरी के रूप में किया जा सकता है । समकालीन कवियों में उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

ऐसे अज्ञात किन्तु समर्थ रचनाकार की श्रेष्ठ कृति का परिचय प्रथम बार मेरे इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत के समक्ष सम्यक् रूप से प्रस्तुत हो रहा है । पूर्ण विश्वास है कि मेरा यह शोध प्रबन्ध ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका को हिन्दी साहित्य के कृष्ण काव्य में सम्मानित स्थान पर प्रतिष्ठापित कराने में अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे अनेक प्रमुख विद्वानों, पत्र-पत्रिकाओं एवं अन्यान्य साहित्यकारों से समय-समय पर सहयोग प्राप्त होता रहा है, अत: इनके प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ । उल्लेखनीय विद्वानों में पण्डित गौरीशंकर द्विवेदी "शंकर", डॉ०भगवानदास माहौर, डॉक्टर नर्मदा प्रसाद गुप्त, डॉ० राधा वल्लभ शर्मा की भी मैं हृदय से आभारी हूँ । इनके शोध निबन्धों से मुझे पर्याप्त मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है ।

अन्त में मैं अपने शोध निर्देशक एवं बुन्देली साहित्य के मर्मज्ञ श्रेष्ठ डॉ० सियारामशरण शर्मा की भी अत्यधिक आभारी हूँ, जिन्होंने अपना अमूल्य समय प्रदानकर मेरा निर्देशन ही नहीं किया वरन् तद्विषयक सामग्री जुटाने में भी यथाशक्य सहयोग प्रदान किया है।

इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने तक मुझे अपने आदरणीय पति श्री भगवत नारायण रावत, एम०ए० (हिन्दी) का भी भरसक सहयोग प्राप्त होता रहा है। अतः उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

राधारावत

(श्रीमती राधा रावत)
शोध छात्रा
359, नई बस्ती, झाँसी.

दिनांक: 31-10-1989.

—— :o: ——

प्रथम अध्याय

—— :o: ——

अध्याय प्रथम

हिन्दी साहित्य में कृष्ण काव्य परम्परा

भारतीय धर्म एवं संस्कृति के इतिहास में कृष्ण का विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है। कृष्ण के बिना भारतीय धर्म अपूर्ण है एवं साहित्य रसहीन। कृष्ण की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान कृष्ण को ऐतिहासिक युग पुरुष स्वीकार करते हैं तो कुछ अर्द्ध ऐतिहासिक तो कुछ काल्पनिक। कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद[1] {1/116, 8/1, 8/85} में मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार कृष्ण एक स्तोता ऋषि सिद्ध होते हैं। छांदोग्य उपनिषद्[2] में कृष्ण का उल्लेख देवकी के पुत्र, घोर आंगिरस के शिष्य एवं वैदिक ऋषि के रूप में उपलब्ध होता है। महाभारत[3] में कृष्ण का चित्रण पांडवों के सखा एवं प्रभावशाली राजनीतिज्ञ के रूप में हुआ है। महाभारत के अंतिम अंशों में कृष्ण का चित्रण विष्णु के अवतार के रूप में हुआ है। "सभा पर्व" में शिशुपाल के कुछ शब्दों के अतिरिक्त महाभारत

1- ऋग्वेद।

2- छांदोग्य उपनिषद्।

3- महाभारत।

में कृष्ण के गोप जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता । परवर्ती पुराणों - हरिवंश, ब्रह्म, विष्णु, भागवत, ब्रह्म वैवर्त आदि में उनकी बाल्यावस्था सम्बन्धी आख्यानों व गोप जीवन सम्बन्धी क्रीड़ाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि दृष्टिगोचर होती है । कृष्ण की रासलीला एवं गोपियों के प्रेम का विस्तृत रूप में निरूपण लगभग नवीं शताब्दी में रचित भागवत पुराण[1] में हुआ है । इसमें कृष्ण की एक विशेष आराधिका गोप-बाला का भी उल्लेख हुआ है जो आगे ब्रह्म वैवर्त[2] पुराण में गोपियों में सर्वाधिक प्रभावशालिनी राधिका के रूप में चित्रित हुयी है । इस प्रकार वैदिक एवं संस्कृत साहित्य में कृष्ण के तीन रूप मिलते हैं । (1)- ऋषि एवं धर्मोपदेशक का (2)- नीतिकुशल क्षत्रिय नरेश का (3)- बाल एवं किशोर रूप में विभिन्न प्रकार की अलौकिक एवं लौकिक लीलायें दिखाने वाले अवतारी पुरुष का । प्रथम रूप का विकास गीता में, दूसरे का महाभारत में, और तीसरे का पुराणों में मिलता है । संभवतः महाभारत की महान क्रान्ति के पश्चात् वासुदेव कृष्ण अपने जीवनकाल में ही अपने समाज के लोगों के द्वारा पूजे जाने लगे थे । महाभारत युद्ध सामान्यतः 1400 ई० पूर्व के लगभग माना जाता है । महाभारत के पश्चात् 5-7 शताब्दियों तक कृष्ण की पूजा का प्रचार अधिक नहीं हो सका, किन्तु कुछ प्रदेशों व जातियों में अवश्य इसका प्रचलन रहा । आगे चलकर जब जैन और बौद्ध धर्म में क्रमशः महावीर और गौतम बुद्ध के चरित्र को महत्व मिला तो भागवत धर्म के प्रचारकों ने भी राम-कृष्ण जैसे ऐतिहासिक पुरुषों को सर्वशक्ति सम्पन्न घोषित करते हुये उनकी आराधना एवं भक्ति का प्रचार किया । मौर्य युग तक बौद्ध धर्म की प्रधानता के कारण कृष्ण भक्ति का अधिक प्रचार नहीं हो सका । गुप्तकाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार जोरों से हुआ और सातवीं-आठवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में भी कृष्ण भक्ति का प्रचार जोरों से हो गया ।

1- भागवत पुराण ।
2- ब्रह्म वैवर्त ।

आठवीं नवीं शती में शंकराचार्य एवं कुमारिल भट्ट के विचारों
के प्रभाव से भक्ति आन्दोलन अधिक तेज़ी से नहीं चल सका, किन्तु आगे
चलकर रामानुज (11वीं शती) मध्व (1199-1303 ई0) निम्बार्क
(12-13वीं शती) वल्लभ (1479-1530 ई0) चैतन्य (16 वीं शती)
हित हरिवंश (17वीं शती) आदि आचार्य एवं भक्त हुये जिन्होंने भक्ति
विरोधी सिद्धान्तों व वादों का खंडन करके भक्ति का प्रचार किया ।
12वीं शती से लेकर सत्रहवीं शती तक उन आचार्यों के द्वारा विभिन्न
सम्प्रदायों की स्थापना हुयी जिनमें कृष्ण भक्ति सम्बन्धित निम्बार्क
सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय एवं राधावल्लभ व वल्लभ सम्प्रदाय प्रमुख हैं ।
हिन्दी साहित्य में कृष्ण काव्य परम्परा का शुभारम्भ इन सम्प्रदायों के
आश्रय में हुआ ।

रामानुज से लेकर वल्लभाचार्य तक जितने भक्त दार्शनिक या आचार्य
हुये हैं सबका लक्ष्य शंकराचार्य के मायावाद और विवर्तवाद से पीछा छुड़ाना
था जिसके अनुसार भक्ति अविद्या या भ्रांति ठहरती थी । शंकर ने केवल
निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की थी ।
वल्लभाचार्य ने ब्रह्म में सब गुण माने उन्होंने सारी सृष्टि को लीला के लिये
ब्रह्म की आत्मकृति कहा ।

श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं जो दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर पुरुषोत्तम
कहलाते हैं । आनन्द का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम रूप में रहता है ।
अतः यही श्रेष्ठ रूप है । पुरुषोत्तम कृष्ण की सब लीलायें नित्य हैं । वे
अपने भक्तों के लिये व्यापी बैकुंठ में अनेक प्रकार की क्रीड़ायें करते हैं ।
गोलोक इसी व्यापी बैकुंठ का एक खंड है जिसमें नित्य रूप में यमुना,
वृन्दावन, निकुंज इत्यादि हैं । भगवान की इस नित्यलीला सृष्टि में प्रवेश
करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है ।

रामानुजाचार्य के समान वल्लभाचार्य ने भी भारत के बहुत से भागों में पर्यटन और विद्वानों से शास्त्रार्थकर अपने मत का प्रचार किया। अन्त में अपने आराध्य श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में आकर उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की और अपने शिष्य पूरनमल खत्री द्वारा गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का बड़ा भारी मन्दिर निर्माण करवाया तथा सेवा का बड़ा भारी विधान बांधा। वल्लभ सम्प्रदाय में जो आराधना पद्धति या सेवा-पद्धति ग्रहण की गयी उसमें भोग, राग तथा विलास की प्रचुर सामग्री के प्रयोग की प्रधानता रही। मंदिरों की प्रशंसा "वे स्वर्ग की पंक्तियाँ चली हैं।" कहकर होने लगी। भोग-विलास के इस आकर्षण का प्रभाव सेवक सेविकाओं पर कहाँ तक अच्छा पड़ सकता था। जनता पर चाहे जो प्रभाव पड़ा हो, पर उक्त गद्दी के भक्त शिष्यों ने सुंदर-सुंदर पदों द्वारा जो मनोहर प्रेम संगीत धारा बहाई उसने मुरझाते हुये हिन्दू जीवन को सरस और प्रफुल्ल किया। इस संगीत धारा में दूसरे सम्प्रदाय के कृष्ण भक्तों ने भी पूर्ण सहयोग प्रदान किया। सभी सम्प्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत[1] में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले, क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिये कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त समझा। उसमें राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का ही गायन किया।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के मधुर रूप का विशेष वर्णन होने से भक्ति क्षेत्र में गोपियों के ढंग के प्रेम का माधुर्य भाव का रास्ता खुला। इसके प्रचार में दक्षिण के मंदिरों की देवदासी प्रथा विशेष रूप में सहायक हुयी। दक्षिण में अंदाल नामी प्रकार की एक प्रसिद्ध भक्तिन हुयी है जिसका जन्म संवत् 773 में हुआ था। अंदाल के पद द्राविड़ भाषा में "तिरुप्पावइ" में मिलते हैं।

1- भागवत।

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों से सम्बन्धित दूसरा प्रमुख सम्प्रदाय राधा वल्लभ सम्प्रदाय है जिसकी स्थापना गोस्वामी हित हरिवंश ने संवत् 1590 के लगभग की। इस सम्प्रदाय का कोई अपना दार्शनिक मतवाद नहीं है। इसके प्रामाणिक ग्रन्थ हित चौरासी[1] और राधा सुधानिधि[2] (संस्कृत में) हैं। इस साहित्य में अध्यात्म पक्ष का विवेचन बहुत कम हुआ है। इस सम्प्रदाय के कवियों ने राधा कृष्ण की कुंज क्रीड़ा व कुंज विलास का ही चित्रण मधुर रूप में किया है। इस सम्प्रदाय के कवियों ने कर्म और ज्ञान का खंडन स्पष्ट रूप में करते हुये भक्ति का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार वल्लभ और राधा वल्लभ दोनों सम्प्रदायों में कृष्ण की माधुर्य भक्ति का प्रचार किया गया है।

कृष्ण काव्य परम्परा से सम्बन्धित तत्कालीन प्रमुख कवि और उनकी प्रतिनिधि रचनायें :-

कृष्ण भक्त कवियों में सबसे ऊँचा स्थान महाकवि सूरदास का है।

महात्मा सूरदास :-

इनके जन्म और निवास स्थान आदि के सम्बन्ध में कोई एक निश्चित बात नहीं मिलती। विभिन्न विद्वानों ने इनका जन्म सारस्वत ब्राह्मण कुल तथा सीही ग्राम में वैशाख शुक्ला पंचमी मंगलवार संवत् 1535 वि० को माना है। ये जन्मान्ध थे।

प्रतिनिधि रचनायें :-

सूरसागर,[3] साहित्य लहरी[4] और सूरसारावली[5] सूरसागर में भागवत के आधार पर कृष्ण लीला का गान किया गया है। सूरसारावली

1- हित चौरासी
2- राधा सुधानिधि
3- सूरसागर
4- साहित्य लहरी
5- सूरसारावली।

विषय वस्तु एवं शैली की दृष्टि से सूर-सागर से भिन्न है । साहित्य लहरी में श्रृंगार रस एवं नायिका भेद का प्रतिपादन शास्त्रीय आधार पर किया है ।

कुम्भनदास -

वल्लभ सम्प्रदाय के आठ प्रमुख कवियों में कुम्भनदास आयु की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सबसे बड़े थे । ये गृह-गृहस्थी का पालन करते हुये भक्ति भावना में लीन थे । इनके रचित कोई ग्रन्थ तो नहीं मिलते, किन्तु दो सौ के लगभग पद मिलते हैं जो कांकरोली के विद्या-भवन में संकलित हैं ।

परमानन्ददास -

अष्टछाप के तीसरे बड़े कवि परमानन्ददास थे । इन्होंने परमानन्द दास को पद,[1] दानलीला,[2] उद्धव लीला,[3] ध्रुव चरित,[4] संस्कृत रत्न माला[5] आदि ग्रन्थों की रचना की ।

कृष्णदास, गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुज दास आदि कवियों का भी अष्टछाप के कवियों में प्रमुख स्थान था ।

नन्ददास -

अष्टछाप में नन्ददास का स्थान सबसे बाद में आता है, किन्तु कवित्व की दृष्टि से उनका स्थान सूरदास को छोड़कर सबसे ऊंचा है । इन्होंने फुटकल पदों के अतिरिक्त भ्रमर गीत,[6] रूप मंजरी,[7] रस मंजरी,[8] नाम मंजरी,[9] रास पंचाध्यायी,[10] विरह मंजरी[11] आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की ।

1- परमानन्ददास को पद 2- दान लीला 3- उद्धव लीला
4- ध्रुवचरित 5- संस्कृत रत्न माला 6- भ्रमर गीत
7- रूप मंजरी 8- रस मंजरी 9- नाम मंजरी
10- रास पंचाध्यायी 11- विरह मंजरी ।

हित हरिवंश :

राधा वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में श्री हित हरिवंश द्वारा रचित "हित चौरासी"[1] बहुत प्रसिद्ध है ।

मीरा —

कृष्ण भक्त कवियों में राजस्थान की मीरा बाई का स्थान बहुत ही ऊँचा है । ये मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसाने वाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं । इनका जन्म संवत् 1573 में चोकड़ी नाम के ग्राम में हुआ था । मीराबाई की उपासना माधुर्य भाव की थी । वे अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतमा पति के रूप में करती थीं । इनके चार ग्रन्थ कहे जाते हैं । नरसीजी का मायरा,[2] गीत गोविन्द टीका,[3] राग गोविन्द,[4] राग सोरठ के पद ।

गदाधर भट्ट —

ये दक्षिणी ब्राह्मण थे । इनके जन्म संवत् आदि का ठीक पता नहीं है । इनके विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि ये चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे इसका समर्थन भक्त माल की निम्न पंक्तियों से होता है —

भागवत सुधा बरखे बदन,
काहू को नाहिंन दुखद ।
गुन निकर गदाधर भट्ट
अति सबहिन को लागे सुखद ।।

श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव संवत् 1542 में और गोलोकवास 1584 में माना जाता है । अतः संवत् 1584 के भीतर ही आपने श्रीमहाप्रभु से दीक्षा ली होगी ।

1- हित चौरासी
2- नरसीजी का मायरा
3- गीत गोविन्द टीका
4- राग गोविन्द ।

स्वामी हरिदास —

ये महात्मा वृन्दावन में निम्बार्क मतान्तर्गत् टट्टी सम्प्रदाय के संस्थापक थे और अकबर के समय में एक सिद्ध भक्त और कीर्तन कला कोविद माने जाते थे। कविताकाल 1600 से 1617 ठहरता है। प्रसिद्ध गायकाचार्य तानसेन इनका गुरुवत् सम्मान करते थे। इनके पदों के तीन चार संग्रह "हरिदासजी के ग्रन्थ"[1] "स्वामी हरिदासजी के पद"[2] "हरिदासजी की बानी"[3] आदि नामों से मिलते हैं।

सूरदास मदनमोहन —

ये अकबर के समय में संडीले के अमीन थे। जाति के ब्राह्मण और गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णव थे। ये जो कुछ पास में आता साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे। इनकी कविता इतनी सरस होती थी कि इनके बनाये हुये पद सूरसागर में मिल गये। इनकी कोई प्रसिद्ध पुस्तक नहीं है। इनका रचनाकाल संवत् 1590 और 1600 के बीच अनुमान किया जाता है।

श्री भट्ट —

ये निंबार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे। इनका जन्म संवत् 1595 में अनुमान किया जाता है। इनका कविताकाल संवत् 1625 या उसके कुछ आगे तक माना जाता है। इनकी कविता सीधी सादी व चलती भाषा में है। पद छोटे छोटे हैं। युगल-शतक[4] नाम का इनका 100 पदों का एक ग्रन्थ कृष्ण भक्तों में बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता है। "युगल शतक" के अतिरिक्त इनकी एक और छोटी सी पुस्तक आदि बानी[5] भी मिलती है।

1- हरिदासजी के ग्रन्थ　　2- स्वामी हरिदासजी के पद
3- हरिदासजी की बानी　　4- युगल शतक
5- बानी।

व्यास जी —

इनका पूरा नाम हरीराम व्यास था और ये ओरछा के रहने वाले सनाढ्य शुक्ल ब्राम्हण थे। ओरछा नरेश मधुकर शाह के ये राजगुरु थे। इनका काल संवत् 1620 के आसपास है। इन्होंने एक "रास - पंचाध्यायी"[1] भी लिखी है।

रसखान —

ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इन्होंने प्रेम वाटिका[2] में अपने को शाही खानदान का कहा है। ये बड़े भारी कृष्ण भक्त व गोस्वामी विट्ठलनाथजी के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता[3] में इनका वृतांत आया है। इनका रचनाकाल संवत् 1640 के बाद का ही माना जाता है। प्रेम वाटिका इनकी प्रसिद्ध रचना है। इसका रचनाकाल संवत् 1671 है। इनकी "सुजान रसखान"[4] भी अन्य प्रसिद्ध रचना है।

ध्रुवदास —

ये हित हरिवंशजी के शिष्य स्वप्न में हुये थे। इसके अतिरिक्त इनका और जीवन-वृत्त प्राप्त नहीं हुआ है। ये अधिकतर वृन्दावन में ही रहते थे। इन्होंने लगभग 40 ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें — वृन्दावनसत,[5] सिंगारसत,[6] रस रत्नावली,[7] नेह मंजरी[8], रहस्य मंजरी 9, सुख मंजरी [10], रति मंजरी [11], वन विहार[12], रंग विहार[13], रस विहार[14], आनन्द-दशा विनोद[15], प्रमुख हैं।

1- रास पंचाध्यायी
2- प्रेम वाटिका
3- दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता।
4- सुजान रसखान
5- वृन्दावनसत
6- सिंगारसत
7- रस रत्नावली
8- नेह मंजरी
9- रहस्य मंजरी
10- सुख मंजरी
11- रति मंजरी
12- वन विहार
13- रंग विहार
14- रस विहार
15- आनन्द दशा विनोद,।

कृष्णोपासक भक्त कवियों की परम्परा हिन्दी साहित्य में निरंतर गतिमान रही है । कृष्णगढ़ नरेश महाराज नागरीदास जी, अलबेली अलि जी, चाचा हित वृन्दावनदास जी भगवत रसिक आदि अनेक प्रसिद्ध हुये कृष्ण भक्त कवि हुये हैं । ये कृष्ण भक्त कवि हमारे हिन्दी साहित्य में प्रेम माधुर्य का जो सुधा स्रोत बहा गये हैं उसके प्रभाव से हमारे काव्य क्षेत्र में सरसता व प्रफुल्लता बराबर बनी रहेगी ।

बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य परम्परा :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर यदि गहनतम दृष्टि निक्षेप किया जाय तो ज्ञात होगा कि बुन्देलखण्ड में कृष्ण भक्ति का विकास अत्यन्त प्राचीनतम काल से हुआ है । महाभारत काल में बुन्देलखण्ड को चेदि तथा दशार्ण जनपदों के नाम से जाना जाता था । चेदि राजा यदुवंशी थे व उनके व्यवसाय में गोपालन व गोवर्धन का प्रमुख स्थान था । किन्तु इतिहास से ज्ञात होता है कि उस काल में बुन्देलखण्ड में कृष्ण पूजा का निषेध था । चेदि राजा शिशुपाल कृष्ण से वैमनस्य रखता था अतः शिशुपाल वध के पश्चात् ही कदाचित् कृष्ण भक्ति का विकास हुआ हो । कतिपय उदाहरणों से ज्ञात होता है कि बुन्देलखण्ड में भागवत धर्म का उत्थान शुंगकाल में ईसापूर्व दूसरी शती में हुआ । बेसनगर अभिलेख से ज्ञात होता है कि गरुड़ध्वज स्तंभ की स्थापना तक्षशिला के यूनानी राजा अंतलिकित के राजदूत हेलियो दोर ने भगवान वासुदेव की प्रतिष्ठा में की थी । यह राजदूत स्वयं को भागवत धर्म का अनुयायी समझता था । गुप्तकाल में बुन्देलखण्ड में भागवत धर्म के प्रसार के साक्ष्य मिलते हैं । उस काल तक बुन्देलखण्ड अवतारवाद से परिचित हो चुका था । गुप्त युग [300—600] में कृष्ण भक्ति की अभिव्यक्ति की एक प्रामाणिक जानकारी भी मिलती है । एरण में गुप्तकालीन खंभों के नीचे

जो आधार हैं उनमें कृष्ण लीला विषयक विविध पौराणिक दृश्य अंकित हैं । इससे स्पष्ट है कि गुप्तकाल में बुन्देलखण्ड की कलाओं में कृष्ण लीला को स्थान प्राप्त होने लगा था । पुराणकाल में बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत् विदिशा, दशार्ण, निषध तथा त्रिपुर का कुछ भाग आता है । अतः सिद्ध हो जाता है कि पुराणकाल में कृष्ण भावना का काफी प्रसार था ।

हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक ग्रन्थों में विष्णु मंदिर की प्रतिष्ठा का विवरण चन्देल व कलचुरिकाल में मिलता है । कृष्ण पूजा से सम्बन्धित कोई स्पष्ट सामग्री प्राप्त नहीं होती । इसके दो प्रमुख कारण हैं, क्योंकि चंदेल राजा शिवोपासक थे । इसके अतिरिक्त जनता में शक्ति-आराधना लोकप्रिय थी । उत्तरी भारत में कृष्ण भक्ति का विकास 14वीं व 15वीं शती में हुआ । इसी समय बुन्देलखण्ड में भी कृष्ण भक्ति की लहर उठी । कृष्ण भक्ति का सर्वप्रथम प्रभाव ग्वालियर पर पड़ा तत्पश्चात् ओरछा,पन्ना आदि राज्यों पर पड़ा । ग्वालियर में कृष्ण भक्ति के विकास के दो कारण हो सकते हैं । पहला तो यह है कि कृष्ण भक्ति की केन्द्र भूमि मथुरा, वृन्दावन व गोकुल ग्वालियर के निकट हैं । दूसरा उस समय ग्वालियर बुन्देलखंड में ऐसा राज्य था जहाँ कला,संस्कृति और भक्ति का संगम हुआ था। पहले कारण की अपेक्षा दूसरा कारण अधिक उचित है । ग्वालियर में जैन और नाथ संप्रदायों का प्रभाव तोमर काल में अधिक था । कृष्ण भक्ति का सम्प्रदाय मुक्त प्रचलन 15वीं शती से पूर्व लोक जीवन में था, क्योंकि कृष्ण काव्य की रचना का प्रारंभ वल्लभाचार्य के वृन्दावन में आने के 60-70 वर्ष पूर्व ही ग्वालियर में कवि विष्णुदास व कवि मेघनाथ द्वारा हो चुका था । इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण भक्ति का विकास 1420 ई० में काव्य रचना के कम से कम 20-30 वर्ष पूर्व हुआ होगा ।

तोमरों के पतन के बाद ओरछा बुन्देली संस्कृति का केन्द्र बना । ओरछा नरेश मधुकर शाह वैष्णव थे व नृसिंह के उपासक थे । बाद में वे कृष्णोपासक हो गये थे । वीरसिंह देव ने सं० 1671 (1614 ई०) में ब्रज-यात्रा

की थी और 1618 ई0 में कृष्ण जन्म के स्थान पर केशवराय जी के मंदिर का निर्माण करवाया था । प्रणामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्राणनाथ ने महाराज छत्रसाल के समय में अपने धर्म का प्रचार करते हुये कृष्ण की रासलीला को सर्वाधिक महत्व दिया । छत्रसाल के समय में बुन्देल भूमि कृष्ण भक्ति का मेरुदंड बन गयी थी । स्वयं महाराज छत्रसाल कृष्ण की भक्ति में तत्पर रहते थे । ओरछा के राजमहल,लक्ष्मीनारायण मंदिर में चित्रित प्रमुख चित्र वस्तु के रूप में कृष्ण लीलायें इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । इस प्रकार बुन्देलखंड में कृष्ण भावना के उद्भव,विकास और उत्कर्ष की कथा कृष्ण-काव्य-धारा के समानान्तर चली है ।

डॉ0 मुंशीराम शर्मा सोम ने वैष्णव भक्ति के विकास के नारायण युग, राजा वसु उपरिचर युग और श्रीकृष्ण युग के नाम से तीन युग बताये हैं । इतिहासकारों ने दूसरे युग के उद्धारक राजा उपरिचर को चेदि का राजा घोषित किया है इस प्रकार बुन्देलखण्ड वैष्णव भक्ति के उद्भव की भूमि रही है । तीसरे युग में भक्ति योग के प्रतिष्ठापक श्रीकृष्ण भी यदुकुल के नाते इसी भूमि से सम्बंधित थे अतः कृष्ण काव्य धारा के विकास में बुन्देलखण्ड के योग-दान को नकारा नहीं जा सकता है ।

<u>बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य परम्परा की समीक्षा व अध्ययन :-</u>

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत् कृष्ण काव्य धारा को प्रवाहित करने वाले प्रथम कवि मैथिल कोकिल विद्यापति हैं और इसको भारत व्यापी बनाने का कार्य महात्मा सूरदास ने किया है । डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट किया है कि विद्यापति की पदावली का प्रभाव पूर्व की ओर रहा है और पश्चिमी भारत में यह परम्परा पहले से ही चली आ रही थी । प्रमाण के लिये उन्होंने 11वीं सदी के आचार्य क्षेमेन्द्र के दशावतार चरितम्[1] का उल्लेख किया है । कर्णामृत का बाल्या खंड[2] भी कृष्ण गेय काव्य है जो आज भी सर्वत्र गाय

1- दशावतार चरितम् ।   2- बाल्या खण्ड

के साथ गाया जाता है । 13वीं शती के परवर्तीय कृत "संगीत समय सार"[1] ग्रन्थ में महोबा के चंदेल नरेश परमार्दि देव को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया गया है । इससे स्पष्ट है कि 12वीं 13वीं शती में ऐसे काव्य की रचना अवश्य हुयी थी । अतः बुन्देलखण्ड में इस परम्परा का उद्भव 12वीं या 13वीं शती से मानना उचित है । यदि इसे प्रामाणिक न माना जाय तो विष्णुदास [रचनाकाल 1435 ई0] विद्यापति [1360-1448 ई0] के समकालीन ठहरते हैं । इस आधार पर इस परम्परा का उद्भव 1435 ई0 से होता है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों का पूर्वाग्रह रहा है कि कृष्ण काव्य सम्प्रदाय प्रेरित है । डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त का मत है कि संत काव्य,कृष्ण-भक्ति काव्य रसिक भक्ति काव्य सम्प्रदाय विशेष का धार्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं,परन्तु बुन्देलखण्ड का अधिकांश काव्य साम्प्रदायिकता से दूर रहा है । इस क्षेत्र में कृष्ण काव्य का विकास साम्प्रदायिकता की ओट में नहीं हुआ । बुन्देलखण्ड में 14-15वीं शती तक राम, कृष्ण की भक्ति में सम्प्रदाय की भावना नहीं थी । यहाँ की कृष्ण काव्य धारा की प्रमुख विशेषता यह रही है कि यहाँ कृष्ण काव्य में पहले कृष्ण के ऐश्वर्यात्मक रूप का अंकन हुआ है । तत्पश्चात् माधुर्यात्मक रूप का । यहाँ की कृष्ण काव्य धारा की तीसरी विशेषता यह रही है कि कृष्ण काव्य के उद्भव काल में ही रागबद्ध पदों की रचना हुयी और उसी का प्रभाव महात्मा सूरदास पर पड़ा जिससे कृष्ण गीति काव्य की एक धारा संगीत प्रधान हो उठी ।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं लेना चाहिये कि कृष्ण-प्रबंध-काव्य की परम्परा बाद की है । उसका श्रीगणेश तो विष्णुदास की कृतियों "रुक्मणी-मंगल"[2] और "स्वर्गारोहण-कथा"[3] संवत् 1435 ई0 से हो गया था । बुन्देलखण्ड में कृष्ण विषयक अनेक प्रबंध लिखे गये जिससे यहाँ के कृष्ण काव्य का पृथक महत्व है ।

1- संगीत समय सार। 2- रुक्मणी मंगल 3- स्वर्गारोहण कथा।

बुन्देलखण्ड के कृष्ण काव्य का वर्गीकरण व उसका संक्षिप्त परिचय :

बुन्देलखण्ड के कृष्ण काव्य का वर्गीकरण कई रूपों में किया जा सकता है —

§1§- भक्ति भावना की दृष्टि से :

भक्ति भावना की दृष्टि से कृष्ण का माधुर्य एवं ऐश्वर्य परक रूप का चित्रण किया है ।

§2§- काव्य रूप की दृष्टि से :

काव्य रूप की दृष्टि से गीतिपरक व प्रबंधात्मक काव्य की रचना हुयी है ।

§3§- सम्प्रदाय की दृष्टि से :

सम्प्रदाय की दृष्टि से बुन्देलखण्ड के कृष्ण काव्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है —

§अ§- सम्प्रदायबद्ध कृष्ण काव्य :

वल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभी सम्प्रदाय, सखी सम्प्रदाय, गौड़ीय सम्प्रदाय ।

§ब§- सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्य :

रागबद्ध पद काव्य, छंदबद्ध काव्य, नख-शिख-काव्य-परम्परा, बारह-मासी काव्य परम्परा, लीलापरक, चरितात्मक, मंगलात्मक काव्य और अन्य कथापरक प्रबंध ।

§1§- सम्प्रदायबद्ध कृष्ण काव्य :-

बुन्देलखण्ड में कृष्ण भक्ति का उद्भव साम्प्रदायिक रूप में नहीं हुआ था । यहाँ सम्प्रदायबद्ध काव्य का प्रसार गोस्वामी विट्ठलनाथ के प्रभाव और प्रयत्न द्वारा 16वीं शती में हुआ जब महाप्रभु वल्लभाचार्य वृन्दावन से

यह अभीतक अप्रकाशित है। तीसरा ग्रन्थ "रासपंचाध्यायी"[1] है। इसके अतिरिक्त उनके जो संस्कृत ग्रन्थ हैं वे अभीतक प्राप्त नहीं हैं। इसके बाद दामोदर दास सेवक (1540-73 ई०) इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। इनके मान्यगुरु श्री हित हरिवंश जी थे। उन्होंने उन्हीं के ध्यान में रहकर "सेवक वाणी"[2] की रचना की थी। सेवक वाणी के 16 प्रकरणों में राधा-वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है। चतुर्भुजदास "मुरलीधर" (1550-1629 ई०) ने "द्वादशयश"[3] ग्रन्थ की रचना मुरलीधर नाम से की थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना और स्फुट पदों का सृजन किया। सेवि नागरीदास (1560-1640 ई०) की रचनायें अभीतक अप्रकाशित हैं। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने उनकी रचनाओं को सिद्धान्त दोहावली (935 दोहे), पदावली (102 पद) एवं रस पदावली स्फुट पद-संकलित (235 पदों), इन तीन भागों में विभक्त किया है। चन्द्रसखी ओरछा (1643-1701 ई०) भजनकार के रूप में बहुत लोकप्रिय रहे हैं। उनके भजन व पद इतने सरल व सहज हैं कि वे लोकगीतों की श्रेणी प्राप्त कर लेते हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में रसिकदास (1606-1696 ई०) [illegible] हैं। इनके कुल 22 ग्रन्थ हैं, जिनमें 20 रचनायें "बानी"[4] नाम से और एक "मनोरम लीला"[5] तथा एक "रस कदम्ब चूड़ामणि"[6] (दो भाग) हैं। हित रामकृष्ण चौबे (1723-1802 ई०) जी की रचनाओं में कन्दर्प कृष्ण-विलास,[7] प्रतीत परीक्षा,[8] रासपंचाध्यायी[9] रुक्मिणी मंगल[10] और विलास-पचीसी[11] प्रमुख हैं। छबीले हित (1760-1790 ई०) की अभी तक एक ही रचना राधा वल्लभ कथा शीर्षक युक्त प्राप्त[12] हुयी है। उनके कुछ स्फुट छंद [illegible] नाम से संकलित हैं। गरीबदास गोस्वामी (1870-1891 ई०) के काव्य का वर्ण्य विषय युगल किशोर के प्रति प्रेमभाव था।

1- रासपंचाध्यायी 2- सेवक वाणी 3- द्वादशयश
4- बानी 5- मनोरम लीला 6- रस कदम्ब चूड़ामणि
7- कन्दर्प कृष्ण विलास 8- प्रतीत परीक्षा 9- रासपंचाध्यायी
10- रुक्मिणी मंगल 11- विलास पचीसी 12- राधा वल्लभ कथा

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त दीवान कन्धोद सिंह, श्रीमती कमलकला और श्रीमती राजकुंवरि हैं। दीवान कन्धोदसिंह ने 1864 ई० में प्रेम सुधानिधि[1] ग्रन्थ की रचना की थी। श्रीमती राजकुंवरि ने 1890 ई० में प्रेम सागर[2] की रचना की थी और श्रीमती कमलकला ने चित्रवर्णित तीर्थ यात्रा,[3] वन-यात्रा,[4] ब्रजभ्रमण,[5] धन पच्चीसी[6] और रसिक कमल विनोद[7] ग्रन्थों का सृजन किया।

ओड़छा की रानी कमल कुंवरि ने लगभग 1870 ई० में सिय जू की बधाई,[8] लाल जू की बधाई,[9] राधा जू की बधाई[10] आदि ग्रन्थों की रचना की थी। यह काव्यधारा 19वीं सदी के अन्त तक निरन्तर प्रवाहित रही।

सखी सम्प्रदाय के प्रमुख कवि नरहरिदास [1619-94 ई०] हैं। अष्टाचार्यों की वाणी में उनकी 5 साखियाँ, एक सिद्धान्त का पद, 10 रसरंग पद हैं। स्वामी रसिकदास रसिकदेव के आठ ग्रंथ मुख्य - मंगलमाला,[11] भक्ति सिद्धान्त-मणि,[12] पूजा-विलास,[13] रस सार,[14] बाल लीला,[15] कुंज कौतुक,[16] रसानन्द-विलास,17 और वाराह संहिता[18] हैं। इसके अतिरिक्त अष्टाचार्यों की वाणी में उनकी 16 साखियाँ, 5 सिद्धान्त और 22 रस के पद संकलित हैं। ललित-मोहिनीदास [1730-1801 ई०] की भी कुछ रचनाएँ प्राप्त हैं। भगवत रसिक [1760 ई०] की वाणी में प्रकाशित अनन्य निश्चयात्मक, श्री नित्यविहार जुगल ध्यान, अनन्य रसिकाभरण, निश्चयात्मक ग्रन्थ उत्तरार्ध और निर्बोध मनोरंजन ग्रन्थ सम्मिलित हैं। बख्शी हंसराज ने रामचन्द्रिका की रचना स्वामी प्राणनाथ से प्रभावित होकर संवत् 1790 में की थी। उनकी बाद की कृतियाँ- विरह -

---

1- प्रेमसुधा निधि 2- प्रेम सागर 3- चित्रवर्णित तीर्थ यात्रा
4- वन यात्रा 5- ब्रजभ्रमण 6- धन पच्चीसी
7- रसिक कमल विनोद 8- सिय जू की बधाई 9- लाल जू की बधाई
10- राधा जू की बधाई 11- मंगलमाला 12- भक्ति सिद्धान्त मणि
13- पूजा विलास 14- रस सागर 15- बाल लीला
16- कुंज कौतुक 17- रसानन्दविलास 18- वाराह संहिता ।

विलास[1] (संवत् 1811), बारहमासी[2] (संवत् 1811) और स्नेह सागर[3] हैं। चुहैरिन लीला,[4] काम तरंगिणी,[5] और गेंद लीला[6] लघु रचनायें हैं। बिहारी वल्लभ (1783 ई०) की बानी में सखी सुकुमार सिद्धान्त के 36 और चोरी-कर्म के 21 छन्द हैं।

गौड़ीय मत तथा अन्य सम्प्रदाय के कवियों में सर्वप्रथम गदाधर भट्ट (1553 ई०) आते हैं। इनकी बानी की हस्तलिखित प्रति छतरपुर के दरबार पुस्तकालय में विद्यमान है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में भी बानी[7] और अन्य लीला ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। किशोरीदास (1700 ई०) की बानी में विविध उत्सवों के रागबद्ध गीत संग्रहीत हैं। नीलसखी (1750 ई०) के पदों में नीलसखी और नील सखी की छाप है। कुछ कवित्त सवैया अनाम से भी मिलते हैं।

सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्य :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अभी तक सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्य को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना कि सम्प्रदायबद्ध कृष्ण काव्य को दिया गया है। जितने उत्साह से सम्प्रदायबद्ध कृष्ण काव्य को साहित्य इतिहास में प्रतिष्ठित किया गया उतने ही उत्साह से सम्प्रदाय मुक्त काव्य को त्याज्य घोषित किया। वास्तव में सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण काव्य को सदैव उपेक्षा ही प्राप्त हुयी। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्य के इतिहासकारों

1- विरह विलास 2- बारहमासी 3- स्नेह सागर
4- चुहैरिन लीला 5- काम तरंगिणी 6- गेंद लीला
7- बानी।

को सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण काव्य के परिमाण व स्तर की सही जानकारी प्राप्त न हो सकी । कुछ विद्वानों का मत है कि कृष्ण काव्य सम्प्रदायबद्ध है । यदि बुन्देलखण्ड के काव्य ग्रन्थों को समुचित ढंग से प्रकाश में लाया गया होता तो निश्चय ही साहित्यिक दृष्टि से सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण काव्य धारा का स्थान निर्धारित हो गया होता । सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण काव्य ने कृष्ण काव्य को व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का कार्य किया । भक्तिप्रधान होने के कारण कृष्ण काव्य में अनुभूति की प्रधानता है, साथ ही सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यंजना की सफलता भी है । बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य के प्रवर्तक कवि विष्णुदास के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है । कृष्ण विषयक काव्य रचना में महाभारत-कथा, स्वर्गारोहण, रुक्मिणी मंगल व स्नेह लीला हैं । महाभारत-कथा का रचनाकाल 1435 ई० है । महाभारत-कथा मूलतः पाण्डवों का चरित काव्य है । स्वर्गारोहण पर्व में पाण्डवों के स्वर्गारोहण का वर्णन है ।

रुक्मिणी मंगल की कथा प्रमुख रूप से रुक्मिणी व कृष्ण के विवाह से सम्बन्धित है । स्नेह लीला की अब तक 11 प्रतियाँ ही प्राप्त हैं । इनका विवरण काशी प्रचारिणी सभा के त्रैवार्षिक खोज विवरण (1926-28 ई०) में मिलता है । विष्णुदास की भाषा ग्वालियरी बुन्देली ही है ।

नखशिख परम्परा :

बुन्देलखण्ड के कृष्ण काव्य में नखशिख परम्परा का वर्णन ओरछा के कवि बलभद्र मिश्र ने 16वीं शती में किया । इस परम्परा के ग्रन्थ मुक्तक रूप में ही उपलब्ध हैं । इन ग्रन्थों में कृष्ण की अपेक्षा राधा के रूप-सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया गया है । अभी तक जो भी नखशिख ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं वे 17वीं शती के हैं । इस परम्परा के लगभग कवियों ने उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक तथा सादृश्य मूलक अलंकारों के द्वारा अपने काव्य में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है ।

मधुकर शाह ने बहुत से कवियों को संरक्षण देकर मध्य युग की काव्य चेतना को ओर अधिक गतिमान किया था । कृष्ण भक्तिपरक नख-शिख ग्रन्थों में सर्वोत्तम रस रूपक राधिकाष्टक को माना जाता है ।

कृष्ण काव्य प्रबन्ध परम्परा :

कृष्ण काव्य की प्रबन्ध परम्परा भी बुन्देलखण्ड में समृद्ध रही । इस परम्परा में कृष्ण चन्द्रिका व कृष्णायन की रचनाओं की प्रतिस्पर्धा-सी रही । मध्यकालीन भक्ति मूलक प्रबन्धों में कृष्ण भक्ति परक प्रबन्ध ही अधिक मिलते हैं । इनमें स्वच्छन्द प्रेम व श्रृंगार के लिये उचित अवसर हैं । भक्ति व रीति-परक चित्तवृत्तियों के लिये कृष्ण काव्य की प्रबन्ध धारा उपयुक्त रही है ।

इस प्रबन्ध धारा का प्रवर्तन विष्णुदास से हुआ । रुक्मिणी मंगल, महाभारत-कथा, स्वर्गारोहण, स्नेह लीला आदि प्रबन्धों से बुन्देलखण्ड ही नहीं हिन्दी की प्रबन्ध परम्परा का शुभारम्भ हुआ ।

लीला काव्य परम्परा :

बुन्देलखण्ड में लीला काव्य की रचना आख्यानक गीत और प्रबन्ध दो रूपों में मिलती है । आख्यानक गीतों में कथा चित्रण और काव्यत्व पर कवि का उतना ध्यान नहीं जाता जितना कि उनकी गेयता और सरसता पर जाता है । इतना अवश्य है कि उनके संवाद चुटीले और चित्रात्मकतापूर्ण होते हैं । गेय लीला काव्य बुन्देलखण्ड में उपलब्ध हैं, परन्तु उनके रचनाकारों की खोज अभी तक नहीं हो पायी है । आख्यानक गीतों में गेंद लीला, दान लीला, माखन लीला आदि से सम्बन्धित सरल और छोटे कथानक गेय रूप में चित्रित किये गये हैं । ये कथा गीत अधिकांशतः लोक गीतों के रूप में प्रचलित हैं । गेंद-लीला की हस्तलिखित प्रति से पता चलता है कि इसके रचयिता प्रेमदास हैं । ये आलमपुर निवासी गहोई वैश्य थे । उन्होंने 18वीं शती में कई लीलायें लिखी थीं ।

लीला काव्य की प्रचुर सामग्री प्रबन्ध रूप में प्राप्त हुयी है । विष्णु-दास [1435 ई0] ने स्नेह लीला की रचना की । इसके बाद ग्वालियर के [illegible] कायस्थ ने 1628 ई0 में दानलीला लिखी । इन्हीं सेन का उल्लेख भक्त-माल और रसिक अनन्यमाल में मिलता है । कुछ विद्वान इन्हें अलग-अलग बताते हैं, लेकिन दोनों एक ही हैं । क्योंकि दोनों में कायस्थ कुलोत्पन्न और भक्त होने की समानता है ।

ओरछा नरेश सुजानसिंह के आश्रित मेघराज प्रधान 1666 ई0 कृत "राधा-कृष्ण जू को झगरो" में लौकिक प्रेम को महत्व दिया गया है । कवि ने मुख्यतः कथा शैली को अपनाया है ।

चन्देरी के राजा देवीसिंह 1676 ई0 ने कृष्ण की रासलीला का वर्णन कर "रासलीला" की रचना की है । शिवसिंह सेंगर ने राजा छत्रसिंह कृत "प्रेम पयोनिधि" ग्रन्थ का उल्लेख किया है । बाँदा निवासी मौंसाहिब 1728 ई0 कृत दानलीला का भी विवरण मिलता है ।

उपलब्ध ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ मौंसाहिब कृत "सुरभि-दानलीला" है । उसकी खोज सर्वप्रथम मिश्र बन्धुओं ने की थी । मिश्र बन्धु उन्हें महोबा का निवासी बताते हैं, किन्तु चेतपुरवासी उन्हें चेतपुर का निवासी मानते हैं । उनके एक ग्रन्थ कृष्णायन से ज्ञात होता है कि वे 18वीं शती के उत्तरार्ध में रहे, क्योंकि उनका रचनाकाल संवत् 1779 ई0 है ।

इसके पश्चात् 1763 ई0 के लगभग पंडित मोहनलाल ने "स्नेह लीला" की रचना की । इसमें कृष्ण का उद्धव के द्वारा यशोदा को संदेश भेजना वर्णित है । आजमगढ़ निवासी प्रेमदास गहोई वैश्य ने 1770-1797 ई0 के मध्य लीला-ग्रन्थ रचे । ज्ञानकुंज ने "तरंग भेष मनिक चौबोला" संवत् 1837 में लिखी । उस कृति में कृष्ण का मालिनिया धारणकर राधिका से मिलन वर्णित है । ये ओरछा नरेश विक्रमाजीत के आश्रित कवि थे । पद्माकर कृत "पिचकारी लीला" का भी उल्लेख मिलता है । इसमें कृष्ण का गूदना गोदने वाली का वेश धारणकर

राधा के पास जाने और अंत में राधा के पहचान लेने की कथा का वर्णन है । चरखारी निवासी मानदास रचित दानलीला का उल्लेख शिवसिंह सरोज व मिश्र बंधु विनोद में मिलता है ।

19वीं शती में कृष्ण लीला काव्यधारा निरन्तर प्रवाहमान रही । रसिक रामभक्त कवियों में नवलसिंह व वृषभानु कुंवरि ने भी कृष्ण लीलाओं का स्मरण किया । नवलसिंह प्रधान ने जौहरि तरंग और रहस्यावली की रचना की । ओरछा की महारानी वृषभानुकुंवरि ने दानलीला की रचना में अपनी कृष्ण भक्ति का परिचय दिया है । श्यामदास कायस्थ ने वसुदेव मोचनी लीला की रचना 1830 ई० के लगभग की । चित्रकूट निवासी उम्मेदसिंह ने कृष्ण चरित्र लीला की रचना लगभग 1840 ई० में की । पन्ना निवासी माधव खोहरा ने 1850 ई० के लगभग "दान चौंतीसा" और जराखर [जिला-हमीरपुर] निवासी खुमचन्द राजा "रसेश" ने 1863 ई० के लगभग माखन चोरी की रचना की । छतरपुर के लोकप्रिय कवि गंगाधर व्यास ने "ब्रजागमन लीला" में कृष्ण के मानवीय रूप का चित्रण किया है । इस शती के लीला ग्रन्थों में भक्ति काव्य शैली लघुता और लोककाव्य शैली सबलता है । ये रीतिपरक शैली से मुक्त और लोककाव्य शैली से संयुक्त हैं । चरित्र काव्य परम्परा और उसके कवि- बुन्देलखण्ड में कृष्ण भक्ति काव्य की परम्परा बहुत ही प्राचीन है ।

कृष्ण चरित्र काव्य परम्परा की पहली रचना सुधारु अग्रवाल कृत प्रद्युम्न चरित्र [1354 ई०] कही जा सकती है । कथा का नायक कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न है । कृष्ण प्रतियोगी मात्र हैं । चरित्र काव्य की परम्परा में सर्वप्रथम बीरबल आते हैं जो अकबर दरबार के रत्न व कालपी निवासी थे ।

कविवर चिम्मन द्वारा रचित सुदामा चरित्र का रचनाकाल संवत् 1684 ई० है । इसमें 208 छन्द हैं । इस कृति में बुन्देली के ठेठ शब्दों का प्रयोग हुआ है । दतिया निवासी मंडन कायस्थ ने सुदामा चरित्र की रचना 1742 ई० के पूर्व की थी । महा मंजरा निवासी वीर कवि ने एक कौतुक कृति "सुदामा चरित्र" का सृजन 1741 ई० में किया । इनकी दूसरी रचना "प्रेम-प्रदीपिका" है ।

चरित काव्यों की इस परम्परा में राजनगर [छतरपुर] निवासी व छतरपुर राज्य के संस्थापक कुंवर सोनेशाह के दीवान अमरसिंह कायस्थ [1788 ई0] ने भी सुदामा चरित की रचना की । 1796 ई0 में गोपाल कवि ने भी सुदामा चरित्र की रचना की ।

कृष्ण चरित काव्य की यह धारा 19वीं शती के अन्त तक प्रवाहित रही ।

मंगल काव्य परम्परा व उसके कवि :

मंगल काव्य से तात्पर्य विवाह काव्य से है । प्राचीन लोक गीतों में विवाह का वर्णन मिलता है । कुछ लोकगीत तो इतने बड़े होते हैं कि एक ही लोकगीत में पूरे विवाह का वर्णन हो जाता है ।

बुन्देलखण्ड में 10-11वीं शती में विवाह परक दीर्घ लोकगीतों का विकास चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था और जगनिक ने उन्हीं का आधार ग्रहण किया था तथा 12वीं शती में रचित आल्हखंड में विवाह सम्बन्धी कथाओं की स्वतन्त्र कथा है । उसके बाद काव्य का यह रूप प्रतिष्ठित काव्य रचना का अंग बना । रुक्मिणी मंगल का सृजन ग्वालियर के विष्णुदास ने इसी को आधार कर किया । इस प्रकार मंगल काव्य का प्रवर्तन विष्णुदास से ही होता है ।

कथापरक प्रबंध काव्य परम्परा व उसके कवि :

कथापरक प्रबन्धों में कथा की प्रमुखता होती है । इनकी शैली वस्तुपरक होती है । इस प्रकार के प्रबन्ध संस्कृत व अपभ्रंश के पुराण काव्य है । कुछ प्रबन्ध ग्रन्थों को जिनके काव्य रूप मिश्रित हैं और जो कथा एवं चरित दोनों काव्य रूपों में परिगणित किये जा सकते हैं उनको भी इसी काव्य के अन्तर्गत रखा गया है । कथापरक प्रबन्धों की सृष्टि कृष्ण के व्यक्तित्व की चमत्कार पूर्ण घटनाओं को लेकर हुयी है । इन प्रबन्धों का प्रमुख तत्व कथायें है ।

कथारस जितना कृष्ण केन्द्रित काव्य में है उतना राम केन्द्रित कथानकों में नहीं है । कुछ विद्वान रामकथा को उदात्त समझते हैं,कुछ कृष्ण कथा को । कृष्ण काव्य की कथापरक प्रबंध काव्य धारा बुन्देलखण्ड में बहुत प्राचीन है । विष्णुदास ने इसका प्रवर्तन 1435 ई० में किया था । तब से 19वीं शती के अन्त तक इस धारा में अनेक प्रबंध रचे गये । इस क्षेत्र के दो महान प्रबंधकार तुलसी व केशव हुये हैं । इन्होंने दो प्रकार की शैलियों को जन्म दिया । तुलसी की शैली को रामायण शैली व केशव की शैली को कृष्ण चन्द्रिका की शैली कहा जा सकता है । कृष्ण काव्यधारा के प्रबंधकारों ने उन्हें काव्य गुरु मानकर उनकी प्रबंध शैलियों का अनुकरण किया है । इस धारा में कृष्णायन व कृष्ण चन्द्रिका प्रबंधों को रचने की होड़ सी लग गयी ।

तत्कालीन युग का प्रभाव

ठाकुर रूपसिंह जी ने कृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ की रचना संवत् 1856 में आरम्भ की । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी साहित्य में काल विभाजन के अनुसार आप भारतेन्दु युगीन कवि सिद्ध होते हैं । भारतेन्दु युग के पूर्व हिन्दी कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का साम्राज्य था । प्रौढ़ लक्षण ग्रन्थों की रचना के प्रौढ़ लक्षणों का उदाहरण देने के लिये काव्य की रचना अधिक होती थी, कवि हृदय की अनुभूति आकुलता के कारण कम । संयोग और वियोग-द्विविध श्रृंगार रस की उदाहरणात्मक परम्पराबद्ध काव्य रचना में कवित्व शक्ति का अधिकतः अपव्यय किया जाता था । अन्य रसों की विवेचना नगण्य थी । श्रृंगाररस का सांगोपांग विवेचन होता था । नायिका भेद, नखशिख, नायिका के हाव-भाव, उनकी विलास चेष्टा का वर्णन बड़े मनोयोग से किया जाता था । राधाकृष्ण को भी नायक के रूप में लेकर श्रृंगार की आलंबन चेष्टायें कह दी जाती थीं । उपमानों और उपमेयों के अतिशय प्रयोगों की योजना से चमत्कारिक अलंकार योजना शोभाहीन होती जा रही थी।

भाषा का बंधन, छन्दों का बंधन, प्रवृत्तियों का बंधन काव्य के सुकुमार कलेवर को जकड़ता जा रहा था । इन बन्धनों के साथ-साथ कवियों का क्षेत्र अधिकतर आश्रयदाता राजाओं और उनकी राजसभा से ही रहा । अतः उनकी दृष्टि जीवन की अनुभूतियों से दूर पड़ गयी । जनसामान्य की वेदना और पीड़ा प्रजा का प्रेम और शोक लोक की वीरता और जिजीविषा की पुकार कदाचित उनकी भाववीणा के तारों का झंकृत नहीं कर पाती थी । बंधनों से रूढ़िग्रस्त कविता रीति परम्परा की कारा में बंदिनी होकर शक्तिहीन हो रही थी पर इसका उत्तरदायित्व केवल कवियों पर ही नहीं था । उक्त परम्परा के निर्माण में देश की परिस्थिति का सबसे प्रमुख प्रभाव था । राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों ने देश में जिस अकर्मण्यता, आलस्य, विलासप्रियता और भोगोपासना की सृष्टि कर दी थी उससे देश, समाज और संस्कृति के सभी क्षेत्र प्रभावित हो गये थे । साहित्यिक जीवन और साहित्यिक प्रेरणा भी उन्हीं परिस्थितियों से बहुत कुछ प्रभावित थी ।

भारतेन्दु काल साहित्यिक दृष्टि से संक्रान्ति युग था । पुराने बंधनों को तोड़ फोड़ कर पुरानी रूढ़ियों के संकीर्ण कक्ष से निकलकर स्वच्छ और व्यापक क्षेत्र की ओर साहित्य चेतना अग्रसर हुयी । दृष्टिकोण परिवर्तनों की ओर बढ़ना वाले स्वरूप को पहचानते हुये अपने अतीत के महत्व और गौरव के अनुरूप बनने की चेष्टा करना, पश्चिम से आयी हुयी युगानुरूप विचारधारा से परिचित होना और अपने देश के उत्थान में उसका प्रयोग करना तथा रूढ़ि और परम्पराओं का अन्धानुकरण त्याग कर नई स्वस्थ उदारवृत्ति को अपनाना, ये ही उस समय कुछ प्रमुख सामाजिक चेतनायें थीं जो भारतेन्दु युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ती है । भारतेन्दु और उनके मंडल के साहित्यकारों ने देश जागरण के इस युग में साहित्यिक चेतना को भी प्रबुद्ध करने का भी प्रयत्न प्रारम्भ किया ।

भारतेन्दु युग की काव्य सृष्टि में एक दूसरी धारा भी वेगवती गति से प्रवहमान थी । उक्त धारा को हम प्राचीन काव्य धारा का अनुसरण कह सकते हैं । भक्ति कालीन और रीतिकालीन हिन्दी काव्य में जो भावनायें

व शैलियाँ बन रही थीं उनके आधार को लेकर उत्तम कोटि के काव्य का भी निर्माण इस युग में होता रहा, भक्ति विषयक और श्रृंगारी दोनों भाँति की रचनायें होती रहीं।

ठाकुर रूपसिंह प्रमुख रूप से भारतेन्दु युगीन भक्ति और रीति काव्य धारा से जुड़े हुये हैं। आपकी कृति में अंत:साधना के भावमय उद्गार प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुये हैं।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में जब हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का उत्थान हो रहा था तब बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े क्षेत्र में आधुनिकता की परिस्थितियों को पनपाने के लिये सहायक उपकरण विद्यमान नहीं थे। सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक पिछड़ेपन के कारण प्रगति की नवीन दिशायें न खुल सकीं अतएव साहित्य में भी नवीन उत्थान आना असंभव था। इस दृष्टि से ठाकुर रूपसिंहजी ने जो भी नवीनता दी है उसे कवि की महान उपलब्धि समझना चाहिये। ठाकुर रूपसिंह ने तात्कालिक चाटुकारिता से पूर्ण वातावरण में जो कुछ भी काव्य में प्रस्तुत किया स्तुत्य है।

प्रत्येक कवि तत्कालीन समाज से अवश्य प्रभावित होता है। यद्यपि प्रबन्धकार का उद्देश्य कथानायक की सामाजिक स्थिति का चित्रण करना होता है तथापि वह तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण अनायास ही कर जाता है। रीतिकालीन राजा महाराजा तथा सरदार अपने महलों में अनेक स्त्रियाँ रखते थे, कृष्ण की रानियाँ व पटरानियाँ बड़े राजा-महाराजाओं की प्रवृत्ति की परिचायक हैं। एक से प्रेम करते हुये भी अनेक स्त्रियों का प्रेम अपने हृदय में पालना उस युग का एक विशिष्ट गुण था। स्त्रियों के सौत भाव का आभास गोपियों के कुब्जा के प्रति वचनों में मिलता है।

'कुब्जा कृत सब काम, नाच नचावत गिरधरहि।
खोटो अपनो दाम, औरो दोष न ल्याइस्य ।।'

तत्कालीन पुरुषों की रसिकता एवं स्त्रियों की सशंकित भावना का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है -

कवि ने वियोग वर्णन भी किया है । कृष्ण चन्द्रिका[1] में दो स्थानों पर विरह वर्णन किया है । रास से कृष्ण का अन्तर्धान हो जाना और कंस-वध हेतु मथुरा गमन । इन दोनों अवसरों पर कवि ने वियोग के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं ।

सब गोपिन हरि तन मन धीर ।
बिरहा प्रकट बाढ़हि पीर ।।

कृष्ण के मथुरा गमन पर मथुरा से आये कृष्ण के सखा उद्धव से गोपियाँ विरह-पीड़ा का वर्णन करती हैं —

ऊधौ तुम्हें हम दीन त्यागे,
कहा किसाने कुबरई भारे ।
सर्वस्व ऊधौ हम अर्प दीनो,
तदापि माधो न भये हमारे ।।

कवि को वियोग वर्णन में अधिक सफलता प्राप्त हुई है । ठाकुर रूपसिंह जी के युग में काव्य में श्रृंगार निरूपण के साथ-साथ भक्ति एवं वैराग्य सम्बन्धी भावनाओं की भी विवृत्ति पर्याप्त मात्रा में मिलती है । भक्ति को तो हम पूर्ववर्ती युग का प्रभाव कह सकते हैं । एक तो उस युग का कवि ही नहीं समाज का सामान्य व्यक्ति भी अपनी समस्त सद् एवं असद् वृत्तियों पर भक्ति का आवरण किसी न किसी रूप में डालकर चलना आवश्यक समझता था, दूसरे श्रृंगार के नायक-नायिका के रूप में राधा-कृष्ण की प्रतिष्ठा ने भी काव्य में भक्ति के लिये क्षेत्र तैयार किया । कवि में भावुकता का गुण होना सहज स्वाभाविक है । ठाकुर रूपसिंह जी की कृति का प्रमुख उद्देश्य भक्ति भावना का निरूपण करना है । उन्होंने भक्ति के ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं जिन्हें देखकर वे सच्चे भक्त प्रतीत होते हैं । संसार में परम अनुरक्ति

1- कृष्ण चन्द्रिका ।

अतः ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण की भक्ति सात्विक रूप से की है ।

बुन्देलखण्ड के तत्कालीन प्रबन्धों में तत्कालीन संस्कृति व लोकजीवन का चित्रण हुआ है । अतः कृष्ण काव्य को संदर्भों से पलायन नहीं कहा जायगा । कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण का असुर संहारी चरित्र व लोकनायकत्व निश्चित रूप से तत्कालीन परिस्थितियों की देन है ।

बुन्देलखण्ड में सम्प्रदायमुक्त काव्य अधिक रचित हुये अतः यहाँ कृष्ण के लौकिक रूप का विकास हुआ । एक ओर कृष्ण का चित्रण कर्मयोगी व नीतिज्ञ रूप में किया गया तो दूसरी ओर कृष्ण का ऐश्वर्यपरक रूप तत्कालीन राजसी वैभव की उपज था । इसी क्रम में ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका[1] में कृष्ण के असुर संहारक रूप का अंकित कर कृष्ण काव्य को युग चेतना से संयुक्त किया है ।

बुन्देलखण्ड का कृष्ण काव्य वस्तु और शिल्प की दृष्टि से लोक तत्वों से अधिक संपृक्त था । कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण लोक सहज अनुभूतियों से परिपूर्ण था अतः रूपसिंह जी ने भी इसी परम्परा को अपनाते हुये लोक का व्यापकता के विविध रूपों का चित्रण कृष्ण चन्द्रिका में किया है ।

ठाकुर रूपसिंह जी ने कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के आराध्य अलौकिक स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है,साथ ही कृष्ण रूपी निधि को संसार सागर से पार करने वाला साधन बतलाया है ।

अतः निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि ठाकुर रूपसिंह अपने युग के सचेतन कवि हैं । वे अपने समय की प्रचलित विभिन्न काव्य धाराओं,विविध भावों और अभिव्यक्ति शैलियों के प्रति जागरूक रहे हैं । उनके साहित्य का मूल्यांकन साहित्य के विविध पक्षों के प्रहरी के रूप में किया जा सकता है । वास्तव में रूपसिंह जी का स्थान अपने समकालीन कवियों में महत्वपूर्ण है ।

—— :0: ——

1- कृष्ण चन्द्रिका ।

----- :o: -----

द्वितीय अध्याय

----- :o: -----

अध्याय - 2

बुन्देलखण्ड की कृष्ण काव्य परम्परा

राष्ट्रभाषा हिन्दी के क्रमिक विकास का अध्ययन करने से यह भली भाँति ज्ञात हो जाता है कि सोलहवीं शताब्दी में विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा भक्तिकाव्य की विशाल धारायें प्रवाहित हुईं । इन धाराओं में पाँच प्रकार की भक्ति धारायें देखने को मिलती हैं । जैसे शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और श्रृंगार । शान्त भाव में प्रह्लाद विषयक, दास्य भाव में हनुमान विषयक, रामानन्द तथा गोस्वामी तुलसीदास की कवितायें आती हैं । वात्सल्य भाव की कवितायें वल्लभी सम्प्रदाय ने प्रणीत की हैं । वात्सल्य व सख्य भाव का मिश्रण सूरदासजी की कविताओं में मिलता है । श्रृंगार भाव की कविताओं की रचना सखी सम्प्रदाय ने की है ।

वात्सल्य, सख्य व श्रृंगार भाव की कवितायें अधिकतर ब्रज क्षेत्र में रची गयीं, किन्तु अन्य रचनायें बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ही रची गयीं । कृष्ण भक्ति काव्य की रचना में बुन्देलखण्ड अग्रणी रहा । ओरछा निवासी श्रीहरीराम शुक्ल व्यासजी ने वैराग्य, ज्ञान और लोकानेक विषयों पर भावपूर्ण कवितायें की थीं । आप ओरछा नरेश भक्त कवि मधुकर शाह के गुरु थे । सुकवि रामजी ने श्रीराम और श्रीकृष्ण विषयक लोकानेक गीतों की रचना की थी ।

सेंवढ़ा (दतिया) निवासी हरिकेश कवि ने अपने अक्षीला नामक ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के गुणों का भरपूर गायन किया है। पन्ना (म०प्र०) निवासी बख्शी हंसराज की अधिकतर कवितायें श्रीकृष्ण विषयक ही हैं। ओरछा (बुन्देलखण्ड) के कृष्ण भक्त कवियों ने अपने ग्रन्थ विदुर प्रजागर और धर्म-संवाद[1] में भावपूर्ण कवितायें की हैं। पन्ना (म०प्र०) के मेदिनीमल्लजी ने श्रीकृष्ण प्रकाश[2] नामक ग्रन्थ की रचना की। दतिया (म०प्र०) के कंचन कवि ने सुदामा चरित्र द्वारा श्रीकृष्ण की गाथाओं का गान किया है। जलालपुर (हमीरपुर) के ज्ञानी जू कवि ने "वीर विलास"[3] नामक ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। ओरछा (बुन्देलखण्ड) के खानदराय कवि ने विविध छन्दों में काव्य श्रीमद्भागवत गीता का छन्दोबद्ध रूपान्तर किया है। कालिंजर के चौबे सिवराम कृष्णजी ने तो श्रीकृष्ण की अनेकानेक लीलाओं का वर्णन अपनी कविताओं में किया है। महोबा के गुमान मिश्र ने "कृष्ण चन्द्रिका" नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की है। नन्ददास कवि ने "कृष्ण विलास" और भागवत दशम् स्कन्ध की छन्दोबद्ध रचना की है। बुन्देल-खण्ड के मंडित द्विज ने अपने कृष्णायन नामक ग्रन्थ में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन किया है। ओरछा के कवि मोहनलाल मिश्र ने "कृष्ण चन्द्रिका" रासपंचक और भागवत् के दशम् स्कन्ध की रचना की है। झाँसी निवासी श्री नवलसिंह कायस्थ ने 33 ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें 10 ग्रन्थ श्रीकृष्ण विषयक हैं। पन्ना निवासी कवि हरिदासजी ने कृष्ण विषयक अनेकानेक पुस्तकों का प्रणयन किया है। ओरछा के गुलाल भाट ने "राधा-कृष्ण कटाक्ष" नामक पुस्तक में श्रीकृष्ण के द्वारा उद्धव को कुछ खरी-खोटी बातें सुनायीं। उदाहरणार्थ :-

---

1- विदुर प्रजागर और धर्म-संवाद।

2- कृष्ण प्रकाश।

3- वीर विलास।

श्री किरीट जी ने काव्य, नाटक, उपन्यास, रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवत् पर अपनी सशक्त लेखनी चलायी है। जिसके लिए राष्ट्रपिता बापू ने लिखा था "न जाने क्यों श्रीकृष्ण कथामृत के कुछ शब्द सुनकर मेरे आँसू बह निकले।" इस ग्रन्थ में आद्योपान्त योगीराज का दर्शन पाया जाता है। श्रीकृष्ण कथामृत के प्राय: 91 अध्यायों में श्रीकृष्ण लीला विषयक समस्त कथायें आ गयी हैं। भाषा, प्रांजल, सरल, सरस और मिश्रित बुन्देली व खड़ी बोली है। ग्रन्थारम्भ में कहा गया है :-

"शौनिक वचन किरीट सुनि, बोले विहँसि मुनीश
चारि पदारथ दायि कर वेद व्यास जगदीश।[1]"
जदपि वेद सब श्रुतिहिं समाना,
तदपि भेद जन कहहिं बखाना।
सोइ ब्रह्म निज मितहिं बिचारा,
जो आचरहि ताहि अनुसारा।
सो आचरन न तौं लगि आवै,
जौं लगि श्रुति सम्मति नहिं पावै
श्रुति सम्मति कर सार बखाना
कहहिं भागवत पूज्य पुराना
कृष्ण कथामृत तिहिं कर सारू
सुनत ताहिं पावइ भव पारू।[2]

कथा-प्रसंग कहते हुये श्रीकिरीटजी ने देशवासियों से आग्रह किया है कि वे भेद-भाव भुलाकर परस्पर स्नेहयुक्त रहें, क्योंकि वे समस्त देश के अंग हैं :-

भारत, अखिल, देश सुजान
अहे नाम जिन के शुभिशुभ जान।
सब समान सब आत्म बासी
भारत बासन अखिल सुभासी।[3]

1- श्रीकृष्ण कथामृत किरीट।
2- श्रीकृष्ण कथामृत - गोविन्ददास व्यास "किरीट"।
3- " " " ।

जथा जोग तथि भाग मित्र पुष्ट तुष्ट सब कीं
धरम प्रान राजर्षि सकल एक हेतु के कीं ।

श्रीकृष्ण कथामृत में बाललीला, पूतना-वध कथा, बकासुर की कथा, शकट सुनावर्त कथा, यमलार्जुन मोक्ष, वृन्दावनवास, वत्स चारण, अघासुर वध, गोवर्धन कथा आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन है । इनका यह ग्रन्थ संवत् 2009 में प्रकाशित हो गया था । श्री विनीत जी का समस्त जीवन संघर्षपूर्ण रहा । शिक्षा विभाग में रहते हुये भी आप स्वदेश चिन्तन में लीन रहे । सन् 1930 के आन्दोलन में छःमाह के लिये कारावास भी गये । आपका निधन 23 मई, 1953 को हुआ । आपके प्रकाशित ग्रन्थों में 8 काव्य ग्रन्थ, 9 नाटक और 9 उपन्यास हैं । आपकी अनेकों कृतियाँ अप्रकाशित हैं । आपका काव्य परिमाण व गुण में इस योग्य है कि किसी भी विश्वविद्यालय में इस पर शोध की जा सकती है ।

युग परम्परा से बुन्देलखण्ड की पावन भूमि ने अनेकों सुकवि व साहित्यकार प्रदत्त किये हैं । जिन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के भण्डार का श्रृंगार किया है । परन्तु खेद की बात है कि इस पावन वसुन्धरा के इन सपूतों की कृतियों पर जितना प्रकाश पड़ना चाहिये था, उतना पड़ा नहीं है ।

कृष्णायन काव्य परम्परा कवि व उनका अध्ययन :-

बुन्देलखण्ड की कृष्णायन काव्य परम्परा कवि की काव्य रचना में सजगता और दृढ़ संकल्प का प्रतीक है । बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्णायन रचने का संकल्प तुलसीकृत रामायण की लोकप्रियता अथवा शैली से आकृष्ट होकर किया था । कृष्ण काव्य में वस्तु और शैली के प्रति अद्भुत लगाव व ममता के दर्शन होते हैं । साथ में यह भी ज्ञात होता है कि हिन्दी में महाकाव्य का सृजन बड़ी जागरूकता और सजगता के साथ किया जाता था । कृष्णायन काव्य के सम्बन्ध में यह जनश्रुति है कि महोबा के सुजान व गुमान दो कवि बन्धुओं में परस्पर यह प्रतिज्ञा थी कि एक कृष्णायन रचेगा

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि कृष्णायन की रचना गुमान कवि ने ही की थी । ये कृष्ण चन्द्रिका के रचयिता गुमान से अलग थे । गुमान ने प्रथम प्रकाश में ही कृष्णायन रचने की सूचना दे दी है । इससे सिद्ध होता है कि कृष्णायन की रचना संवत् 1830-35 के मध्य की होगी । कुछ विद्वानों ने मंचित कवि कृत कृष्णायन को प्रथम रचना माना है,परन्तु इस परम्परा के कवि गुमान ही रहे होंगे । यदि उनका ग्रन्थ प्राप्त होता तो इस तथ्य की प्रामाणिक रूप से पुष्टि की जा सकती थी ।

गुमान कवि के समकालीन मंचित द्विज थे । मिश्र बन्धुओं के अनुसार ये मऊ महोबा-छतरपुर के निवासी थे ।

कृष्णायन एक महाकाव्य है जो रामायण की शैली में लिखा गया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कृष्णायन की चौपाइयों को रामायण की चौपाइयों से मेल खाने वाला बताया है,परन्तु डॉ0विजयेन्द्र स्नातक ने आरोप लगाया है कि कवि कथानक को पूरी तरह से निभा नहीं सका है । उनके इस मत से सहमत होना कठिन है, लेकिन यह निर्विवाद है कि तुलसी की रामायण में कथा कौशल की जो बानगी मिलती है वह कृष्णायन में नहीं है । स्नातक जी का दूसरा आरोप यह है कि मंचित कवि की भाषा ब्रजभाषा होने के कारण इस ग्रन्थ में "रामचरित मानस" जैसा अवधी का प्रवाह नहीं है । फिर भी संस्कृत की पदावली के कारण कहीं-कहीं पर पद रचना अच्छी बन पड़ी है । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कृष्णायन की भाषा ब्रजभाषा है और उसमें प्रवाह नहीं है । वैसे मंचित द्विज के कृष्णायन की भाषा साहित्यिक बुन्देली है जिसमें तत्सम् शब्दावली का बाहुल्य है ।

मंचित द्विज के पश्चात् कृष्णायन की रचना पंडित शिवदास ने संवत् 1843 (1786 ई0) में की । इस कृति को नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण में जगन्नाथ त्रिपाठिया कृत बताया गया है । पण्डित शिवदास ने कृष्णायन की रचना छतरपुर में की थी । इस ग्रन्थ में कवि ने भागवत् के दशम् स्कन्ध की कथा का आधार लिया है । तुलसी कृत रामायण का ही अनुकरण

अधिकांशतः किया गया है । इस कृति में मौलिकता का अभाव है । इन सब कमियों के बाद भी इस कृति का महत्व इसलिये भी है, क्योंकि इस ग्रन्थ से बुन्देली भाषा की समृद्धि हुयी है । यहाँ कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं :-

"हरि भक्त हरि में जाये, जिनके
नाम त्रिलोक रक्षा को, मथुरा करो बखान ।
द्वारका उभा तीर्थ है, सात कांड में जान ।।
देव कुल बहु दान, मान को हरि सेत को ।
होवें अर्थ कल्यान, कहि सिवलाल विचार कें ।।

इस प्रकार कुमान और मंचित द्विज ने 18वीं शती के अन्त में जिस प्रबन्ध काव्य परम्परा का प्रवर्तन किया वह आगे चलकर 20वीं शती तक विद्यमान रही । 19वीं शती में बिहारीलाल शुक्ल ने कृष्णायन की रचना की जिसका रचनाकाल संवत् 1928 है । यह ग्रन्थ श्रीमद् भागवत हरिवंश पुराण व अन्य ग्रन्थों पर आधारित है । कवि की शैली इतिवृत्तात्मक है । भाषा सरल व अलंकार प्रधान है । तदुपरान्त इस परम्परा को बुन्देलखण्ड के बाहर विकसित करने का श्रेय किसाहूराम साह (संवत् 1930), बलन्त महाराज संवत् 1970, राधेश्याम कथावाचक संवत् 1987, पं०रामस्वरूप मिश्र, पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र इत्यादि कवियों को है । कृष्णायन काव्य परम्परा बुन्देलखण्ड की ही महत्वपूर्ण देन है ।

कृष्ण चन्द्रिका काव्य परम्परा, कवि और उनका अध्ययन :-

कृष्णायन के समानान्तर कृष्ण चन्द्रिका परम्परा भी बुन्देलखण्ड की ही देन है । इस परम्परा का प्रारम्भ केशवकृत रामचन्द्रिका के आधार पर कवि द्विज कुमान की कृष्णचन्द्रिका से होता है । वैसे संवत् 1779 (1722 ई०) में रामप्रसाद श्रीवास्तव, जमुरा (दिल्ली) निवासी ने कृष्ण चन्द्रिका नाम से नायक-नायिका भेद के ग्रन्थ की रचना की थी । संवत् 1811 (1754 ई०) में मथुरा के एक ग्राम के निवासी श्रीराम ने भागवत् के आधार पर "रत्नप्रकाश" का सृजन किया था और उसका दूसरा नाम कृष्णचन्द्रिका रखा था । इन दोनों ग्रन्थों में कृष्ण चन्द्रिका परम्परा के गुण नहीं मिलते हैं । कृष्णायन परम्परा के

विकास के सम्बन्ध में कवि बंधु गुमान और गुमान के कुछ संकेत की पुष्टि अंकित की गयी है जिससे स्पष्ट होता है कि इस प्रबन्ध परम्परा के प्रवर्तक कवि गुमान मिश्र ही हैं ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण में गुमान नामक दो कवियों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है । एक गुमान जो कृष्ण चन्द्रिका और छंदाटवी के रचयिता हैं और दूसरे गुमान मिश्र जो नैषध काव्य दर्पण और गुमान चन्द्रोदय के कवि हैं । परन्तु मिश्र बन्धुओं - पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, पण्डित गौरीशंकर द्विवेदी ने दोनों को एक ही माना है । द्विज गुमान ने कृष्ण चन्द्रिका में अपना परिचय स्वयं दिया है । कृष्ण चन्द्रिका के अतिरिक्त बारहमासी और छंदाटवी आदि अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं । बारहमासी में कवि ने अपना स्थान बैकुण्ठपुरी बताया है । बैकुण्ठपुरी बहिट को कहा गया है । यह धसान नदी के किनारे हरपालपुर (जिला छतरपुर) से लगभग 10 मील दूर एक जागीर थी जो इतिहासकार श्यामलाल के अनुसार अहिमान के पुत्र मोहनलाल बुन्देला के वंश के अधिकार में थी । राधेमोहन से तात्पर्य - राधा कृष्ण मंदिर से है जो आज भी बहिट में धसान नदी के किनारे एक पवित्र स्थान माना जाता है । कृष्ण चन्द्रिका में कवि ने लिखा है —

"हर आवास गिरपट रच्यो हर मन्दिर छ पैन ।"

इसका साक्ष्य महोबा की पहाड़ी पर स्थित "राधा-कृष्ण" के मन्दिर के मूर्तियों के पादलेख से मिलता है । लेख इस प्रकार है —

"श्री लाड़लीजू अवतार संवत् 1822 शाके 1686 कार्तिक सुदी 13 भृगुवासरे रेवत्यांयोग शुभ दिवसे नग्र महोबा अस्थाने लेखक पण्डित तिवारी दीपचन्द शुभमस्तु ।।" प्रकट है कि कवि ने कृष्ण चन्द्रिका की रचना महोबा में प्रारम्भ की थी ।

कृष्ण चन्द्रिका का रचनाकाल संवत् 1838 (1781 ई०) है । कृष्ण चन्द्रिका एक प्रौढ़ रचना है । इस रचना से प्रतीत होता है कि कवि ने कुछ मंज कर इसे 30-35 की आयु में ही रचा होगा । गुमान का उपनाम "मान" था।

कृष्ण चन्द्रिका के 24वें प्रकाश के छन्दों में "मान" की छाप स्पष्ट है । महोबा की जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि उन्होंने बन्दूक से आत्म हत्या करली थी।

कृष्ण चन्द्रिका के काव्यत्व के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्यकारों में मतभेद है । डॉ० चन्द्रपाल सिंह और डॉ०शिवबालक शुक्ल ने उसे महाकाव्य के रूप में प्रमाणित किया है, जबकि अन्य विद्वान इस पक्ष को महत्व नहीं देते हैं । वास्तव में कृष्ण चन्द्रिका का अध्ययन किये बिना उस पर टिप्पणी करना व्यर्थ है । कृष्ण चन्द्रिका का सम्पादन श्री उदयशंकर भट्ट ने किया था और उसका प्रकाशन 1937 ई० में हुआ था । विद्वानों ने इसी प्रकाशित प्रति को समीक्षा का आधार बनाया होगा । अतः उन्हें भी समझने में कठिनाई का अनुभव हुआ होगा । प्रकाशित पुस्तक का पाठ बहुत ही अशुद्ध है और उसमें छंद संख्या भी कम है ।

कविवर गुमान ने श्रीमद्भागवत् के दशम् स्कन्ध की कथा के पूर्वार्द्ध को 27 प्रकाशों में विभाजित किया है । प्रत्येक प्रकाश की कथा को दूसरे प्रकाश की कथा से संबद्ध करने के लिये कवि ने प्रकाशों के अन्त व प्रारम्भ में कथा सूचक दोहे रखे हैं । इन कारणों से कथा का प्रवाह कहीं भी शिथिल नहीं हुआ है । कृष्ण चन्द्रिका की कथा योजना रामचन्द्रिका की अपेक्षा अधिक अन्वितिपूर्ण, प्रवाहमय और सरस बन पड़ी है । इसमें पात्र चित्रण की विविधता, मनो-वैज्ञानिकता और मौलिकता नहीं है । गुमानकृत कृष्णचन्द्रिका में कृष्ण के सौंदर्य पक्ष को उभारा है, शक्ति पक्ष को नहीं ।

कृष्ण चन्द्रिका परम्परा के दूसरे कवि मोहनदास मिश्र हैं ।[1] "इन्होंने कृष्ण चन्द्रिका की रचना संवत् 1839 में की थी । इसमें 99 प्रकाश और 3800 के लगभग छन्द हैं । इसमें वसुदेव के विवाह से लेकर श्रीकृष्ण के प्रभास तीर्थ गमन तक की कथा को संयोजित किया गया है ।

1- कृष्ण चन्द्रिका - श्रीमोहनदास मिश्र ।

में हुयी थी । इस कृति में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को मिलाकर कुल 10 अध्याय हैं । कथा के मार्मिक स्थलों का बाहुल्य है । ठाकुर रूपसिंह कृत "कृष्णचंद्रिका" की भाषा बुन्देली मिश्रित खड़ी बोली है इसमें कवि की तात्कालिक भाषा प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । 19वीं शती के अन्तिम चरण के कवि इसमें कोई नयापन नहीं ला सके हैं । इस प्रकार 19वीं शती तक कृष्ण चन्द्रिका का प्रवाह बना रहा ।

अन्य कथापरक प्रबन्ध काव्य परम्परा – प्रतिष्ठित कवि एवं प्रतिष्ठित रचनायें अध्ययन और समीक्षा :-

अन्य कथापरक प्रबन्धों के अन्तर्गत् खण्डकाव्य अथवा महाकाव्य आते हैं । ये काव्य मूलतः कथापरक होते हैं । बुन्देलखण्ड में ऐसे ग्रन्थों की रचना प्रचुर मात्रा में हुयी है । इन प्रबन्धों का प्रमुख प्रेरणा स्त्रोत श्रीमद्भागवत है । रघुराम कायस्थ कृत "कृष्ण चन्द्रिका"[1] के रचनाकाल के सम्बन्धों में विद्वानों में मतभेद है । मिश्र बंधु इसका रचनाकाल संवत् 1737 मानते हैं, जबकि पण्डित गौरीशंकर द्विवेदी ने इनका कविता काल संवत् 1760 माना है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण के अनुसार इसका रचनाकाल संवत् 1761 (1684 ई०) ठहरता है । इसकी एक अपूर्ण हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुयी है । इसमें 11 प्रकाश हैं तथा प्रारम्भ के 3 प्रकाश नहीं हैं । यह एक खण्डकाव्य है जिसमें कुरुक्षेत्र के कृष्ण और ब्रजवासियों के मिलन की कथा वर्णित है । पात्र सरल व सहज हैं । भाषा परिनिष्ठित बुन्देली है उसमें बुंदेली के ठेठ शब्दों का प्रयोग किया गया है । बुन्देली कहावतें भी अपनी छटा छोड़ती हैं । इसमें कवि ने भाव व्यंजना में बहुत ही कटौती की है । एक-एक, दो-दो छन्दों के बाद ही छन्द परिवर्तन किया है । काव्य सौष्ठव का एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

---

1- कृष्ण चन्द्रिका – श्री रघुराम कायस्थ ।

माधव के हित राधिकाजू तेरह तीन सिंगार करे हैं ।
नील निचोल कों धन त्यों जन दामिनि की दुति कों भरे हैं ।।
दामिनि चन्द्र कोर लिये कौ धुर लिये चकवाक धरे हैं ।
सोहन बादर की निशा है जिनमें वह बादर मौन धरे है ।।

ओरछा के दिग्गज कवि का प्रबन्ध "भारत विलास"[1] संवत् 1766 (1719 ई0) की रचना है इसमें महाभारत की कथा है,लेकिन कृति अप्राप्य है । कुँवर मेदिनी मल्ल ने "कृष्ण प्रकाश" की रचना संवत् 1787 (1730 ई0) में की । ग्वालियर निवासी श्रीमायाराम कवि ने संवत् 1793 (1736 ई0) में भागवत् के दशम् स्कन्ध को छन्दबद्ध किया है ।

इन रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण प्रबन्ध वीर बाजपेयी कृत "प्रेम प्रदीपिका"[2] है । इसकी रचना संवत् 1818 (1761 ई0) में हुयी थी । इस कृति में रचना काल के अतिरिक्त कवि के परिचय पर भी प्रकाश पड़ता है । इसका विवरण चरित काव्य धारा अध्याय के अन्तर्गत किया गया है । यह एक वियोगात्मक प्रबन्ध है । इसमें प्रमुख रूप से राधा और गोपियों का विरह वर्णित है । यह कृति भाव प्रधान होते हुये भी मूलतः कथात्मक रचना है । इसी कारण इसे कथात्मक प्रबन्ध धारा में रखा गया है । इस ग्रन्थ की कथा योजना सुगठित व सुनियोजित है । कथा में कहीं भी शिथिलता नहीं है । कथा प्रवाह गतिमान है और पात्रों का व्यक्तित्व भी निखरा है । एक ओर गोपियों की चेष्टायें, तर्क-वितर्क और व्यंग्यपूर्ण उपालम्भ हैं तो दूसरी ओर नायिका अन्तर्गत पाती आदि के पारम्परिक प्रसंग, वस्तु विधान और भाव वैविध्य में योग देने में पूर्णतया सफल सिद्ध हुये हैं । इसकी भाषा बुन्देली है । उदाहरणार्थ कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं :-

---

1- भारत विलास - श्री दिग्गज कवि ।
2- प्रेम प्रदीपिका - श्री वीर बाजपेयी ।

इसकी कथा उद्धव के ब्रज जाने से लेकर कृष्ण के कुरुक्षेत्र गमन और राधा के प्राण त्याग तक है । कथा योजना और रस योजना दोनों ही सरल और सरस हैं । इसकी भाषा स्वच्छ और सरस परिष्कृत बुन्देली है । कवि के भाव सौष्ठव व भाषा प्रवाह का एक उदाहरण देखिये :-

> कबे आई है रोटी मांगिन दे मोहि रोटी मईया ।
> दै हों कबे उ माखन रोटी लै लै कुंवर कन्हैया ।।
> कुलन कबे फुलेल लगावे कबे गुहर हौं माल ।
> ठुमुक ठुमुक कर में गहौं कब कानर बाल कमल सुलाल ।।
> कब हौं गोद माहि ले बैठौं अंकम लौं रस बोरौं ।
> गुंजमाल पहराई कान कौं अपने कुसुम निहारौं ।।
> कबौं आई है नैंद न पाहिं सुन्दर सपनी माहैं ।
> मटकत चपल मुकुट की लटकन कब देखौं मैं चाहैं ।।

19वीं शती में जो कृष्ण काव्य प्रबन्ध रचे गये वे अतिशय साधारण हैं । हरि-भक्ति विलास[1] की रचना पटवारी नवेल किशनावीत या किशनदास ने 1782-1829 ई० में की ।

छतरपुर निवासी बख्शाराम कायस्थ ने "द्रौपदी विनय"[2] की रचना 1843 ई० में की । इसमें चीर हरण की कथा वर्णित है । इस प्रकार यह काव्य धारा 19वीं शती के मध्य तक प्रवहमान रही ।

—— :0: ——

1- हरिभक्ति विलास - श्रीकिशनावीत ।
2- द्रौपदी विनय - श्रीबख्शाराम कायस्थ ।

—— :o: ——

तृतीय अध्याय

—— :o: ——

अध्याय - 3

बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवि और उनका काव्य

"भारतीय धर्म व संस्कृति के इतिहास में कृष्ण का व्यक्तित्व अति विलक्षण है। उनकी ऐतिहासिकता के विषय में भी विद्वानों में विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ उसे ऐतिहासिक मानते हैं, कुछ अर्ध ऐतिहासिक और कुछ कोरा काल्पनिक। कुछ पाश्चात्य विद्वान् "कृष्ण" शब्द की व्युत्पत्ति "क्राइस्ट" से सिद्ध करते हुये उसे ईसाईमत से सम्बन्धित करना चाहते हैं, किन्तु यह मत कोरी कल्पना पर आधारित है। कृष्ण (आंगिरस) का उल्लेख ऋग्वेद (1/116, 7/1, 8/85) में मिलता है जिसके अनुसार वे एक स्तोता ऋषि सिद्ध होते हैं। वे अपने पौत्र विष्णापु के पुनर्मिलन के लिये अश्विनीकुमारों का आह्वान करते हैं।[1]"

आगे चलकर "छान्दोग्य-उपनिषद्" में भी कृष्ण का उल्लेख देवकी के पुत्र घोर आंगिरस के शिष्य एवं एक वैदिक ऋषि के रूप में उपलब्ध होता है। महाभारत के प्रारम्भिक अंशों में कृष्ण पाण्डवों के सखा एवं प्रभावशाली

1- श्री गणपति चन्द्र गुप्त - साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ-255.

राजनीतिज्ञ के रूप में तथा अन्तिम अंशों में विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित हुये हैं । सभा पर्व में शिशुपाल के कुछ शब्दों के अतिरिक्त महाभारत में कृष्ण के गोप-जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता । परवर्ती पुराणों - हरिवंश, ब्रह्म विष्णु, भागवत, ब्रह्म वैवर्त आदि में उनकी बाल्यावस्था सम्बन्धी आख्यानों व गोप-जीवन सम्बन्धी क्रीड़ाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि दृष्टिगोचर होती है । कृष्ण की रास लीला और गोपियों के प्रेम का विस्तृत निरूपण लगभग नवीं शताब्दी में रचित भागवत पुराण में हुआ है । इसमें कृष्ण की एक विशेष आराधिका गोपबाला का भी उल्लेख हुआ है जो आगे ब्रह्म वैवर्त पुराण में गोपियों में सर्वाधिक प्रभावशालिनी राधिका के रूप में चित्रित हुयी है । इस प्रकार वैदिक और संस्कृत साहित्य में कृष्ण के तीन रूप मिलते हैं ।

1- ऋषि एवं धर्मोपदेशक
2- नीतिकुशल क्षत्रिय नरेश
3- बाल और किशोर रूप

सम्भवतः महाभारत की सकल क्रान्ति के पश्चात् ही वासुदेव कृष्ण अपने जीवनकाल में ही अपने समाज के लोगों द्वारा पूजे जाने लगे थे । महा-भारत में स्थान-स्थान पर अर्जुन व युधिष्ठिर उन्हें किस श्रद्धा से देखते हैं और उच्च आदर्शों व धार्मिक क्रियाओं पर उनसे परामर्श लेते हैं, इससे सिद्ध हो जाता है कि कृष्ण का प्रभाव एक राजनीतिज्ञ के रूप में ही नहीं, अपितु धर्मात्मा व तपस्वी के रूप में भी था ।

"महाभारत युद्ध सामान्यतः 1400 ई० पूर्व माना जाता है । महा-भारत के पश्चात् 5-7 शताब्दियों तक कृष्ण की पूजा का अधिक प्रचार नहीं था, किन्तु आठवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में कृष्ण भक्ति का प्रचार जोरों से हुआ । यहाँ के प्रसिद्ध आलवार भक्तों में अधिकांश कृष्णोपासक थे । कृष्ण भक्ति को अत्यन्त आकर्षक स्वरूप प्रदान करने वाले भागवत पुराण की रचना भी दक्षिण भारत में होने की बात स्वीकार की जाती है ।"[1]

1- साहित्यिक निबन्ध - डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृष्ठ-237.

आठवीं नवीं शती में शंकराचार्य एवं कुमारिल भट्ट के विचारों के प्रभाव से भक्ति आन्दोलन अधिक तेजी से नहीं चल सका, किन्तु आगे चलकर रामानुज {11वीं शती} भट्ट {1199-1303 ई०} निम्बार्क {12-13वीं शती} वल्लभ {1479-1530 ई०} चैतन्य {16वीं शती} हित-हरिवंश {17वीं शती} आदि आचार्य भक्त हुये जिन्होंने भक्ति विरोधी सिद्धान्तों व वादों का खंडन करके भक्ति का प्रचार किया। बारहवीं शती से लेकर सत्रहवीं शती तक इन आचार्यों के द्वारा विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना हुयी जिनमें कृष्ण भक्ति सम्बन्धित निम्बार्क सम्प्रदाय,चैतन्य सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय व राधावल्लभ सम्प्रदाय प्रमुख हैं।

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के कृष्ण भक्त कवि भी पीछे नहीं रहे हैं। उन्होंने भी अपनी लेखनी कृष्ण भक्ति पर चलायी है। यहाँ के अनेकानेक साहित्यकारों ने कृष्ण विषयक प्रबन्ध और स्फुट रचनाओं द्वारा इस काव्यधारा को सशक्त बनाने में योगदान दिया। इनमें महाराजा मधुकर शाह{ओरछा}, जगन्नाथ मिश्र,कवीन्द्र केशव,कल्याण मिश्र, हरीराम शुक्ल, रामसखे, हरिसेवक,बख्शी हंसराज,कृष्णकवि खंजन, सानीद, कवल राय, गुमान मिश्र ,भक्ति सिंह, मोहन मिश्र, नवलसिंह कायस्थ,ठाकुर रूपसिंह, गोविन्ददास व्यास "विनीत" प्रभृति उल्लेखनीय हैं।

इनके काव्य में आधुनिक भाव और विचारों की अभिव्यक्ति हुयी है। हास्य और विनोद के विषय इनके काव्य में प्रयुक्त हुये हैं। बुन्देलखंड के इन राजनैतिक परिस्थितियों पर भी इनकी दृष्टि बराबर बनी रहती थी। देश की दशा सुधारने के लिये समय-समय पर जो राजनीतिक या धार्मिक आन्दोलन चले हैं वे सब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इनके काव्य में चित्रित हुये हैं। उदाहरणार्थ पण्डित गोविन्ददास व्यास "विनीत" तो बराबर आन्दोलनों में भाग लेते रहे और साहित्य सृजन भी करते रहे। सन् 42 के आन्दोलन में वे जेल भी गये थे।

इन बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में प्रचलित मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त अपनी इच्छानुसार नवीन छन्दों का भी विधान किया है । छन्दों के अतिरिक्त वस्तु-विधान और अभिव्यंजना शैली में भी कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं ।

बुन्देलखण्ड व ब्रज प्रदेश के आसपास होने के कारण ये एक-दूसरे से प्रभावित हैं । वैसे तो कृष्ण भक्ति का उद्गम भागवत के दशम स्कन्ध से माना गया है, पर ब्रज क्षेत्र में सूरदासजी को कृष्ण भक्ति को अभूतपूर्व रूप में बढ़ाने वाला माना जाता है । इस प्रकार बुन्देलखण्ड के अधिकांश कवियों पर महात्मा सूर का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अवश्य पड़ा है ।

बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रज-भाषा को ही काव्य रूप में अपनाया है, पर इस भाषा में उन्होंने स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया है ।

बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन वृत्त पर अपनी लेखनी चलायी है । बालक कृष्ण की रूप माधुरी, चपलता, धृष्टता, चातुर्य, गोप-जीवन, युवा कृष्ण, उनका विशाल धर्मोपदेशक रूप, राजनीतिक रूप आदि का वर्णन प्रभावशाली ढंग से किया है ।

अतः कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवि कृष्ण काव्य रचना में किसी क्षेत्र के कवियों से पीछे नहीं हैं ।

भक्त प्रवर गोस्वामी तुलसीदास :

भक्त शिरोमणि महाकवि तुलसीदास स्वामी रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में हुये । आठवीं शताब्दी में स्वामी शंकराचार्य ने अद्वैत का प्रतिपादन किया था और उन्होंने इस मत का प्रचार बड़ी प्रबलता से किया । उत्तरी भारत में प्रचलित शैव मत के आराध्य शिव को ब्रह्म का रूप देकर उन्होंने शिवाराधन का महत्व बढ़ा दिया । वैष्णव मत समाज को प्राप्य हो

गया और अधिकांशत: दक्षिण में अलवार संतों एवं ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित होता रहा । विक्रम की 12वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने पुन:इसे उत्तरी भारत में जीवन प्रदान किया । कारण यह था कि शंकराचार्य ने जिस अद्वैत का प्रचार किया था उसके अनुसार एक अनन्य निर्गुण ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, यह दृश्य जगत् मिथ्या है और यह ब्रह्म भी ध्यानगोचर है । यह ध्यानगोचरता भी भेद वृत्ति का अभाव हो जाना है न कि किसी का साक्षात्कार या मिलन । यह सिद्धान्त मुस्लिम राज्य में आपन्न हुए हिन्दू जन को किस प्रकार सान्त्वना दे सकता था । भला भूखे को कभी आध्यात्मिक व्यंजन चर्चा से कभी परितुष्टि हुयी है । इस समय तो एक ऐसे ईश्वर की आवश्यकता थी जो लोकरंजक हो और विपत्ति रक्षक हो तथा जो संसार में अवतार ले मनोचित पीड़ित जनता के प्राणों पर अवलंबन करता हो, न कि ऐसे ब्रह्म की जिसकी सत्ता का भी निश्चय न हो तथा ध्यान में भी किसी रूप में परिलक्ष्य न हो । शांकर मत से शैव मत को तो बल मिला ही था इससे नाथ अनुयायियों को भी बड़ा बल मिला । नाथ पंथियों ने शांकर अद्वैत एवं हठयोग को अपनाया था । कुछ समय तक इस मत का बड़ा प्रचार हुआ और वैष्णवी भावना लुप्तप्राय सी हो गई । हिन्दू जनता का हृदय टूटने लगा, क्योंकि आकाश कुसुमवत् उन्हें निरालम्ब अवलम्बन से कोई आशा न दीखती थी । सान्त्वना न मिलती थी । अत:उनका हृदय मानस बांध तोड़ गया और उमड़कर उधर बह गया जहाँ उसे पर्याप्त आश्रय मिला और जम कर रमा सका।

उपर्युक्त प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप अद्वैत के प्रतिरोधार्थ निम्न चार वैष्णव सम्प्रदाय उठ खड़े हुये :-

समय	संस्थापक	मत	सम्प्रदाय
12वीं शती	रामानुजाचार्य	विशिष्टाद्वैत	श्री सम्प्रदाय
13वीं शती	मध्वाचार्य	द्वैत	ब्रह्म सम्प्रदाय
13वीं शती	विष्णु स्वामी	शुद्धाद्वैत	रुद्र सम्प्रदाय
13वीं शती	निम्बार्काचार्य	द्वैताद्वैत	सनकादि सम्प्रदाय

इनमें से मध्वाचार्य ने विष्णु रूप ब्रह्म एवं निम्बार्क जी ने कृष्ण ब्रह्म की उपासना पर विशेष बल दिया । केवल रामानुजाचार्य ऐसे हुये जिन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार करते हुये रामोपासना का महत्व स्वीकार किया । क्योंकि रामानुजाचार्य के पाँच पीढ़ी पूर्व हुये उनके सिद्धान्तों के मूल प्रवर्तक शठकोपाचार्य ने "सहस्रगीति" नामक पुस्तक में लिखा था कि मैंने दाशरथि राम के अतिरिक्त अन्य की शरण नहीं ली है । अतः इस परम्परा के भक्तानुयायी राम के ही उपासक हुये । स्वयं रामानुजाचार्य के शिष्य कूरेश स्वामी ने "पंचस्तवी" में राम की भक्ति प्रदर्शित की है । इसी परम्परा में राघवानन्दजी के सुशिष्य रामानन्दजी हुये । इन्होंने बैरागी सम्प्रदाय स्थापित किया जिसमें बिना ऊँच नीच के भेदभाव के कोई भी सम्मिलित हो सकता था । रामानन्दजी वर्ण व्यवस्था के विरोधी नहीं थे, किन्तु उपासना के क्षेत्र में वे इसे महत्व नहीं देते थे । यही कारण था कि जुलाहा कबीर, चमार, रैदास तथा नाई सेना भी इनके भक्तों में उच्च स्थान रखते थे ।

इन्हीं रामानन्दजी की शिष्य परम्परा में भक्त प्रवर तुलसीदासजी हुये । इन कविकुलगुरु के विषय में भी हमें अनेक बातों के लिये परमुखापेक्षी अथवा कपोल कल्पनाश्रित रहना पड़ा है । तुलसीदास कृत ग्रन्थों के आधार पर तुलसीदास के जीवन एवं जीवनकाल के सम्बन्ध में जिन बातों का पता चलता है, वे निम्नलिखित हैं :-

<u>अन्तः साक्ष्य —</u>

विनय पत्रिका के अनुसार ये उच्च कुल व जाति के थे ।

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर
हेतु जो फल चारि को ।

विनय पत्रिका में एक स्थान पर इन्होंने अपना नाम रामबोला लिखा है -

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम [विनय पत्रिका]
नाम तुलसी पै भोंड़े भाग सो कहायो दास [कवितावली]

नामक एक ब्राह्मण कन्या से हुआ । पत्नी की प्रेरणा से ही ये रामोपासक हुये । संवत् 1680 में इन्होंने अपने प्राण विसर्जन किये ।

रचनायें —

विविध विद्वानों एवं ग्रन्थों के आधार पर तुलसीकृत सभी रचनाओं की संख्या 37 है । इनमें 13 ग्रन्थ तो प्रायःसभी विद्वान् प्रामाणिक एवं तुलसीकृत मानते हैं और शेष 24 अप्रामाणिक ।

प्रामाणिक रचनायें —

1- रामलला नहछू 2- बरवै रामायण 3- वैराग्य संदीपनी
4- पार्वती मंगल 5- जानकी मंगल 6- रामाज्ञा प्रश्न
7- दोहावली 8- कवितावली 9- गीतावली
10- कृष्ण गीतावली 11- विनय पत्रिका 12- रामचरित मानस
13- सतसई ।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके लिखे 24 ग्रन्थ और कहे जाते हैं ।

कृष्ण गीतावली[1] अध्ययन एवं प्रभाव :

भक्तवर तुलसीदासजी ने राम भक्ति के साथ-साथ कृष्ण भक्ति भी की है । इसका प्रमाण उनकी प्रमुख कृष्ण भक्ति से परिपूर्ण रचना कृष्ण गीतावली है । इसमें 61 पदों में श्रीकृष्ण का चरित्र लिखा हुआ है । यह ग्रन्थ ब्रजभाषा का प्रमुख ग्रन्थ है । इस पर सूर की मुद्रा स्पष्ट अंकित है । यह काव्य प्रबन्ध रूप में नहीं लिखा गया वरन् इसमें स्फुट रूप से कृष्ण की कुछ लीलाओं, गोपी-विरह, गोपी उद्धव-संवाद और भ्रमरगीत की कथा वर्णित है । यह ग्रन्थ बड़ा सरल है । यह एक मधुर गीति काव्य है । इसमें 20 पद बाल लीला के, तीन-

---

1- कृष्ण गीतावली - गोस्वामी तुलसीदास ।

रूप सौन्दर्य के, 9 विरह के, 27 उद्धव गोपिका-संवाद या भ्रमरगीत के और 2 द्रौपदी लज्जा रक्षण के हैं । सभी पद परम सरल व मनोहर हैं । पदों में ऐसा स्वाभाविक,सुन्दर व सजीव चित्रण है कि पढ़ते-पढ़ते लीला प्रत्यक्ष मूर्तिमान होकर सामने आ जाता है ।

गोस्वामीजी के इस ग्रन्थ से यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि श्रीराम रूपके अनन्योपासक होने पर भी श्रीगोस्वामीजी भगवान श्रीराम व श्रीकृष्ण में सदा अभेद बुद्धि रखते थे । भगवान के दोनों ही स्वरूपों तथा उनकी लीलाओं का वर्णन करने में अपने को कृतकृत्य तथा धन्य मानते थे । "विनय पत्रिका" आदि में भी श्रीकृष्ण का महत्व अनेकों स्थानों पर आया है, किन्तु कृष्ण गीतावली में तो वह प्रत्यक्ष प्रकट हो गया है ।

श्रीकृष्ण गीतावली मुक्तक काव्य के रूप में लिखा गया ब्रजभाषा का बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है । इसमें अनेक राग-रागनियों का प्रयोग हुआ है तथा इस पर सूरसागर का स्पष्ट प्रभाव है । अनेक पद तो सूरसागर की प्रतिलिपिमात्र हैं जिनमें सूर के स्थान पर तुलसी का व्यवहार हुआ है । इस ग्रन्थ में बाल-लीला के 20 पद हैं । तुलसी ने कृष्ण की बाल लीला का सहज, स्वाभाविक वर्णन करने का प्रयास किया है, किन्तु वे सूर को नहीं पा सके हैं ।

बाल लीला के पदों में उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति माता यशोदा के वात्सल्य के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं । माता यशोदा कृष्ण को बारम्बार देखती हैं, परन्तु उनका मन भरता नहीं है ।

[माता] लै उछंग गोविन्द मुख बार-बार निरखै ।
पुलकित तनु आनन्दघन छन छन मन हरखै ।।
पूछत तोतरात बात मातहिं जदुराई ।
अतिशय सुख जाते तोहि मोहि कहु समुझाई ।।

गोस्वामी तुलसीदास कृत कृष्ण गीतावली के बाल लीला के पदों में निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं :-

बालोचित वेशभूषा व चेष्टाओं का वर्णन :-

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कृष्ण की रूप माधुरी व बालोचित वेश-भूषा का रमणीक वर्णन किया है । उनके बाल ग्रंथ के वर्णन बड़े सरल, स्वाभाविक व चित्ताकर्षक है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं,क्रीड़ाओं उनके बहानों, झूठ बोलने आदि के मनोमुग्धकारी चित्र अंकित किये हैं । माता यशोदा कहती हैं —

सुन्दर मुख मोहि देखाउ इच्छा अति मोरे ।
मम समान पुन्य पुंज बालक नहिं तोरे ।।

बालकों की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि खाने-पीने की जो वस्तु उन्हें मिले वह उनकी ही रहे वे उसमें से किसी को हिस्सा नहीं देना चाहते हैं । श्रीकृष्ण भी माता यशोदा से कहते हैं कि वे अपनी रोटी में से बलदाऊ को नहीं देंगे ।

" छोटी मोटी मीसी रोटी
चिकनी चुपरि कै तू
दे री, मैया । "लै कन्हैया"
"सो कब ? "अबहिं तात ।"
"सिगरियै हौंही खैहौं,
बलदाऊ को न दैहौं ।"
"सो क्यों ? "भटू तेरो कहा"
कहि इत उत जात ।।[1]"

श्रीकृष्ण गीतावली में श्रीकृष्णजी की अनेकों नटखट पने की क्रीड़ाओं का वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी ने किया है, देखिये —

श्रीकृष्णजी किसी गोपिका के घर में प्रविष्ट होकर उसका माखन खा जाते हैं और बर्तन तोड़ देते हैं तो गोपी माता यशोदा से शिकायत करती है—

1- कृष्ण गीतावली - गोस्वामी तुलसीदास ।

"तोहि स्याम की सौंह जसोदा ।
आइ देखु गृह मोरे ।
कैसी हाल करी यहि ढोटा,
छोटे निपट अनोरे ।।
गोरस हानि सहौं, न कहौं,कछु
यहि ब्रजबास बसेरे ।
दिन प्रति भाजन कौन बेसाहै ?
घर निधि काहू केरे ।।"

अब श्रीकृष्णजी कहते हैं कि मैया यह गोपिका मुझ पर झूठा आरोप लगा रही है इसे तो पराये घर भटकने की आदत पड़ गयी है और यहाँ आने के लिये तरह - तरह की युक्तियाँ सोचा करती हैं । देखिये कितना स्वाभाविक चित्रण है —

मो कहँ झूठेहु दोष लगावहिं ।
मैया ! इन्हहि बानि पर घर की,
नाना जुगुति बनावहिं ।।
इन्ह के लिये खेलिबो छाँड़ौं,
तऊ न उबरन पावहिं ।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस,
देन उरहनो आवहिं ।।

उपर्युक्त पंक्तियाँ उर से प्रभावित करती हैं । सूरदासजी के श्रीकृष्ण भी शिकायत होने पर माता यशोदा से कहते हैं —

"मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो
भोर भयो गैयन के पाछे
मधुबन मोहिं पठायो ।"

श्रीकृष्ण गीतावली का एक-एक पद बाल मनोविज्ञान व बाल मनोकल्प की सजीव धारा है जिसमें अवगाहन करने से मन डूब जाता है ।

कबहुं न जात पराये धामहिं ।

खेलत ही देखौं निज आंगन सदा सहित बलरामहिं ।।

मेरे कहां थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर या माहिं ।

ठाढ़ी ग्वालि ओरहना के मिस आय बकहिं बेकामहिं ।।[1]"

ग्वालिन आकर कहती है कि श्रीकृष्ण ने दही माखन फैलाकर बर्तन भी तोड़ना आरम्भ कर दिया है तो माता यशोदा कहती हैं —

"ग्वालि वचन सुनि कहति जसोमति,

भलो न भूमि पर बादर छीबो ।

है कहि लागि कहौं तुलसी प्रभु,

कबहुं न तजत पयोधर पीबो ।"

गोस्वामी तुलसीदासजी की कृष्ण गीतावली पर सूर का प्रभाव है । उनके वात्सल्य वर्णन पर उसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । गोस्वामी जी और सूर के काव्य में यही अन्तर है कि गोस्वामीजी का काव्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, सूर का सीमित । श्रृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहांतक सूर की दृष्टि पहुंची है वहां किसी और कवि की नहीं । इस क्षेत्र में तो मानो इस महाकवि ने दूसरे के लिये कुछ छोड़ा ही नहीं है । गोस्वामी तुलसी दास जी ने कृष्ण गीतावली में बाल लीलाओं का वर्णन किया है,परन्तु उनमें बालसुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आ पायी है,जो सूर के काव्य में है । बालचेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार सूर के काव्य में है कि उसकी कोई तुलना ही नहीं । देखिये —

काहे को आरि करत मेरे मोहन । यों तुम आंगन लोटी ?

जो मांगहु सो देहुं मनोहर, यहै बात तेरी खोटी ।।[2]"

* * * * *

सोभित कर नवनीत लिये ।

घुटुरन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये ।

1- कृष्ण गीतावली - गोस्वामी तुलसीदास ।

2- भ्रमरगीत सार - महाकवि सूरदास ।

बालकों के स्वाभाविक भावों की जो व्यंजना सूर के काव्य में हुई है वह कृष्ण गीतावली में नहीं । सूर का एक पद देखिये —

"मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी ।
तू जो कहति बल की बेनी, ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी ।।"

वात्सल्य का जितना प्रचुर और विस्तारपूर्वक वर्णन सूर ने किया है उतना अन्य किसी कवि ने नहीं । गोस्वामीजी का वर्णन सूर की तुलना में अधिक सजीव व मार्मिक नहीं है ।

इन्द्रकोप – गोवर्धन धारण :

श्रीकृष्ण गीतावली में गोस्वामी तुलसीदासजी ने इन्द्रकोप का वर्णन किया है । इन्द्रकोप के पश्चात् श्रीकृष्ण गोवर्धन धारण करते हैं । इन्द्र ब्रज में बादलों को भेज देता है । चारों दिशाओं में दु:सह बिजली चमकती है व घोर अन्धकार छा जाता है । कभी बिजली गिरती है तो कभी बड़ी भयानक बूँदें बरसती हैं । गाय, बछड़े, बालक, ग्वाले, गोपियाँ सभी शीत से थर-थर काँप रहे हैं उसी समय श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत को धारणकर सभी ब्रजवासियों की रक्षा करते हैं । गोस्वामीजी कहते हैं कि इन्द्र अपनी-सी करके सारा गर्व खोकर लौट जाता है । देखिये —

सुनि हँसि उठ्यो नन्द को नायक,
लो कर कुधर उठाई ।
तुलसिदास मघवा अपनी सो
करि गयो गर्व गँवाई ।।

गोचारण अथवा छाक लीला :

सूरदास के समान तुलसीदासजी ने भी गोचारण या छाक लीला का एक पद लिखा है । तुलसीदासजी लिखते हैं कि एक बार श्रीकृष्णजी को अत्यधिक क्षुधा लगी, घर से छाक आने में देरी हो गयी तो उन्होंने सीधा सिख

प्रकार दही मथने से मक्खन निकलता है उसी प्रकार जल बिलोने से निकलेगा तो सभी पानी को मथकर आग सहित पीने लगे, किन्तु पेट न भरा । फिर गायों के थन से दूध पिया तो भी पेट न भरा तो बलराम ने श्रीकृष्ण से कहा कि बंशीवादन करके सभी गायों को बुलाओ । इतने में माता द्वारा भेजी हुयी छाछ आ गयी । सभी बंदर और हिरनों के समान नाचने-कूदने लगे । देवता भी श्रीबालकृष्ण की बालकेलि का आनन्द उठाने लगे व पुष्प वर्षा करने लगे । यहाँ गोस्वामी जी ने मौलिक कल्पना की है कि बालक हरिणों व बंदरों के समान उछल-कूद करने लगे ।

यमुना तट पर बंशीवादन :

मनोहर कृष्ण सुन्दर रीति से नट-राग गा रहे हैं । वे यमुना तट पर हरसिंगार के वृक्ष के नीचे खड़े हैं । शीश पर मोर चन्द्रिका और मंजुल गुंजाओं के गुच्छों को धारण किये हैं । शरीर पर पीतपट ओढ़े हैं,मुरली की मधुर स्वर लहरी से मुग्ध होकर पशु-पक्षी,गोप-गोपिकायें,गायें सभी अत्यन्त समीप से चित्रलिखित मूर्ति को देख रहे हैं । सभी मुग्ध हैं । देखिये —

गावत गोपाल लाल नीके राग नट हैं
चलि री आलि देखन, लोचन लाहु पेखन
ठाढ़े सुतरु तर तरनी के तट हैं ।।
तुलसी प्रभु निहारि जहाँ तहाँ ब्रजनारि,
ज्यों ठाढ़ी मग जिय रीति भरे घट हैं ।।[1]

श्रीकृष्ण शोभा वर्णन :

गोस्वामीजी ने श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य के भी पद लिखे हैं । उनके पद शिष्ट मर्यादित हैं । उन्होंने मर्यादापूर्ण ढंग से श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन किया है । सौन्दर्य वर्णन में गोस्वामीजी ने प्राचीन उपमाओं का ही प्रयोग किया है । देखिये —

1- कृष्ण गीतावली — गोस्वामी तुलसीदास ।

विस्तृत भूमि मिल गयी । कृष्ण गीतावली में भी उन्होंने उद्धव प्रसंग में इसके लिये स्थान ढूंढ ही लिया है । तुलसी ने सूर के समान ही ज्ञान या योग मार्ग को संकीर्ण, कठिन, नीरस तथा भक्ति मार्ग को विशाल सरस और सरल कहा है । ज्ञान या योग का अभ्यासी विश्व की विभूति से अपनी वृत्ति समेट कर अंतर्मुख हो जाता है । इसलिये गूढ़ रहस्य व उलझन की सृष्टि होती है, पर भक्ति का अनुरागी बहिर्मुख रहता है । वह जगत् के विस्तृत, शोभन व लोकस्थित कर्मों में अपनी वृत्ति रमाये रहता है । इसलिये दुराव छिपाव से दूर रहता है । उसके लिये सबकुछ खुला हुआ है । इस प्रकार भक्ति का राजमार्ग चौड़ा, निष्कंटक व सीधा है । उसमें गोपन या उलझाव नहीं है ।

सगुण-निर्गुण के खंडन मंडन के साथ-साथ तुलसीदासजी ने श्रीकृष्ण-गीतावली में गोपियों का विरह का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है । यद्यपि तुलसीदासजी का विरह वर्णन सूर के विरह वर्णन के समान व्यापक विस्तृत व वाग् वैदग्ध्य से पूर्ण नहीं है फिर भी उसमें विरह की अनेकों दशाओं का वर्णन है । देखिये – श्रीकृष्ण विरह कातर एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है —

सत्य सनेह सील सोभा सुख सब गुन उदधि अगारि ।
देख्यो सुन्यो न कबहुँ काहु कहुँ मीन वियोगी बारि ।।
कहिबो कछु दूसरी है को, सो कृपानिधि करतारि ।
जिन तें बिलग बिलग अलिकुल की सुधा लेखी गारि ।।[1]

गोपियों का विरह चरम सीमा पर पहुंच चुका है न तो उसका वेग ही घटता है, न उसका रथ आगे बढ़ता है, वह सूखन रूपी आकाश पर आच्छादित हो गया है । गोपियाँ घुल-घुल कर श्याम सुन्दर की रूपराशि का ही चिन्तन कर रही हैं ।

1- श्रीकृष्ण गीतावली - गोस्वामी तुलसीदास ।

श्रीकृष्ण गीतावली में उद्धव गोपिकाओं के पास आते हैं और श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाते हैं । गोपिकायें विश्वास नहीं करती हैं और कहती हैं - ये कहीं कुब्जा के कान तो नहीं ।

मधुप ! तुम्ह कान्ह ही की
कही क्यों न कही है ? ।
यह बतकही चपल चेरी की
निपट चरेरीयै रही है ।।[1]

श्रीकृष्ण गीतावली में निर्गुण का खण्डन व सगुण का मण्डन गोपिकाओं के माध्यम से किया है । गोपिकाओं का प्रेम प्रलयकालीन समुद्र की भाँति बहुत अधिक बढ़ गया है उसे महान योगरूपी जल नहीं बुझा सकता है ।

बढ़यो प्रेम अति प्रलय के घर ज्यों
विपुल जोग जल बोरि न पारे ।
तुलसिदास ब्रज बनितनि को व्रत
समरथ को करि सकत निवारे ।।[2]

इस प्रकार तुलसीदास जी ने कृष्ण गीतावली में विरह का सुन्दर मर्मस्पर्शी चित्रण किया है ।

विरह वर्णन के अतिरिक्त एक पद भक्त मर्यादा रक्षण का भी है । कृष्ण भक्त वत्सल हैं द्रोपदी की आर्त पुकार सुनकर उसकी सहायतार्थ तुरन्त दौड़े आते हैं देखिये —

हाथ उठाय अनाथनाथ सों
"पाहि पाहि प्रभु ! पाहि" पुकारी
तुलसी परखि प्रतीति प्रीति गति
आरतपाल कृपालु मुरारी ।
बसन वेष राखी बिसेषि लखि
बिरदावलि मूरति नर नारी ।।[3]

1- कृष्ण गीतावली - तुलसीदास ।
2- कृष्ण गीतावली - तुलसीदास ।
3- कृष्ण गीतावली - तुलसीदास ।

इस प्रकार भक्त मर्यादा रक्षण के साथ ही श्रीकृष्ण गीतावली की रचना पूर्ण हो जाती है। तुलसी के कृष्ण भी बड़े भक्त वत्सल हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास भी राम के परमोपासक होते हुये श्रीकृष्ण के भक्त थे। गोस्वामी जी ने श्रीकृष्ण भक्ति पर अपनी लेखनी चलाकर बुन्देलखण्ड की इस वीर भूमि को श्रीकृष्ण भक्ति की रस-धारा से सिंचित किया है। गोस्वामी जी पर कृष्ण भक्ति का प्रभाव पड़ा है। अतः हम कह सकते हैं कि तुलसीदास जी के युग में बुन्देलखण्ड में कृष्ण भक्ति की धारा अबाध रूप से प्रवाहित हो रही थी।

व्यास श्रीहरीराम शुक्ल -

बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों में व्यास श्रीहरीरामजी का नाम भी अग्रगण्य है। ये ओरछा के रहने वाले सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण थे। ओरछा नरेश मधुकरशाह के ये राजगुरु थे। पहले ये गौड़ सम्प्रदाय के वैष्णव थे, पीछे हित-हरिवंश जी के शिष्य होकर राधावल्लभी हो गये। इनका काल संवत् 1620 के आसपास है। पहले ये संस्कृत के शास्त्रार्थी पण्डित थे और सदा शास्त्रार्थ करने के लिये तैयार रहते थे। एक बार वृन्दावन में जाकर गोस्वामी हित-हरिवंशजी को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। गोसाईंजी ने नम्र भाव से यह पद कहा —

यह जो एक मन बहुत ठौर करि
कहि कौन सचु पायो।
जहँ तहँ विपति जार जुवती
ज्यों प्रगट पिंगला गायो॥[1]

यह सुनकर व्यासजी चेत गये और हितहरिवंशजी के अनन्य भक्त हो गये। उनकी मृत्यु पर इन्होंने इस प्रकार अपना शोक प्रकट किया —

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-182.

हुतो रस रसिकन को आधार ।

बिन हरिवंशहि सरस रीतिको कापै चलिहै भार ?

को राधा दुलरावै गावै, वचन सुनावै चार ?

वृन्दावन की सहज माधुरी,कहिहै कौन उदार ?

पद रचना अब कापै ह्वैहै ? निरस भयो संसार ।

बड़ो अभाग अनन्य सभा को, उठिगो ठाठ सिंगार ।।

जिन बिन दिन छिन जुग सम बीतत सहज रूप आगार ।

व्यास एक कुल-कुमुद-चंद बिनु उडुगन जूठी थार ।।

जब हितहरिवंशजी से दीक्षा लेकर व्यासजी वृन्दावन में ही रह गये तब महाराज मधुकरशाह इन्हें ओरछा ले जाने के लिये स्वयं आये, पर ये वृन्दावन छोड़कर न गये और अधीर होकर इन्होंने यह पद कहा —

"वृन्दावन के रूख हमारे मात पिता सुत बंध ।

गुरु गोविन्द साधुगति मति सुख फल फूलन की गंध ।।

इन्हहिं पीठि दै अनत डीठि करै सो अंधन में अंध ।

व्यास इन्हहिं छोड़ै और छुड़ावै ताको परियो कंध ।।"

इनकी रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से अधिकांश कृष्ण भक्तों की अपेक्षा व्यापक है । ये श्रीकृष्ण की बाललीला और शृंगार लीला में लीन रहने पर भी बीच-बीच में संसार पर भी दृष्टि डाला करते थे । इन्होंने तुलसीदासजी के समान खलों और पाखंडियों आदि का भी स्मरण किया है और रसगान के अतिरिक्त तत्व निरूपण में भी ये प्रवृत्त हुये हैं । प्रेम को इन्होंने शरीर व्यवहार से अलग "मन" अर्थात् शुद्ध मानसिक या आध्यात्मिक वस्तु कहा है । ज्ञान वैराग्य और भक्ति तीनों पर बहुत से पद और साखियाँ मिलती हैं । इन्होंने एक "रासपंचाध्यायी" भी लिखी है जिसे लोगों ने भ्रम से सूरसागर में मिला लिया है । इनकी रचना के थोड़े से उदाहरण निम्नलिखित हैं —

व्यास हरीराम शुक्लजी का जन्म संवत् 1590 वि0 के लगभग हुआ था । उनका कविता काल संवत् 1631 वि0 के लगभग माना गया है । उनका उपनाम व्यास था और उन्होंने यहाँ तक प्रसिद्धि प्राप्त करली थी कि अधिकांश लेखकों ने उनको अपने ग्रन्थों में उपनाम से ही सम्बोधित किया है । शुक्लजी संस्कृत भाषा के अगाध पंडित थे । आप गोस्वामी हितहरिवंशजी के शिष्य होकर राधा वल्लभीय हो गये थे । आपकी दृष्टि में साधु मात्र भगवत् स्वरूप थे । ब्रज के आप अनन्य भक्त थे । जितने जोरदार शब्दों में ब्रज की आपने प्रशंसा की है उतनी शायद ही किसी ने की हो । जाति और कुलीनता से आप भक्ति और भक्त को ऊँचा बतलाते थे ।

वैराग्य, ज्ञान, सिद्धान्ती पदों और साखियों में आपने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है । आपकी कवितायें ललित और भावपूर्ण हैं । पाखंडियों को आपने खूब खरी खोटी सुनायी है ।

व्यास मिठाई विप्र की, तामें लागे आगि ।
वृन्दावन के स्वपच की जूठनि खैये मांगि ।।
सुकटें मेवा भक्त के, मिथ्या भोग विलास ।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठनि खैये व्यास ।।

*　　*　　*　　*　　*

वृन्दावन के स्वपच को राखिये सेवक होय ।
तासों भेद न कीजिये, पीजे रज पद धोय ।।
व्यास कुलीनन कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस ।
स्वपच भक्त की पानही, तुलैं न तिनके सीस ।।[1]

*　　*　　*　　*　　*

<u>सारंग</u>

वृन्दावन कुंज कुंज केलि केलि फूली ।
कुंज कुसुम पुंज गलित विकुल अलि भूली ।।

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल.

मधुकर कुल किय अगाद, मृगनै[2] लागुली ।।
अम्बुज जल पंकज पर, दामिनि[3]सी छबी[4]।
ग्वाल दासि रंग राखि देख देव भूली 5 ।। 6

साखी

ग्वाल दास ले पतितों सों
प्रभु की पलटी टेव ।
उन उर दीनों एक पग,
तुम दोऊ पग देव ।।

" " "

ग्वाल दीनता के सुमेर
कब जाने का मंद
दीन भये ते मिलत हैं
दीनबन्धु सुखकंद ।।[1]

बलभद्र मिश्र —

श्री बलभद्र मिश्र ओरछा के सनाढ्य ब्राह्मण पंडित काशीनाथ के पुत्र और प्रसिद्ध कवि केशवदास के बड़े भाई थे । इनका जन्मकाल संवत् 1600 के लगभग माना जा सकता है । "नखशिख" इनका एक प्रसिद्ध श्रृंगारिक ग्रन्थ है जिसमें इन्होंने नायिका के अंगों का वर्णन उपमा, उत्प्रेक्षा, संदेह आदि अलंकारों के प्रचुर विधान द्वारा किया है । ये केशवदासजी के समकालीन या पहले के उन कवियों में से थे जिनके चित्त में रीति के अनुसार काव्य रचना की प्रवृत्ति हो रही थी । कृपारामजी ने जिस प्रकार रस रीति का अवलंबन कर नायिकाओं का वर्णन किया उसी प्रकार बलभद्र नायिका के अंगों को एक स्वतन्त्र विषय बनाकर चले थे । इनका रचनाकाल संवत् 1640 के पहले माना

1- बुन्देल वैभव - पं0 गौरीशंकर द्विवेदी "शंकर", पृष्ठ-198

जा सकता है । इनकी रचना बहुत प्रौढ़ और परिमार्जित है । इससे अनुमान होता है कि नखशिख के अतिरिक्त भी इन्होंने बहुत-सी रचनायें की होंगी । संवत् 1891 में गोपाल कवि ने बलभद्र कृत "नखशिख" की एक टीका लिखी जिसमें उन्होंने बलभद्र मिश्र के तीन और ग्रन्थों का उल्लेख किया है । बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक और गोवर्धन सतसई टीका आदि । पुस्तकों की खोज में उनका "दूषण विचार" नामका एक और ग्रन्थ मिला है जिसमें काव्य दोषों का निरूपण है । नखशिख के दो कवित्त उद्धृत किये जाते हैं ।

पाटल नयन कोकनद के से दल दोउ,
बलभद्र बासर उनींदी लखी बाल में ।
सोभा के सरोवर में बाड़व की आभा कैधौं,
देव धुनी भारती मिली है पुन्यकाल में ।।
काम कैवरत कैधौं नासिका-उडुप बैठो,
खेलत सिकार तरुनी के मुखताल में ।[1]
लोचन सितासित में लोहित लकीर मानो,
बाँधि जुग मीनलाल रेसम की डोर में ।।

: : : :

मरकत के सूत कैधौं पन्नग के पूत अति,
राजत अभूत तमराज कैसे तार हैं ।
मखतूल गुनग्राम सोभित सरस स्याम,
काम मृग कानन के कुहू के कुमार हैं ।
कोप की किरन, कै जलजनाल नील तंतु,
उपमा अनंत चारु चँवर सिंगार हैं ।
कारे सटकारे भीजि सोंधे सों सुगंध बास,
ऐसे बलभद्र नवबाला तेरे बार हैं ।।[2]

1- नखशिख — श्री बलभद्र मिश्र ।
2- हिन्दी साहित्य का इतिहास -पं०रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 198-199.

केशवदास – कविप्रिया एवं रसिकप्रिया :

रीतिकालीन हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र पण्डित केशवदासजी ने संवत् 1612 में बुन्देलखण्ड की भूमि को दीप्त किया । आप सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशीनाथजी के पुत्र थे । आप ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के भ्राता इन्द्रजीत सिंह की सभा में रहते थे । यहाँ उनका बड़ा मान था । इनके वंश में संस्कृत के अच्छे विद्वान होते आये थे । इनके भाई पण्डित बलभद्र मिश्र भाषा के अच्छे कवि थे । इस प्रकार की परिस्थिति में रहकर ये अपने समय के प्रधान साहित्य शास्त्रज्ञ कवि माने गये । इनके आविर्भावकाल से कुछ पहले ही रस अलंकार आदि काव्यांगों के निरूपण की ओर कुछ कवियों का ध्यान जा चुका था । यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि हिन्दी काव्य रचना प्रचुर मात्रा में हो चुकी थी । लक्ष्य ग्रन्थों के उपरान्त ही लक्षण ग्रन्थों का निर्माण होता है । केशवदासजी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे अतः शास्त्रीय पद्धति से साहित्य चर्चा का प्रचार भाषा में पूर्ण रूप से करने की इच्छा इनके लिये स्वाभाविक थी ।

इनका अवसानकाल 1674 निश्चित् किया गया है । राजा इन्द्रजीत का दरबार यद्यपि काव्य चर्चा के लिये प्रसिद्ध था ही, साथ ही साथ नृत्य-गीत का भी समागम होता था । बताया जाता है कि छः प्रसिद्ध वेश्यायें इनके यहाँ रहती थीं । सम्भव है उनकी देखरेख केशव के ही हाथ में रही हो । क्योंकि कहा जाता है कि एक वेश्या की शिक्षा के लिये ही केशव ने "कविप्रिया" की रचना की थी । उन्होंने स्वयं लिखा है —

सविता जू कविता दई, ताकहुं परम प्रकास ।
ताके काज कवि-प्रिया कीन्हीं केशवदास ।।[1]

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास —पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ।

वैसे भी वारविलासिनी "राय प्रवीन" में इनकी बहुत श्रद्धा थी। ये संसार के परमभक्त थे। संसारी वैभव विलास इनसे छूटे नहीं छूटता था। अन्त में कराल-काल ने इन्हें अपने निष्ठुर हाथों में जकड़ ही लिया। केशवदासजी ने अपने कृतित्व द्वारा साहित्य को सप्त ग्रन्थों से शोभित किया है जो निम्नलिखित हैं —

1- रामचन्द्रिका
2- कवि प्रिया
3- रसिक प्रिया
4- विज्ञान गीता
5- रतन बावनी
6- वीरसिंह देव-चरित्र
7- जहाँगीर-जसचन्द्रिका

कवि प्रिया :

केशवदासजी का सम्पूर्ण जीवन रसिकता से पूर्ण रहा है। वैसे तो भक्ति-क्षेत्र में इनके इष्ट राम ही रहे हैं पर कवि प्रिया में कृष्ण को भी कम महत्व नहीं दिया है। कवि प्रिया कवि शिक्षा का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कवि ने शास्त्रीय लक्षणों की रचना की है। कवि प्रिया में अलंकारों का विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ में नायक नायिका का चित्रण राधाकृष्ण के रूप में किया है। केशव ने कवि प्रिया में विभिन्न काव्यांगों का सम्यक् निरूपण करते हुये भाषा का कार्य, कवि योग्यता, कविता का स्वरूप, कविता का उद्देश्य,कवियों के भेद, काव्य रचना के ढंग, काव्य विषय,वर्णन के ढंग, काव्य-दोष,अलंकार, रस छंद विविध कृतियों पर व्यवस्थित रूप से लिखा है। आचार्य श्यामसुन्दर दास ने केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक माना है। श्रीश्यामबिहारी मिश्र भी अपनी खोज रिपोर्ट में केशव को ही रीतिकाव्य धारा का संस्थापक कवि मानते हैं। आचार्य गुलाबराय ने भी लिखा है कि-

"रीतिकाल की मूल प्रवृत्ति लक्षण ग्रन्थों को लिखने और लक्षणों के अनुकूल उदाहरण प्रस्तुत करने में थी । इस प्रवृत्ति का पूर्ण परिपाक केशव में मिलता है । वस्तुतःकेशवको ही रीतिकाल का प्रवर्तक मानना चाहिये ।

केशव का आचार्यत्व स्थापन करने वाली दो पुस्तकें हैं - कविप्रिया व रसिक प्रिया । कविप्रिया के अन्तर्गत् सोलह प्रभाव हैं जिनमें पहले प्रभाव में गणेश वन्दना, ग्रन्थ प्रणयन काल तथा नृप वंश का वर्णन मिलता है । दूसरे प्रभाव में कवि ने अपने वंश का वर्णन किया है । तीसरे प्रभाव में काव्य-दोष तथा गण-अगण का वर्णन किया है । चौथे प्रभाव में कवि भेद तथा कवि रीति एवं कवि प्रसिद्धियों का वर्णन किया है । पाँचवे प्रभाव में अलंकारों के भेद का वर्णन किया है जिसमें पहले अलंकार के सामान्य और विशेष दो भेद किये हैं फिर सामान्य के वर्ण, वर्ण्य भूमि और राजश्री चार भेद किये हैं । तत्पश्चात् वर्णालंकार के श्वेत, पीत, कृष्ण, अरुण, धूम्र, नील एवं मिश्र सात भेद किये हैं । इसके अनन्तर छठे प्रभाव में कवि ने वर्ण्यालंकार का वर्णन किया है जिसमें सम्पूर्ण आवर्त आदि अट्ठाईस प्रकार के वर्ण्य विषयों - जाति, गुण, क्रिया, द्रव्यात्मक आदि की तालिका दी है । सातवें प्रभाव में देश, नगर, वन, बाग, गिरि, आश्रम आदि प्राकृतिक वर्ण्य विषयों का वर्णन करते हुये भूमि का उल्लेख किया है । आठवें प्रभाव में राजा, रानी, मंत्री, संग्राम, आखेट आदि राज्य सम्बन्धी वर्ण्य विषय का उल्लेख करते हुये राजश्री का उल्लेख किया है । नवें प्रभाव से लेकर चौदहवें प्रभाव तक स्वभावोक्ति,विभावना, आक्षेप, आशिष्, वक्रोक्ति, समासोक्ति, उपमा आदि विशिष्टालंकारों का विस्तार सहित वर्णन किया है । पन्द्रहवें प्रभाव में नखशिख वर्णन करते हुये यमक और उसके भेदों का वर्णन किया है । इस प्रकार कविप्रिया में केशव ने अन्य काव्यांगों की अपेक्षा अलंकारों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है । वैसे भी केशव के काव्य में अलंकारों का प्राधान्य होने के कारण केशव को अलंकारवादी कहा जाता है । केशव ने स्वयं भी काव्य में अलंकारों को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुये लिखा है :-

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त ।।[1]"

दण्डी आदि अन्य अलंकारवादी आचार्यों की भाँति केशव ने भी रस की सत्ता स्वीकार करते हुये रस की गणना रसवद् अलंकार के अन्तर्गत की है और कविप्रिया में रसवदलंकार का उल्लेख करते हुये उसमें सभी रसों का वर्णन किया है । केशव के अलंकार निरूपण में विविधता तथा विस्तार के साथ नवीनता के भी दर्शन होते हैं । जैसे केशव ने सुसिद्ध, विपरीत तथा अन्योक्ति नामक कुछ नवीन अलंकारों का वर्णन किया है जिनका उल्लेख भट्टि, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, भोज, मम्मट आदि किसी भी संस्कृत के आचार्य ने नहीं किया है ।

केशव ने अलंकारों का वर्णन बड़ी कुशलता एवं तत्परता के साथ किया है फिर भी केशव के अलंकार निरूपण में कितने ही दोष दिखाई देते हैं । सर्वप्रथम तो केशव द्वारा दिये गये अलंकारों के लक्षण व उदाहरण स्पष्ट नहीं हैं । जैसे क्रमालंकार, प्रेमालंकार, निरुक्ति आदि के लक्षण पढ़कर कोई भी व्यक्ति इन अलंकारों का ठीक-ठीक स्वरूप नहीं समझ सकता है । दूसरे केशव के कुछ अलंकारों के लक्षण एक समान हो गये हैं जैसे केशव ने पर्यायोक्ति तथा समाहित अलंकारों के लक्षण एक से दिये हैं । यही बात स्वभावोक्ति एवं उक्त अलंकार में भी पायी जाती है । स्वभावोक्ति का लक्षण यह है :-

"जाको जैसो रूप गुन कहिय ताही साज ।
ताकों जानि स्वभाव सब, कहि बरनत कविराज ।।"

यही बात उक्त अलंकार में भी है :-

"जो को जैसो रूप बल कहिए ताही रूप ।
ताको कवि कुल युक्त कहि बरनत विविध स्वरूप ।।[2]"

1- कवि प्रिया — श्री केशवदास ।
2- कवि प्रिया — श्री केशवदास ।

केशव के कतिपय अलंकारों के लक्षण और उदाहरणों में सामन्जस्य नहीं है । केशव के कतिपय अलंकारों में अतिव्याप्ति के दर्शन होते हैं । केशव ने कुछ अलंकारों के उपभेद तो किये हैं, परन्तु उनके लक्षण नहीं दिये हैं ।
केशव की कविप्रिया का उद्देश्य राधा-कृष्ण की भक्ति नहीं है वरन् अलंकारों के माध्यम से पाण्डित्य प्रदर्शन था । केशव के पूर्ववर्ती कवियों ने राधा-कृष्ण की भक्ति की आड़ में नायक नायिका भेद का वर्णन किया था, वही केशव ने भी किया । फिर भी जब राधा-कृष्ण को नायक नायिका मानकर उन्होंने अपनी कविप्रिया की रचना की है तो कहना पड़ता है कि आचार्य केशव ने भी श्रीकृष्ण का आलम्बन लिया । इस प्रकार कृष्ण काव्य की रचना में बुन्देलखण्ड देन अपनी है ।

रसिक प्रिया :-

"रसिक प्रिया" में केशव ने श्रृंगार का रसराजत्व स्थापित किया है । केशव ने कहे -

"अति रति गति मति एक करि
विविध विवेक विलास"[1]

कहकर विभिन्न रस भेद,विविध संचारी भावों, अनेक वृत्तियों आदि की ओर संकेत किया है, किन्तु केशव ने इतना कहकर भी अन्त में विविध वृत्ति, रीति एवं भावादि को श्रृंगार रस के अन्तर्भुक्त प्रदर्शित करके श्रृंगार रस का सर्वांग प्राधान्य घोषित किया है । इतना होने पर भी केशव ने श्रृंगार रस के संयोग और वियोग नामक दोनों भेदों का उल्लेख तो किया है, किन्तु उनके लक्षण नहीं दिये हैं । इसके साथ ही संयोग और वियोग के "प्रच्छन्न" व "प्रकाश" नामक दो भेद किये हैं । नायक स्वकीयत्व, दर्शन के भेदों, आठों नायिकाओं, वियोग की दस दशाओं, संचारी भावों, मान आदि में से प्रत्येक के "प्रच्छन्न" व "प्रकाश" दो भेद किये हैं । यद्यपि केशव का यह वर्गीकरण

1- रसिक प्रिया — श्री केशव दास ।

सर्वथा मौलिक है तथा ऐसे उपभेद किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में नहीं मिलते फिर भी इन उपभेदों का कोई मनोवैज्ञानिक आधार नहीं दिखायी देता । इसके अतिरिक्त केशव ने नायक नायिका के जो भेद उपभेद किये हैं वे परम्परागत हैं । इनमें से केशव ने स्वकीया, परकीया एवं सामान्या नायिकाओं में से सामान्या का विवेचन तो अनुचित जानकर छोड़ दिया है, किन्तु परकीया के भी अधिक भेद-प्रभेद नहीं किये हैं । केवल स्वकीया का ही विस्तारपूर्वक विवेचन किया है । इसके साथ ही केशव ने आलम्बन एवं उद्दीपन विभाव का वर्णन करते हुये आलम्बन विभाव के अन्तर्गत् नायक-नायिका के यौवन,रूप, जाति, लक्षण, कांति ऋतु,पुष्प, फल, वन, उपवन, जलधारा युक्त जलाशय, कमल, चातक, मोर, कोयल की कूक, भौंरों की गुंजार आदि की गणना की है, किन्तु ये सभी वस्तुयें आलम्बन विभाव के अन्तर्गत् न आकर उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत् आती हैं । इसके साथ ही केशव ने उद्दीपन के अन्तर्गत् केवल नायक नायिका का परस्पर देखना,आलाप, आलिंगन, नखदान,रददान, चुम्बन, मर्दन तथा स्पर्श की गणना की है । केशव ने विभिन्न भावों के भी लक्षण दिये हैं, परन्तु "विलास" तथा "कुट्टमित" के लक्षण अस्पष्ट हैं । केशव ने हास्य रस के नवीन चार भेद किये हैं । मन्दहास, कलहास, अतिहास तथा परिहास । केशव ने विषाद एवं व्याधि नामक दो नये संचारी भावों को जोड़ कर संचारियों की संख्या पैंतीस स्वीकार की है ।

केशव ने अलंकारों की अपेक्षा रस का विवेचन अधिक सफलतापूर्वक किया है । केशव का रस विवेचन भी दोषपूर्ण है । इसमें लक्षण व उदाहरण में सामन्जस्य नहीं है । केशव ने बहुत से स्थलों पर अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण और गहरी सूझबूझ से काम लिया है । केशव ने परम्परागत लक्षणों में किंचित परिवर्तन किया है, किन्तु वह भी सकारण है, उससे केशव के गंभीर पाण्डित्य एवं उर्वर प्रतिभा का पता चलता है । केशव रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं और परवर्ती रीति ग्रन्थकारों के पथ प्रदर्शक हैं ।

वैसे तो भक्ति क्षेत्र में इनके इष्ट राम ही रहे हैं पर रसिकप्रिया में इन्होंने कृष्ण का ही आलम्बन लिया है । रसिक प्रिया में इन्होंने कृष्ण के चरित्र को अत्यधिक हीन बना डाला है ।

केशव दरबारी कवि थे और दरबारी परिस्थितियों ने उनके काव्य की पृष्ठ भूमि निर्धारित की है ।

केशव को "कठिन काव्य का प्रेत" केशव को कवि हृदय नहीं मिला था । केशव में सहृदयता व भावुकता नहीं थी । आदि कहा जाता है । वस्तुत:ऐसा था नहीं । रामचन्द्रिका के अतिरिक्त केशव की कविप्रिया और रसिकप्रिया में केशव की भावुकता व मार्मिकता के अनेकों चित्र मिलते हैं । कारण यह है कि इन ग्रन्थों में केशव ने नायक नायिका के प्रेम उनकी विभिन्न दशाओं एवं परिस्थितियों के जो चित्र अंकित किये हैं उनमें भावों की गम्भीर एवं मार्मिक व्यंजना हुयी है ।केशव की कविप्रिया और रसिकप्रिया के अध्ययन से ज्ञात होता है कि केशव एक सहृदय कवि थे । उदाहरणार्थ रसिकप्रिया से केशव के वियोग वर्णन का एक छंद लेते हैं जिसमें केशव ने राधिका की वियोग व्यथा का कैसा मार्मिक चित्र अंकित किया है ।

केशव चौंकति सी चितवै
    छिति पा धरिकै तरकै तकि छाहीं ।
बूझिये और कहै मुख औरसु
    और की और भई अब नाहीं ।
डीठि लगी किधौं बाई लगी,
    मन भूलि परयो कै कर्यो कछु काहीं ।
घूंघट की घट की पट की हरि
    आजु कछु सुधि राधिके नाहीं ।।[1]

इसी भांति वियोग का एक चित्र कविप्रिया से भी लेते हैं जिसमें प्रिय से वियुक्त नायिका की आँखें वर्षा से होड़ लगा रही हैं,आँसों के साथ ही रात्रि भी बढ़ती जा रही है, देही डोरी के समान सूक्ष्म हो गयी है,

---

1- रसिक प्रिया — श्री केशवदास ।

एक रदन गज बदन सदन बुधि मदन-कदन-सुत ।

गौरिनंद आनंदकंद जगवंद चंद युत ।

सुखदायक दायक सुकीर्ति जगनायक नायक ।

खलघायक घायक दरिद्र सब लायक लायक ।[1]"

पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने "रसिक प्रिया" के विषय में लिखा है- "रसिकप्रिया [संवत् 1648] की रचना प्रौढ़ है । उदाहरणों में चतुराई और कल्पना से काम लिया है और पदविन्यास भी अच्छे हैं । इन उदाहरणों में वाग्वैदग्ध्य के साथ-साथ सरसता भी बहुत कुछ पायी जाती है ।" केशवदास की रचना के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :-

जौ हौं कहौं रहिए तौ प्रभुता प्रगट होति,

चलन कहौं तौ हित हानि नाहिं सहनो ।

"भावै सो करहु" तौ उदासभाव प्राननाथ ।

"साथ लै चलहु" कैसे लोकलाज बहनो ।।

केसौदास की सौं तुम सुनहु छबीले लाल

चले ही बनत जो पै, नाहीं आज रहनो ।

तैसिये सिखाओ सीख तुमहीं सुजान प्रिय,

तुमहिं चलत मोहिं जैसो कछु कहनो ।[2]"

"केशव का स्थान कविता जगत में यदि तुलसी और सूर से ऊँचा नहीं है तो किसी प्रकार भी उनसे नीचा नहीं है । तुलसीदासजी यदि कथानक प्रबन्ध निर्वाह और सरल भक्ति भाव से ओत प्रोत कविता लिखने में सिद्धहस्त हैं और यदि सूरदासजी मनोहर पद लालित्य और प्रेमपूर्ण रचनाओं के लिये प्रसिद्ध हैं तो कवीन्द्र केशव भी गंभीर,भावपूर्ण तथा अर्थ गौरवात्मक कविताओं के अद्वितीय कवि माने गये हैं और चरित्र चित्रण राजनीति तथा ऐतिहासिक

1- रसिक प्रिया — श्री केशव दास ।

2- रसिक प्रिया — श्री केशव दास ।

तथ्यों का सांगोपांग वर्णन होने के कारण उनकी महत्ता और भी हिन्दी क्षेत्रों में बढ़ जाती है।[1]

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य धारा को प्रवहमान करने में कवीन्द्र केशव ने भी भूमिका निभायी। जब-जब बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों का नाम लिया जायेगा तब तब कवीन्द्र केशव का भी उल्लेख होगा।

दूलह कवि कुलकंठाभरण

दूलह कवि कालिदास त्रिवेदी के पौत्र और उदयनाथ कवीन्द्र के पुत्र थे। ऐसा जान पड़ता है कि ये अपने पिता के सामने ही अच्छी कविता करने लगे थे। ये कुछ समय तक अपने पिता के समसामयिक रहे। कवीन्द्र के रचे ग्रन्थ 1804 तक के मिले हैं। अतः कविताकाल संवत् 1800 से लेकर संवत् 1825 के आसपास तक माना जा सकता है। इनका बनाया एक ही ग्रन्थ "कविकुलकंठाभरण" मिला है जिसमें निर्माणकाल नहीं दिया गया है। पर इनके फुटकल कवित्त और भी सुने जा सकते हैं।

"कविकुलकंठाभरण" अलंकार का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें यद्यपि लक्षण और उदाहरण एक ही पद में कहे गये हैं, पर कवित्त और सवैया के समान बड़े छंद लेने से अलंकारस्वरूप और उदाहरण दोनों के सम्यक् कथन के लिये पूरा अवकाश मिला है। भाषाभूषण आदि दोहों में रचे हुये इस प्रकार के ग्रन्थों से इसमें यही विशेषता है। इसके द्वारा सहज में अलंकारों का चलता बोध हो सकता है। इसी से दूलहजी ने इसके सम्बन्ध में आप कहा है :-

जो या कंठाभरण को कंठ करै चित लाय।
सभा मध्य सोभा लहै, अलंकृति ठहराय॥[2]

1- बुन्देल वैभव — पं० गौरीशंकर द्विवेदी "शंकर", पृष्ठ-180
2- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं०रामचन्द्र शुक्ल,पृष्ठ 277-278·

इनके कविकुलकंठाभरण में केवल 85 पद्य हैं । फुटकल जो कवित्त मिलते हैं वे अधिक से अधिक 15 या 20 होंगे । अतः इनकी रचना बहुत थोड़ी है, पर थोड़ी होने पर भी उसने इन्हें बड़े अच्छे और प्रतिभा सम्पन्न कवियों की श्रेणी में प्रतिष्ठित कर दिया है । देवदास, मतिराम आदि के साथ दूलह का नाम भी लिया जाता है । इनकी इस सर्वप्रियता का कारण इनकी रचना की मधुर कल्पना, मार्मिकता व प्रौढ़ता है । इनके कथन अलंकारों के प्रमाण में भी सुनाये जाते हैं । सहृदय श्रोताओं के मनोरंजन के लिये भी । किसी कवि ने इन पर प्रसन्न होकर कहा है कि :-

"और बराती सकल कवि,
दूलह दूलह राम ।।"

रीतिकालीन कवि होने के कारण दूलह के काव्य में भी समस्त रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं । रीतिकालीन कवियों में अलंकार प्रदर्शन की भावना चरमोत्कर्ष पर थी । दूलह ने मुख्यतया अलंकारों का ही विवेचन किया है । दूलह के ग्रन्थ में काव्यांगों की भी विवेचना सुन्दर ढंग से की गयी है ।

कवि दूलह ने अपनी कविता में नायक कृष्ण व नायिका राधा रखे हैं । भक्तिकालीन कवियों ने काव्य रचना में भक्ति को सर्वोपरि स्थान दिया है, परन्तु रीतिकालीन कवियों में आध्यात्मिकता के स्थान पर सांसारिकता पायी जाती है। वे सांसारिकता, वैभव ,भोग-विलास के चित्रण में ही लीन रहते थे । कवि दूलह के काव्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कृष्ण राधिका की भक्ति उनका इष्ट नहीं थी वरन् नायक नायिका रूप में उनकी चेष्टाओं का वर्णन करना इष्ट था ।

कवि दूलह के काव्य का एक उदाहरण देखिये :-

"माने सनमाने तेहमाने सनमाने सनु ,
माने सनमाने सनमान पायतु है ।

जायगा । उनकी कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित एक उदाहरण देखिये —

"एक विपरीत को कहत सों, "विचित्र"
हरि जैसे होत वामन में बलि के सदन में ।
आधार बड़ो कहो आधेय "अधिक" जानो,
बदन समानो नाहिं बाढ़तो भुवन में ।।
आधेय अधिक तें आधार की अधिकाई,
"दूसरो अधिक" आयो ऐसी गनना में ।
तीनों लोक तन में, अमान्यो नागफन में,
सो ते वेद मन में, विवेक कहो मन में ।।"[1]

इस प्रकार कवि गुमान ने कविकुल कंठाभरण में जो कुछ भी लिखा, अद्वितीय है । बहुत सुन्दर, सरल, मनोहर व हृदयग्राही है । रीतिकालीन अलंकार प्रियता व चमत्कार प्रियता उनके काव्य में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है । यद्यपि उन्होंने थोड़ा लिखा, परन्तु बहुत है । उनकी रचना अद्भुत है । कृष्ण राधिका के हास-विलास, उनकी मधुर चेष्टाओं, क्रीड़ाओं आदि का वर्णन बड़े ही श्रृंगारिकतापूर्ण ढंग से किया है । रीतिकालीन कवि होने के कारण यह सब उनके काव्य में सहज ही स्थान पा गया है । कवि गुमान के काव्य में सांसारिक प्रेम दृष्टिगोचर होता है । उनके काव्य में यत्र तत्र आध्यात्मिकता के भी दर्शन होते हैं, परन्तु लौकिकता से अधिक ।

बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों में कवि गुमान के "कविकुल कंठाभरण" का विशेष स्थान है । अपनी इस रचना के द्वारा उन्होंने कृष्ण काव्य भागीरथी को आगे ले जाने में सहयोग प्रदान किया है ।

1- कविकुल कंठाभरण — गुमान ।

गुमान मिश्र 1780-1850

कृष्ण चन्द्रिका

श्री गुमान मिश्र महोबे के रहने वाले गोपालमणि के पुत्र थे । इनके तीन भाई और थे । दीपसाहि, खुमान और अमान । गुमान ने पिहानी के राजा अकबर अली खाँ के आश्रय में संवत् 1800 में श्रीहर्षकृत नैषध काव्य का पद्यानुवाद नाना छंदों में किया । यही ग्रन्थ इनका प्रसिद्ध है । और प्रकाशित भी हो चुका है । इसके अतिरिक्त खोज में इनके दो ग्रन्थ और मिले हैं - कृष्ण चन्द्रिका और छंदाटवी [पिंगल] । कृष्ण चन्द्रिका का निर्माण-काल संवत् 1818 है । अत:इनका कविताकाल संवत् 1800 से संवत् 1840 तक माना जा सकता है । इन तीनों ग्रन्थों के अतिरिक्त रस, नायिका भेद, अलंकार आदि कई और ग्रन्थ सुने जाते हैं ।[1]

अपने नैषध ग्रन्थ में इन्होंने बहुत से छंदों का प्रयोग किया है और बहुत जल्दी-जल्दी छंद बदले हैं । इंद्रवज्रा, वंशस्थ, मंदाक्रांता,शार्दूल-विक्रीड़ित आदि कठिन वर्णवृत्तों से लेकर दोहा चौपाई तक मौजूद हैं । ग्रन्थारम्भ में अकबर अली खाँ की प्रशंसा में जो बहुत से कवित्त इन्होंने कहे हैं उनसे इनकी चमत्कार प्रियता स्पष्ट प्रकट होती है । उनमें परिसंख्या अलंकार की भरमार है । गुमान जी अच्छे साहित्य मर्मज्ञ और काव्यकुशल थे, इसमें कोई संदेह नहीं है । भाषा पर भी इनका पूरा अधिकार था । जिन श्लोकों के भाव जटिल नहीं हैं उनका अनुवाद बहुत ही सरस और सुन्दर है । वहाँ की वाक्यावली उलझी हुयी और अर्थ अस्पष्ट है । बिना मूल श्लोक सामने आये ऐसे स्थलों का स्पष्ट अर्थ निकालना कठिन ही है । अत:सारी पुस्तक के सम्बन्ध में यही कहना चाहिये कि अनुवाद में वैसी सफलता नहीं हुई है । संस्कृत के भावों के सम्यक् अवतरण में यह असफलता गुमान ही के सिर

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं0रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 341-342.

नहीं कही जा सकती । रीतिकाल के जिन-जिन कवियों ने संस्कृत से अनुवाद करने का प्रयत्न किया है उनमें से बहुत से असफल हुये हैं । ऐसा जान पड़ता है कि इस काल में जिस मधुर रूप में ब्रजभाषा का विकास हुआ वह सरस रस-व्यंजना के तो बहुत ही अनुकूल हुआ पर कठिन भावों और विचारों के प्रकाशन में वैसा समर्थ नहीं हुआ । कुलपति मिश्र ने "रस रहस्य" में काव्य प्रकाश का जो अनुवाद किया है उसमें भी जगह-जगह इसी प्रकार अस्पष्टता है ।

गुमानजी उत्तम श्रेणी के कवि थे,इसमें सन्देह नहीं । जहाँ वे कठिन-भाव भरने की उलझन में नहीं पड़े हैं वहाँ की रचना अत्यन्त मनोहारिणी हुयी है । कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं :-

दुर्जन की हानि, बिरधापनोई करै पीर,
गुन लोप होत एक मोतिन के हार ही ।
टूटे मनिमाले निरगुन गायताल लिखै,
पोथिन ही अंक मन कलह बिचार ही ।।
संकर बरन पसु पच्छिन में पाइयत,
अलक ही पारे अंधकार निरधार ही ।
चिर चिर राखौ राज अली अकबर सुरराज,
के समाज जाके राज पर वारही ।।[1]

: : : : :

दिग्गज दबत दबकत दिगपाल भूरि,
धूरि की धुँधेरी सों अँधेरी आभा भान की ।
धाम और धरा को, माल बाल अबला को अरि,
तजत परान राह चाहत परान की ।।
सैयद समर्थ भूप अली अकबर दल,
चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की ।

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० श्रीरामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-242.

फिरि फिरि फननि फनीस उलटतु ऐसे,
चोली खोलि ढोली ज्यों तमोली पाके पान की ।।[1]

बुन्देलखण्ड की कृष्णायन व कृष्ण चन्द्रिका काव्य परम्परा हिन्दी साहित्येतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है । रामायण शैली से प्रभावित होकर कवियों ने कृष्णायन रचने का दृढ़ निश्चय किया । केशवदासजी की रामचन्द्रिका से प्रभावित होकर कृष्ण चन्द्रिका के प्रणयन का निश्चय किया । गुमान कवि की कृष्ण चन्द्रिका में,

"यह भरोस चित्त मंत्र करि धीरज मनहिं बँधाय"

से स्पष्ट है कि खुमान व गुमान कवि बन्धुओं ने होड़ लगाकर दोनों काव्य परम्पराओं का सूत्रपात किया था । इस विशिष्ट परम्परा से कृष्ण काव्य के कवियों की काव्य रीति के प्रति सजगता का आभास हो जाता है । साथ में यह भी ज्ञात होता है कि हिन्दी में महाकाव्य का सृजन बहुत अधिक सचेतनता से किया जाता था । गुमानकृत कृष्ण चन्द्रिका में खुमान के कृष्णायन का उल्लेख हुआ है जिसके अनुसार कृष्णायन के रचयिता खुमान सिद्ध होते हैं ।

डॉक्टर नर्मदा प्रसाद गुप्त के अनुसार कवि ने अपना परिचय ग्रन्थ के प्रारम्भ में दिया है जिसके अनुसार वह पंडित गोपालमणि त्रिपाठी का तृतीय पुत्र और महोबा का निवासी ठहरता है । कवि के दूसरे ग्रन्थ बारहमासी में उसे वैकुण्ठपुरी (बीहट) का वासी बताया गया है जिससे प्रतीत होता है कि वह बाद में बीहट जागीर के आश्रित हो गये थे । कृष्णचन्द्रिका का रचना काल संवत् 1838 है ।[2]

गुमान मिश्र ने श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध को आधार लेकर कथा के पूर्वार्द्ध की रचना की है । उसमें कतिपय नवीन प्रसंगों की भी आयोजना की है । राम चन्द्रिका की भाँति छंद परिवर्तन से कथान्विति में कोई बाधा

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं०रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 362.
2- डॉ०नर्मदाप्रसाद गुप्त - केशवा वाणी, दिसम्बर 1980, पृष्ठ-63.

नहीं पहुँचती है । गुमान मिश्र की कृष्ण चन्द्रिका में नायक कृष्ण के सौन्दर्य पक्ष का ही अवलोकन किया गया है अतः उनका वीरत्व दब-सा गया है । कवि वर्णनों का धनी है । उसके वर्णनों से मानस पटल पर एक चित्र-सा अंकित हो जाता है । रसात्मकता में यह ग्रन्थ रामचन्द्रिका से कहीं आगे है । उसमें रामचरित मानस जैसी इतिवृत्तात्मकता व पद्माकर जैसी दुरूहता नहीं है । अतः मध्य कालीन लोकरंजक महाकाव्यों में उसका स्थान सर्वोपरि है ।

गुमान मिश्र की कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के लौकिक व पारलौकिक दोनों ही स्वरूपों का वर्णन हुआ है । इसमें लोक जीवन व समाज का चित्र, गोचारणी, संस्कृति और लोक संस्कृति के विविध रूपों का चित्रण पात्रों की मानसिक स्थितियों द्वारा व्यक्तित्वों की व्याख्या तथा तत्कालीन ऐतिहासिक स्थिति की कृष्ण में अवतारणा कर तत्कालीन परिस्थितियों का वास्तविक अंकन कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो इस काव्य धारा को अधिक व्यापक, लोक-संबद्ध तथा सांस्कृतिक राष्ट्रीय सिद्ध करती हैं । अतः गुमान की कृष्ण चन्द्रिका की महत्ता असंदिग्ध है ।

उदाहरण दृष्टव्य है—

न्हाती जहाँ सुखमा नित जाकी में,
छूटे उरोज तहाँ कुंकुम नीर ही में ।
चौदह चित्र दृग अंजन सौं साजे,
मानो त्रिवेणि नित ही वर ही विराजे ।।

: : : : : :

और उदाहरण देखिये —

खटक हंस चल्यो उड़िके नभ में,
छूटी तन ज्योति भई ।
लोक की छाँह गयो छन में,
अवराय रही छवि की नर्भ ।।

नैनन सों निरख्यो न बनायके,
कै उपमा मन माहिं लई ।
स्यामल चीर मनो घन ज्यों,
तैसि पै बन कंचन बेलि नई ।।[1]

मंचित द्विज

कृष्णायन

बुन्देलखण्ड की कृष्णायन परम्परा कवि की काव्य रचना में सचेतनता व दृढ़ संकल्प का प्रतीक है । बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्णायन रचने का निश्चय तुलसीकृत रामायण की लोकप्रियता या शैली से आकृष्ट होकर किया था । कृष्ण काव्य में विषय वस्तु व शैली के प्रति अद्भुत लगाव एवं ममता के दर्शन होते हैं । साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि हिन्दी में महाकाव्य का सृजन बड़ी जागरूकता एवं सचेतनता के साथ किया जाता था । कृष्णायन काव्य के सम्बन्ध में यह जनश्रुति है कि महोबा के गुमान और खुमान दो कवि बन्धुओं में परस्पर यह प्रतिश्रुति थी कि एक कृष्णायन की रचना करेगा तो दूसरा कृष्ण-चन्द्रिका की । वस्तुतः कृष्णायन की रचना पहले हुयी ।

कृष्णायन काव्य परम्परा के ही एक और कवि हैं "मंचित द्विज" खुमान कवि के समकालीन थे । "ये मऊ [बुन्देलखण्ड] के रहने वाले ब्राह्मण थे और संवत् 1836 में वर्तमान थे । इन्होंने कृष्ण चरित सम्बन्धी दो पुस्तकें लिखी हैं — सुरभी दानलीला और कृष्णायन ।[2]"

सुरभी दानलीला में बाललीला,यमलार्जुन पतन और दानलीला का विस्तृत वर्णन सार छंद में किया गया है । इसमें श्रीकृष्ण का नखशिख भी बहुत अच्छा कहा गया है । कृष्णायन गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण के अनुकरण

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,पृष्ठ 342-343.
2- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,पृष्ठ 334.

पर लिखी गयी है । यह रचना दोहों और चौपाइयों में की गयी है । इन्होंने गोस्वामीजी की पदावली तक का अनुसरण किया है । स्थान-स्थान पर भाषा अनुप्रासयुक्त व संस्कृत गर्भित है । कृष्णायन की भाषा ब्रज है । कृष्णायन की अपेक्षा इनकी सुरभी दानलीला अधिक सरस है ।

मंचित कवि का कृष्णायन एक महाकाव्य है । कृष्णायन में कवि डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार कथानक का निर्वाह सुचारुता नहीं कर पाया है । तुलसी की रामायण में कथा कौशल की जो अपूर्व बानगी मिलती है उसका कृष्णायन में अभाव है । मंचित द्विज की भाषा ब्रज होने के कारण इसमें अवधी जैसा प्रवाह नहीं है । कवि ने कृष्णायन में संस्कृत पदावली का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है जिससे कहीं कहीं पर यह रचना सुन्दर बन पड़ी है । मंचित द्विज ने परिनिष्ठित साहित्यिक बुन्देली भाषा का प्रयोग तत्सम् शब्दावली के साथ किया है । कृष्णायन का एक उदाहरण देखिये :-

अवरज अभिमत भयो सुचि चरिता ।
तुलिय न उपमा कहि सम चरिता ।।
कृष्णदेव कहँ प्रिय अनुरागी ।
जिमि गोकुल गोलोक प्रकाशी ।।
अति विस्तार पार पद पावन ।
उभय कगार घाट मनभावन ।।
जलचर जन्तु विहग बहु पच्छी ।
अलि-अवली-धुनि सुनि अति अच्छी ।।
नाना विविध जीव तहँ रहैं ।
शिलाहीन जल सुचि बहैं ।

मंचित द्विज रीतिकालीन कवि है अतः रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ उनके काव्य में दृष्टिगोचर होती हैं । उनके काव्य में स्वच्छंद प्रेम व श्रृंगार को संजोया गया है । भक्ति भावना भी प्रचुर रूप में दिखायी पड़ती है । कृष्ण के वीर रूप का दिग्दर्शन कृष्णायन काव्य में कराया गया है । इस ग्रन्थ में कृष्ण एक

अलौकिक चमत्कारी पुरुष के रूप में चित्रित हुये हैं । कृष्णायन काव्य सौष्ठव व काव्य सुषमा का एक सुन्दर उदाहरण है । इसमें स्थान-स्थान पर सुन्दर निरीक्षण प्रधान रस पूर्ण चित्र मिलते हैं । एक अन्य उदाहरण देखिये :-

कसकत कमल नैन मोहन के ओठ गैंदुवादी ने ।
कुँवरि चलत पाँव लचि जाके कनक बीजना कीने ।।

भीखम द्विज ने कृष्णायन की रचना भक्ति भावना से ओतप्रोत हो लिखी है । भक्ति प्रधान रचना होने के कारण उसमें अनुभूति की प्रधानता है और सम्प्रदाय मुक्त होने के कारण सौष्ठव पूर्ण अभिव्यंजना की सफलता भी है । कृष्णायन में कथा प्रमुख है और शैली वस्तुपरक है । कथा का प्रवाह गतिमय है । कृष्ण का चरित्र चमत्कारी है । कथा में चमत्कारी घटनायें कम नहीं हैं । इसमें वात्सल्य, शृंगार, भक्ति, प्रेम आदि सरस बातों का उल्लेख किया गया है । भीखम द्विज कृत सुरभी दानलीला भी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसकी खोज सर्व-प्रथम मिश्र बन्धुओं ने की थी । मिश्र बन्धुओं के अनुसार ये महोबा के निवासी थे, परन्तु जैतपुरवासी उन्हें जैतपुर का निवासी मानते हैं । उनके ग्रन्थ कृष्णायन से ज्ञात होता है कि ये 18वीं शती के उत्तरार्द्ध में रहे, क्योंकि उनका रचनाकाल संवत् 1779 वि० है । सुरभीदान लीला में मुख्य कथा सुरभी दान से सम्बन्धित है । इसे गो-चारण महाकाव्य भी कहा जा सकता है । कवि ने इसे महाकाव्य का रूप प्रदान किया है, परन्तु उसकी शैली महाकाव्यों जैसी नहीं है । कथा का प्रारम्भ एक गोप की गाय के बहकाने भाग जाने से होता है । इनके वर्णन लोक संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते हैं । गोप और गाय के उदाहरण दृष्टव्य हैं ।

पगड़ी बरद कट पै पट बाँधि लकुट हाथ में लीन्हें ।
कुंडल कान विशाल भाल पै तिलक बिंदु कर दीन्हें ।।
पायँ पैजना गरें कंठ का लीने सींग मढ़ैले ।
गुंज माल मोती कर कंकन माथे गात चढ़ैले ।।

जमुना तीर भीर ग्वालन की देख बसत ते छंद की ।
भजन राव महकी मसकन तें खबर न कीनी घर की ।।

इन छंदों में पूर्ण काव्य सौष्ठव है । सुरभी दान लीला की भाषा ठेठ बुन्देली है और ग्रामीण शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है । ये ग्रामीण शब्द अर्थ प्रतीति में बाधक नहीं हैं ।

सुरभी दान लीला में कृष्ण-राधा की लीलाओं का सजीव वर्णन किया गया है । उनका कृष्णायन काव्य सुरभी दान लीला से महत्व में किसी भी प्रकार कम नहीं है ।

कृष्णायन का अंगीरस भक्तिरस है और श्रृंगार तथा वात्सल्य प्रमुख रूप में तथा अन्य रस गौण रूप में आये हैं । कृष्णायन भक्तिकाल की अनुभूति व रीतिकाल की अभिव्यक्ति का सुन्दर संगम है । इसमें जीवन के सुन्दर पक्ष की प्रधानता है । यद्यपि इसमें रामचरित मानस जैसी उदात्तता व व्यापकता भले ही न हो, किन्तु सौष्ठव परक महाकाव्यों में इसका स्थान उच्च है ।

मोहनलाल मिश्र

"कृष्ण चन्द्रिका"

संवत् 1839 में श्रीमोहनलाल मिश्र ने अपने महाकाव्य "कृष्ण चन्द्रिका"[1] का प्रणयन किया । कवि पंडित मोहनलाल मिश्र पंडित रामजी मिश्र के सुपुत्र व चन्देरी नरेश रामचन्द्र के कुल पुरोहित थे । कृष्णचन्द्रिका में 97 प्रकाश और लगभग 3800 छंद हैं । यह कृति आचार्य केशवदास की रामचन्द्रिका से लगभग ढाई गुनी और कवि गुमान की कृष्णचन्द्रिका से दोगुनी है । मोहनलाल मिश्र की

1- कृष्ण चन्द्रिका — श्रीमोहनलाल मिश्र ।

कृष्णचन्द्रिका में वासुदेव कृष्ण के विवाह से लेकर कृष्ण के प्रभासतीर्थ गमन तक की कथा को संयोजित किया गया है । इसमें कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण है । कवि ने कृष्ण के केवल रसिक जीवन का ही चित्रण नहीं किया है, वरन् उनके नीतिज्ञ, कर्मयोगी व लोकरक्षक रूप को भी महत्व दिया है । इस प्रकार यह कृष्णचन्द्रिका सुजान कृत कृष्णचन्द्रिका से अधिक महत्वपूर्ण है । इस भाँति कथा के दृष्टिकोण से इसमें व्यापकता है । मोहनलाल मिश्र की कृष्णचन्द्रिका को महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है । पुराणों एवं श्रीमद्भागवत के अनुकरण पर कृष्णचन्द्रिका के कृष्ण परब्रह्म परमेश्वर हैं । उन्होंने कंस, जरासन्ध, शिशुपाल प्रभृति के राक्षसों से पीड़ित पृथ्वी को मुक्त कराने हेतु इस वसुन्धरा पर मानव रूप में जन्म ग्रहण किया है । कृष्णचन्द्रिका की कथा का विकास श्रीमद्भागवत के अनुकरण पर ही हुआ है । श्रीमद्भागवत के कृष्ण महाभारत के कृष्ण के समान महान राजनीतिज्ञ योगी व नीतिज्ञ नहीं हैं वरन् वे बाल-गोपाल हैं । वे जनसाधारण के कृष्ण हैं, सबके आत्मीय हैं, सब उन्हें प्यार करते हैं । कृष्णचन्द्रिका में कृष्ण के इसी रूप को उभारा गया है । कृष्ण के दो रूप हैं । मानव व ब्रह्म । बाल्यकाल में ही पूतना वध, शकट भंजन, बकासुर, अघासुर आदि राक्षसों का प्रयासहीन वध तथा मुख में ब्रह्माण्ड का दर्शन आदि उन्हें ईश्वर का अवतार घोषित करती हैं । इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, देवता तथा कथा के अधिकांश पात्र समय-समय पर कृष्ण की स्तुति करते हैं । उनके प्रत्येक कार्य पर देवता और अप्सरायें दुन्दुभी बजाते हैं, पुष्प वर्षा करते हैं । कृष्ण बालक रूप में माता यशोदा को वात्सल्य सुख प्रदान कर रहे हैं :-

> दिन-दिन अति आनन्द बढ़े सुख नन्द के धाम ।
> छगन-मगन आंगन फिरैं, बाल-बाल के संग ।।
> भोजन कौं टेरत जबै, मात तात ढिंग आई ।
> जात कबहुं सुख मन कौं, मधुमति पकरति धाय ।।[1]

१- कृष्ण चन्द्रिका पृष्ठ-६, छन्द ६२-६३, श्रीमोहनलाल मिश्र ।

जिन श्रीकृष्ण का ध्यान सुरेश, गणेश, महेश, भवानी सदा करते हैं उन्हीं ब्रह्म के कपोल चुम्बित कर नन्दरानी आनन्दित हो रही हैं ।

जा मुख हेत विचार-विचारत,
    वेद विरंचि थकी सुर वानी ।
बुद्धि-विशारद नारद शारद,
    सोचत सूत विशुद्ध बखानी ।।
ध्यावत शेष, सुरेश, गणेश,
    निरन्तर ध्यान महेश,भवानी ।
ताप कपोल चूम कर चूमत,
    सो मुख आनन्द सौं नन्दरानी ।।[1]

कृष्ण के नटखटपन से क्रोधित हो माता यशोदा उन्हें ऊखल से बांध देती हैं । देखिये उदाहरण :-

करि आप सब करत हैं, करि हैं गुरु गति गाथ ।
सकल मनोरथ दास के, पूरन श्री ब्रजनाथ ।।
व्याकुलता तब ही हरी जसुधा की नन्दनन्द ।
बांधि आप जननी करन भक्त विवश ब्रजचन्द ।।[2]

हिन्दी साहित्य में कृष्ण अधिकांश लीला पुरुषोत्तम के रूप में ही चित्रित किये गये हैं । उनके चरित्र में श्रृंगारिकता का प्राधान्य है । वे रसिक सहृदय व प्रेमी हैं । उनका अनन्त सौन्दर्य ब्रज के गोप-गोपियों, बाल-वृद्धों सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है । उनकी सौन्दर्य इच्छा की पूर्ति हेतु कृष्ण शरद की ज्योत्स्नामयी रात्रि में उनके साथ रास-क्रीड़ा करते हैं ।

मोहन श्री मनमोहन जू रस मन्दिर सुन्दरि संग विहारैं ।
भूषन नारिन के बहु, भेद कवी कवि कौं लखि पावत वारैं ।।
टूट परे शिर फूल हैं मुक्ताफल की उपमा मन धारैं
पीतम की मनो रवि तारक वारि दिया कर पै पर वारैं ।।[3]

1- कृष्ण चन्द्रिका पृष्ठ-4, छन्द 67, श्रीगोकुलप्रसाद मिश्र ।
2- ,, पृष्ठ-5, छन्द 23-24, ,,
3- ,, पृष्ठ-23, छन्द 13 ,,

कहै तब स्यंदन हांकित जोर ।
कहैं बतियाँ रस प्रेम सुबोर ।।[1]*

देवकी के आठवें पुत्र से अपनी मृत्यु की आकाशवाणी सुनकर उसका स्नेह आक्रोश में परिवर्तित हो जाता है, परन्तु उसमें उदारता की कमी नहीं है । वसुदेव द्वारा देवकी से उत्पन्न संतान को उसे समर्पित करने का वचन देने पर वह उसका वध करने का विचार त्याग देता है । उसमें अपने दोषों को सहज रूप से स्वीकार करने की क्षमता है । जब यशोदा से उत्पन्न कन्या उसके हाथ से छूटकर उसके वधकर्ता के उत्पन्न होने की सूचना देती है तब कंस को निरपराध देवकी वसुदेव के छः पुत्रों के वध करने का अत्यन्त पश्चाताप होता है । वह अपने अपराध को स्वीकार करता है और विनयपूर्वक वसुदेव देवकी को बन्धन मुक्त कर देता है ।

मन मलिन कंस आयो उदास ।
वसुदेव देवकी के सुपास ।
कर जोर कहै तुम परम साधु ।
अपराध भयो मोसें अगाधु ।
तुम पुत्र हने बिनहीं विचार ।
यह दोषु भयो हमसों अपार ।
विधि के लिखे मेटे न कोई ।
बलवान कर्म गति सबल होई ।
बहु भांति विनय कर पानि जोर ।
वसुदेव देवकी बंधा छोर ।।[2]*

वह संतों का आदर करने वाला है । नारदजी के आने पर वह उनका स्वागत करता है । वह स्वभावतः क्रूर व अत्याचारी नहीं है, किन्तु उसमें बुद्धि विवेक

1- कृष्ण चन्द्रिका, पृष्ठ-2, छंद-66, श्रीमोहनदास मिश्र ।
2- कृष्ण चन्द्रिका, पृष्ठ-3, छंद- 13-17, श्रीमोहनदास मिश्र ।

की कमी है। विक्षिप्त के कारण उसका विवेक नष्ट हो जाता है और वह अपने कुबुद्धिपूर्ण मन्त्रियों के परामर्श पर निर्भर रहता है। वह अदम्य वीर भी नहीं है। वह कृष्ण वध हेतु विभिन्न राक्षसों को भेजता है। कंस कहीं से भी कृष्ण द्वारा प्रतिद्वन्द्विता करने लायक नहीं है। कवि ने कंस को साधारण मानव रूप में ही चित्रित किया है।

कृष्ण माता यशोदा के प्रौढ़ावस्था के पुत्र हैं। कवि ने कृष्ण के प्रति माता यशोदा के वात्सल्य का परम्परागत चित्रण किया है। माता यशोदा कृष्ण की एक-एक चेष्टा को आनन्द विभोर होकर देखती हैं। उनका सुख-दुख श्रीकृष्ण में ही सिमट कर रह गया है। देखिये कितना मनोमुग्धकारी चित्रण है :-

मांगि माय धाई उठाय के गुलच्याई मै तन लौं करी ।
कुलराई बाँध न याहु के कुलराय आपन ही करी ।
मुख चूमैं, तन चूमैं, नव नेहोत्सव झूमैं ।
दृग मूंद खोलत कान्ह यौं जिमि भी किलकै हँसी ।।1*

अपने नन्हें बालक पर विभिन्न प्रकार की आपत्तियाँ देखकर उनका हृदय विदीर्ण होने लगता है। उनके दूर होने पर वे नानाप्रकार के दान पुण्य करती हैं।

कृष्ण कुछ बड़े होते हैं। बर्तन फोड़ते हैं। घी, दूध, दही लुढ़का देते हैं तो यशोदा लकड़ी लेकर मारने आती हैं। तभी गोपिकायें उन्हें आकर बचा लेती हैं वे खीझ कर गोपियों से कहती हैं :-

देखहु री यह ढीठ बड़ो यनके गुन की कुछ भेद न पावत ।
माखन खाई चुराय अगार दूध,दही,घृत ले लुढ़कावत ।
खेलत मैं लखे बछरा अरु बालक बेहुन यौं पुचकारत ।
जो बरजौं तिन बार करै यह खेलत भाजत भौंह दिखावत ।।2*

1- कृष्ण चन्द्रिका,पृष्ठ-4, छंद- 65, श्रीमोहनलाल मिश्र ।
2- कृष्ण चन्द्रिका, पृष्ठ-3,छंद- 12, श्रीमोहनलाल मिश्र ।

वे कृष्ण को धमकी देती हैं -

"जौ अब चाल करौ मनमोहन गोकुल में बन को पठैहौं ।"

कृष्ण पर माता की धमकी का कोई असर नहीं पड़ता है वे कहते हैं माता मैं दोगुनी शरारत करूँगा ।

"अब मैया मैं जाव दे
दूनौं कर हौं चाल ।"[1]

उनकी ढिठाई देखकर माता उन्हें ऊखल से बाँध देती हैं पर हृदय ममत्व का सागर है ।

कृष्ण के गोवर्धन पर्वत धारण कर लेने पर वे उनके अनिष्ट की आशंका से काँप उठती हैं । माता को व्याकुल देखकर कृष्ण सान्त्वना देने हेतु कहते हैं :-

पूरब भाजन सौ बहु आयौं ।
ता बल सौं यह सैल उठायौ ।
जौ अब और मिलैं कुछि भाई ।
तो गिरि राखहु नन्द दुहाई ।।[2]

अक्रूर आते हैं और कृष्ण को ले जाते हैं । कृष्ण मथुरा जाकर फिर वापस नहीं लौटते । अब तक जो कृष्ण उनके सर्वस्व थे जिन्हें वे डाँटती मारतीं और प्रेम करती थीं उस पर उनका कोई अधिकार नहीं रहा । उद्धव के ब्रज आने पर उनका दुख फूट पड़ता है, वे उद्धव से पूछती हैं :-

श्री वसुदेव सहित मनमोहन कबहुँ गोकुल आवैं ।
इंदीवर अरविंद मुख के दरसन कब दिखावैं ।।[3]

1- कृष्ण चन्द्रिका, पृष्ठ-3, छंद 14 — [illegible] मिश्र ।
2- ,, पृष्ठ-10, छंद 42 — ,,
3- ,, पृष्ठ-30, छंद 32 — ,,

वे पुत्र वियोग की ज्वाला में दग्ध रही हैं। कवि ने सूर जैसा वात्सल्य वर्णन नहीं किया है। सूर की यशोदा में पुत्र जन्य वियोग, दुख, आक्रोश, क्षोभ और वेदना की जैसी तीखी व्यंजना मिलती है वैसी कृष्ण चन्द्रिका में नहीं है। फिर भी कृष्ण चन्द्रिका में मातृ हृदय की सफल व्यंजना हुई है।

मिश्रजी के काव्य में अन्य किसी पात्र का चरित्र चित्रित नहीं हुआ है इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कृष्ण की बात करने में ही जब 99 प्रकाश काव्य के हो गये तो यदि कवि अन्य पात्रों का भी सांगोपांग चित्रण करता तो न जाने काव्य कितना अधिक बढ़ जाता। इस प्रकार गोकुलदास मिश्र ने कृष्ण चन्द्रिका का प्रणयन कर कृष्ण काव्य धारा को सशक्त रूप से प्रवाहित करने में योगदान दिया है। बुन्देलखण्ड की भूमि को अपने इन भक्त कवियों पर असीम गर्व है।

नवलसिंह कायस्थ

रास पंचाध्यायी

बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों में नवलसिंह कायस्थ का भी अपना स्थान है। ये झाँसी नगरी के निवासी थे। इनका जन्म संवत् 1830 वि0 के लगभग हुआ था। ये समथर नरेश महाराजा हिन्दूपति के दरबारी कवि थे। इन्होंने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की है। ये ग्रन्थ भिन्न-भिन्न रचनाओं एवं विभिन्न शैलियों के हैं। ये कवि होने के साथ-साथ एक कुशल चित्रकार भी थे। इनका झुकाव भक्ति व ज्ञान की ओर विशेष रूप से था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इनके ग्रन्थ ये हैं :-

रासपंचाध्यायी, रामचन्द्र विलास, शंकामोचन [संवत् 1873], जौहरिन तरंग [1875], रसिक रंजनी [1877], विज्ञान भास्कर [1878], ब्रजदीपिका [1883], शुकरंभा संवाद [1888], नामचिन्तामणि [1903], मूलभारत [1912]

ठाकुर रूपराम ने कृष्ण चन्द्रिका का प्रणयन किया । इसका आरम्भ संवत् 1936 में हुआ । इस कृष्ण चन्द्रिका में १० अध्याय हैं ।

ठाकुर रूपसिंह परम भागवत व भक्ति शास्त्र के रसिक थे । आपने इस दुस्तर संसार सागर से पार होने के लिये श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कृष्ण चन्द्रिका नामक ग्रन्थ रूपी नौका का निर्माण किया था । आपका जन्म संवत् 1906 में कायस्थ कुलोद्भव ठाकुर बहादुरसिंह जी श्रीवास्तव के घर में हुआ था । आप बिजावर स्टेट के अन्तर्गत् नौगा ढोला के निवासी थे । आपकी महाकवि सूरदास, तुलसीदास तथा केशवदास के काव्य में अपूर्व निष्ठा थी इसीलिये आपके काव्य में यत्र तत्र इन्हीं महाकवियों के भावों की छाया दीख पड़ती है । आपने एकादशी माहात्म्य का छन्दोबद्ध अनुवाद किया था, किन्तु इस समय वह अनुपलब्ध है । आपका विचार तुलसीदासजी के समान दूसरी विनय पत्रिका भी लिखने का था । उसके 83 पद लिख भी चुके थे, परन्तु काल की प्रेरणा से उसे पूर्ण न कर सके । आपने कृष्ण चन्द्रिका नामक वृहदाकार ग्रन्थ की रचना की जिसके लिये हिन्दी साहित्य आपका सदैव ऋणी रहेगा । कृष्ण चन्द्रिका के पूर्वार्द्ध में कृष्ण द्वारा अक्रूर को पाण्डवों की सुधि लेने के लिये भेजने तक की कथा है । उत्तरार्द्ध में जरासंध की कथा से लेकर भद्रा विवाह की कथा है । कथावस्तु का आयाम बहुत विस्तृत है । कुछ प्रसंग अति सुन्दर बन पड़े हैं जैसे अक्रूर के साथ मथुरा गमन की बात सुनकर गोपियों का रथ रोककर खड़े हो जाना और यशोदा का उतने दिन का कलेऊ दे जाने का आग्रह । इस प्रकार 19वीं शती तक कृष्ण-चन्द्रिका का प्रवाह बना रहा । ये सभी रचनायें रामचन्द्रिका की शैली में रचित होती हुयी भी भिन्न-भिन्न कालों की काव्य चेतना को प्रतिबिम्बित करने में सफल रहीं ।

ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में घटनाओं का संयोजन व चयन बड़े कौशल से किया है । महत्वपूर्ण प्रसंगों का विस्तृत वर्णन है व कम महत्वपूर्ण प्रसंगों का संक्षिप्त । कवि ने कृष्ण व असुरों के संघर्ष, कृष्ण द्वारा कंस-वध व कंस द्वारा

प्रत्येक अध्याय में रूपसिंहजी कृष्ण को पहले साधारण चाढ़ मास के बालक या साधारण मानव के रूप में चित्रित करते हैं तत्पश्चात् उनके अवतारी रूप का ज्ञान पाठक को करवा देते हैं । दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण को बालक रूप में चित्रित किया है । ग्यारहवें अध्याय में माता यशोदा श्रीकृष्ण के मुख के अन्दर ब्रह्माण्ड देख उन्हें अवतारी मानती हैं । बारहवें अध्याय में कृष्ण को बालक समझकर शरारत करने पर ओखल से बांध देती हैं । साथ ही बालक के अनिष्ट का भी भय करती हैं । यदि कवि ने श्रीकृष्ण को सदैव अवतारी रूप में वर्णित किया होता तो कदाचित् पाठकों को आनन्द प्राप्ति न हो पाती । कृष्ण के अलौकिक दैवीय रूप का दिग्दर्शन कराकर भी कवि अपने ग्रन्थ को एक साधारण मनुष्य की कथा के रूप में चित्रित करने में सफल रहा है । कथा में आश्चर्यजनक प्रसंग भी विद्यमान हैं । इन प्रसंगों से कविता में गति प्रवाह हुआ है । ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही देवकी की विदा बेला में एक महत्वपूर्ण आकाशवाणी होती है जिसके कारण वसुदेव व देवकी कंस के कारागार में बंदी बना लिये जाते हैं ।

होत भई भय में नभ बानी ।
सुन कंसा तुम्हरे हित जानी ॥
जाहि पठावत प्रेम घनेरी ।
ताकुत अष्टम् अन्तक तेरो ॥[1]

नारद मुनि भी कंस के पास चक्कर लगाते हैं जिससे कथा को गति प्राप्त होती है । नारद ने कंस को अनेकों बार उत्तेजित किया । नारद ही यह सूचना देते हैं कि ब्रज में कंस को मारने वाला उत्पन्न हो चुका है । कालिया नाग को यमुना में कंस द्वारा भेजने का आदेश कंस ने नारदजी के बहकाने पर ही दिया था । ठाकुर रूपसिंह जी ने कृष्ण चन्द्रिका की रचना श्रीमद् भागवत से प्रेरणा ग्रहण कर की है । कवि ने अपनी रुचि के अनुसार कथा चित्रण किया है व मौलिकता का परिचय दिया है । कवि ने प्रत्येक अध्याय के अन्त में श्रीमद्भागवत

1- कृष्ण चन्द्रिका - छन्द 18, पृष्ठ- 12.

गणेश वंदना के पश्चात् सरस्वती वंदना, शिव वंदना, एवं अन्य देवी-देवताओं की वंदना की गयी है । कवि ने कथा को सर्गों, लीलाओं आदि में विभाजित न करके अध्यायों में किया है । मुख्य अध्याय हैं - जन्मोत्सव, पूतनावध, शकटासुर वध, तृणावर्त वध, माखन चोरी, वृन्दावन गमन, बकासुर वध, राधा-कृष्ण का मिलन, अघासुर वध, कालिय दमन, चीरहरण, लीला, गोवर्धन लीला, उद्धव का ब्रज आगमन, कृष्ण द्वारा सोलह हजार रानियों का वरण, आठ पट-रानियाँ बनाना व कृष्ण के वंश का उल्लेख है । उपरोक्त कथा को 10 अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

अध्यायों के शीर्षक से स्पष्ट हो जाता है कि कथा में कृष्ण के शौर्यपूर्ण कार्यों व अवतार कार्यों को प्रमुखता दी है । गोपियों के साथ कृष्ण के विभिन्न प्रेम प्रसंग भी वर्णित हैं । रूपसिंहजी ने भक्ति भावना के कारण ग्रन्थ की रचना की है इसीलिये इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के अवतारी कार्यों की प्रधानता है । कथा-वस्तुविन्यास के दृष्टिकोण से अकुशल है । इस ग्रन्थ की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है कि मथुरा के उग्रसेन नामक धार्मिक राजा का पुत्र कंस एक अन्यायी व अत्याचारी शासक हुआ । उसकी बहिन देवकी का विवाह वसुदेव के साथ हुआ । जब वह अपनी बहिन को विदा करने जा रहा था उसी समय आकाशवाणी हुयी कि देवकी की आठवीं सन्तान उसकी मृत्यु का कारण बनेगी । यह सुनकर भयभीत कंस देवकी वसुदेव की सन्तानों की हत्या करने लगा । वसुदेव कृष्ण को गोकुल छोड़ आये और वहाँ से नन्द की कन्या को उठा लाये । उस कन्या का वध करके कंस ने अपनी मृत्यु की समाप्ति समझी । कृष्ण गोकुल में नन्द यशोदा के घर में एक साधारण ग्वाले के रूप में रहने लगे । कृष्ण के गोकुल पहुँचते ही कथा का पूर्ण गति से विकास होता है । कृष्ण ने कंस द्वारा भेजे गये कागासुर, शकटासुर, पूतना, तृणावर्त आदि को मृत्यु प्रदान करते हैं । कुछ बड़े हो जाने पर वे वत्सासुर, बकासुर व कालियनाग का दमन करते हैं । गोवर्धन को उंगली पर उठाकर समस्त ब्रजवासियों की रक्षा करते हैं । कृष्ण का अपनी प्रियतमा से प्रथम मिलन मिलनोत्सुक उत्कंठा, गोपियों के प्रेम प्रसंग, कृष्ण द्वारा रासलीला करना आदि के चित्र बड़े मनोमुग्धकारी हैं । कुछ समय पश्चात् कृष्ण मथुरागमन कर जाते हैं । कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियों,

माता यशोदा, नन्द बाबा आदि का विलाप अत्यन्त मार्मिक है। मथुरा में कृष्ण द्वारा कंसादिक राक्षसों का मर्दन उनकी शूरवीरता का परिचायक है।

कवि ने कृष्ण को मथुरा पहुँचाकर उनके विभिन्न विवाहों का अति सुन्दर चित्रण किया है। कृष्ण ने शिशुपाल को पराजितकर रुक्मिणी से विवाह किया। इसके पश्चात् भौमासुर राक्षस को पराजितकर उसके द्वारा आवृत्त सोलह हजार कन्याओं से विवाह किया। ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,साम्ब आदि को भी ग्रन्थ में उचित स्थान दिया है। कवि ने ग्रन्थ के अन्तिम भाग में सुदामा नामक दीन हीन ब्राम्हण की कथा वर्णित की है।

इस ग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण में कवि की एक और विशेषता रही है कि उसने मूल कथा के साथ-साथ अनेकों प्रासंगिक घटनाओं को भी सम्मिलित किया है। प्रासंगिक घटनाओं की योजना पुराण शैली के आधार पर की है। राजा परीक्षित अनेकों शंकायें उपस्थित करते हैं तथा शुकदेवजी उस शंका के समाधान में प्रासंगिक घटनाओं का उल्लेख करते हैं। उदाहरणार्थ जिस समय कृष्ण ने यमलार्जुन को शाप-मुक्त किया उसी समय राजा परीक्षित ने यमलार्जुन को शापमुक्त किया। उत्तर में शुकदेवजी ने प्रासंगिक घटनाओं का वर्णन किया। इसी प्रकार राजा ने गोपियों के साथ व्यभिचार पर प्रश्न किया कि कृष्ण ने परायी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा क्यों की ? उत्तर में शुकदेव ने प्रासंगिक घटनाओं का वर्णन किया। इसी प्रकार राजा ने गोपियों के साथ व्यभिचार पर प्रश्न किया कि कृष्ण ने परायी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा क्यों की ? उत्तर में शुकदेव ने प्रासंगिक कथायें सुना दीं।

कवि ने कृष्ण जन्म से कंस वध तक की कोई घटना नहीं छोड़ी। कवि के द्वारा कुछ मार्मिक स्थलों का उत्कृष्ट चित्रण हुआ है। जैसे कृष्ण जन्मोत्सव, कृष्ण का गोपियों के साथ रास, कृष्ण द्वारा विभिन्न योद्धाओं को पराजित करना। कवि ने गोपिकाओं को अत्यधिक व्यथित दिखाया है, किन्तु यशोदा को नहीं। ऐसा करके उन्होंने यशोदा के मातृ हृदय के प्रति अन्याय किया है।

कवि ने कृष्ण के देवकी वसुदेव मिलन का वर्णन अति संक्षिप्त किया है । उस समय देवकी वसुदेव की भावनाओं का भी दिग्दर्शन नहीं कराया है ।

भक्ति भावना के कारण कुछ अनावश्यक प्रसंग भी जोड़े हैं । उदाहरणार्थ अठारहवें अध्याय में कालियनाग का यमुना में प्रवेश । उसके प्रवेश के कारण का वर्णन करना, अक्रूर, ब्रह्मा, वसुदेव आदि द्वारा कृष्ण की स्तुतियाँ । इन घटनाओं से कथा प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है, उसमें प्रगति नहीं होती । ग्रन्थ का अन्तिम भाग भी कवि उद्देश्य में सहायक नहीं । कथा का अन्त कंस वध के साथ हो जाना चाहिये था । कवि भागवत पुराण के दशम् स्कन्ध के पूर्वार्द्ध की समस्त घटनाओं के उल्लेख का मोह नहीं छोड़ पाया है । कतिपय त्रुटियों के बावजूद भी कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा के माध्यम से सम्पूर्ण वस्तु योजना का चयन भलीभाँति अपनी रुचि के अनुरूप किया है । उन्होंने कृष्ण का रूप वर्णन तथा बाल चित्रण भी अपनी कल्पना के आधार पर किया है ।

ठाकुर रूपसिंह ने भाव और कला पक्ष का उचित व सार्थक समन्वयकर अपने प्रबन्ध काव्य कृष्ण चन्द्रिका के काव्य सौन्दर्य को गरिमा प्रदान की है । कृष्ण चन्द्रिका की मौलिक उद्भावनायें, मार्मिक प्रसंगों की बहुलता व सूक्ष्म दृष्टि इस ग्रन्थ को हिन्दी साहित्य में उचित स्थान दिलाने में समर्थ है । कवि ने इस ग्रन्थ में भक्ति, वात्सल्य और प्रेम की जो अजस्र धारा प्रवाहित की है वह किसी भी प्रतिष्ठित रचनाकार की रचना से कम नहीं है । भावाभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से कृष्ण चन्द्रिका एक प्रौढ़ रचना है । कलापक्ष एवं शैल्पिकी दृष्टि से भी उसमें अलंकारों एवं विभिन्न छन्दों का उचित प्रयोग हुआ है । भाषा भावानुकूल है । छन्द भावों एवं शब्दों की तीव्र गतिमयता के उदाहरण हैं । ठाकुर रूपसिंह की कृष्ण चन्द्रिका भक्तिकालीन रचना प्रतीत होती है जिसमें उन्होंने कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है ।

बुन्देलखण्ड के तत्कालीन प्रबन्धों में तत्कालीन संस्कृति व लोक जीवन का चित्रण हुआ है अतः कृष्ण काव्य को लौकिकता से अलग नहीं कहा जायगा । कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण का असुर संहारी चरित्र व लोकनायकत्व निश्चित ही तत्कालीन परिस्थितियों की देन है ।

बुन्देलखण्ड में सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्य रचे गये अतः कृष्ण के लौकिक रूप का विकास हुआ । एक ओर कृष्ण का चित्रण कर्मयोगी और राजनीतिज्ञ रूप में हुआ तो दूसरी ओर कृष्ण का ऐश्वर्यात्मक रूप तत्कालीन राजसी वैभव की उपज था ।

ठाकुर रूपसिंह का काव्य वस्तु व शिल्प की दृष्टि से लोक तत्व से सम्बद्ध है । कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन लोक सहज अनुभूतियों से परिपूर्ण है । ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के लावण्य, औदार्य व अपूर्व स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है । कृष्ण को संसार सागर से पार करने वाला साधन बतलाया है । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ठाकुर रूपसिंह अपने युग के सचेतन कवि हैं । वे अपने समय में प्रचलित विभिन्न काव्य-धाराओं, विविध भावों एवं अभिव्यक्ति शैलियों के प्रति जागरूक रहे हैं । उनका मूल्यांकन साहित्य के विविध पक्षों के प्रहरी के रूप में किया जा सकता है । अतः कहा जा सकता है कि ठाकुर रूपसिंह का अपने समकालीन कवियों में कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है

गोविन्द दास व्यास "विनीत"

कृष्ण कथामृत

बुन्देलखण्ड में ऐसी अनेक विभूतियाँ भरी पड़ी हैं जिनपर अभी तक साहित्य का इतिहास लिखने वालों और आलोचकों की समुचित दृष्टि नहीं गयी है । स्वनामधन्य पण्डित गोविन्ददास व्यास "विनीत" झाँसी के एक ऐसे ही अविख्यात महान् प्रतिभाशाली साहित्यकार थे । हिन्दी साहित्य में "विनीतजी" का अपना विशिष्ट स्थान है । आपने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा 11 काव्य, 13 नाटक, 9 उपन्यास एवं अनेकों फुटकर कहानियों,

भावपूर्ण गीतों, छात्रोपयोगी व्याकरण, निबन्ध, सामान्य ज्ञान, लोकोक्ति, मुहावरों एवं वृहत् सामुद्रिक शास्त्र से सम्बन्धित अनेकों ग्रन्थों का प्रणयनकर साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि की है ।

"श्रीकृष्ण कथामृत" आपके साहित्य की सबसे बहुमूल्य कृति है । इसमें कवि ने कृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र का आद्योपान्त चित्रण बड़ी ही सरल, सुबोध और मधुर वाणी में किया है । इसी ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुये महात्मा गांधी ने लिखा है —

" न जाने क्यों "श्रीकृष्ण कथामृत" के कुछ शब्द सुनकर मेरे आँसू बह निकले । ——— इस ग्रन्थ में आद्योपान्त गीतावादी योगिराज का दर्शन पाया जाता है ।"

महामना मदन मोहन मालवीयजी की सदुक्ति भी द्रष्टव्य है :-

"साधि कहौं सद्भाव सौं,
धरि हरिहरी विविध साज ।
कृपासिंधु पावौं नहीं,
कृष्ण कथामृत चरित्त ।"

अनेकों विद्वानों ने इस ग्रन्थ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है । त्रिलोकीजी ने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का राधेश्याम लय में बड़ा ही मधुर, सरल और सरस पद्यानुवाद किया है । "प्रिया या प्रजा" में उनकी मौलिकता, तार्किकता एवं कुशलता का पूर्ण परिचय मिलता है । आपके नाटक व उपन्यास बड़े ही सामाजिक एवं पौराणिक हैं । अपनी इन्हीं कृतियों के कारण "त्रिलोकीजी" को सर्वाधिक सफलता एवं लोकप्रियता प्राप्त हुयी है । वे जनकवि हैं और इसी कारण साहित्य के इतिहास में अपरिचित होते हुये भी उन्होंने अपना स्थान जनता के हृदय में सुरक्षित कर लिया है ।

अभावों में पले राजनीतिक प्रपंचों से दूर, सीधे-सादे बहुगुणी प्रतिभा के धनी साहित्यकार का हिन्दी साहित्य के इतिहास में नामोल्लेख तक नहीं है यह हमारे देश का दुर्भाग्य व साहित्य की विडम्बना है ।

बुन्देलखण्ड वीर-भूमि है । इस वीरभूमि में पण्डित गोविन्ददास व्यास "विनोद" का जन्म कार्तिक पूर्णिमा संवत् 1957 को तालबेहट [झाँसी] में हुआ था । आपका जन्म स्थान "दीन-कुटीर" के नामसे प्रसिद्ध है । आप पाराशर गोत्रीय सनाढ्य कुलीय व्यास ब्राह्मण थे । आपके पिता श्रीमथुरादास साधारण व्यापारी थे । आपकी पूज्या माताजी का नाम मर्यादा देवी था । बाल्यकाल से ही आप साहित्यिक रुचियाँ रखते थे । आपके पितामह श्रीकन्हैयालाल जी राजकवि एवं पुराणाचार्य थे । पिता को भी कविता करने का शौक था । इस प्रकार काव्य परम्परागत वंशानुगत विरासत के रूप में आपको मिला ।

साधारण परिवार में जन्म लेने के कारण एवं अर्थाभाव के कारण आपकी स्कूली शिक्षा अधिक न हो सकी । आपकी लगन, कर्मठता, अध्यवसाय व कुशाग्र बुद्धि ने आपको निरन्तर प्रगति के पथ पर प्रशस्त किया । 1920 से 1941 ई० तक आपने अध्यापन कार्य किया तत्पश्चात् आप बम्बई चले गये । वहाँ 1941 से 1944 तक श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,बम्बई में सम्पादक रहे । अन्त में बम्बई के विरोधी वातावरण व प्रतिकूल परिस्थितियों से ऊबकर वापस आ गये व 1944 से 1948 तक गोवर्धन विद्यालय,पोहरी के संचालक रहे । अन्त में सन् 1948 में आप झाँसी आ गये और पुनः नगरपालिका में अध्यापन कार्य करने लगे । 23 मई सन् 1993 में आपका 93 वर्ष की आयु में निधन हो गया ।

आप बड़े ही स्वाभिमानी एवं राष्ट्रप्रेमी साहित्यकार थे । स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलन में सन् 1930 में आप 6 माह के लिये कारावास भी गये । स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से आपका सम्पूर्ण साहित्य ओत-प्रोत है । श्रीकृष्ण कथामृत आपकी अनूठी विशद व भावपूर्ण रचना है । यह 26 अध्यायों

में किया है । कृष्ण कथामृत ग्रन्थ में श्रीकृष्ण लीला विषयक समस्त कथायें आ गयी हैं ।

ग्रन्थारम्भ गौरी गणेश वंदना से होता है —

> बन्दे गौरि-गनपति-गिरा
>
> हरि मूरति हिय धारि ।
>
> कृष्ण-कथामृत-सार कर
>
> लिखउं महात्म्य विचारि ।।[1]

पण्डित गोविन्द दास जी ने लिखा है कि कृष्ण कथामृत का पान करने से सभी लोग पाप-मुक्त हो सकते हैं । सुख संपति, रिद्धि सिद्धि सभी प्राप्त हो सकती हैं । जो श्रद्धा भक्ति से कृष्ण का गुणगान करते हैं उनपर भगवान भी द्रवित हो जाते हैं ।

> श्रद्धा भक्ति समेत जे करें कृष्ण गुणगान ।
>
> द्रवित रहें तिन पर सदा, दीनबन्धु भगवान ।।[2]

कवि ने कृष्ण कथामृत ग्रन्थ का आरम्भ पूर्ववर्ती कवियों के अनुसार मंगलाचरण से किया है । सर्वप्रथम गणेश वंदना तत्पश्चात् कृष्ण वंदना की है । ग्रन्थ रचना में दोहा, चौपाई का प्रयोग किया है । भाषा विशुद्ध बुन्देली तथा खड़ी बोली है । इस ग्रन्थ की रचना भक्ति भावना से ओतप्रोत होकर की गयी है । द्वितीय अध्याय में श्री नृसिंह अवतार दर्शन का वर्णन है । श्रीकृष्ण कथामृत के कथानक की एक विशेषता यह भी है कि इसमें श्रीराम-दर्शन कथा में श्रीरामचन्द्रजी के सम्पूर्ण जीवन की कथा का संक्षिप्त वर्णन किया है ।

1- श्रीकृष्ण कथामृत -पण्डित गोविन्ददास व्यास "विनीत", दोहा-1, पृ0-1.

2- ,, ,, ,, ,, दोहा-12, पृष्ठ-6.

युद्धोपरांत रामचन्द्रजी रावण का वध कर लंका का साम्राज्य विभीषण को सौंप अयोध्या आते हैं । देखिये --

लंका सौंपि विभीषणहिं, लै लिये कपि-भालु ।
चढ़ि पुष्पक सिय-कमल-प्रभु आये अवध कृपालु ।।[1]

बाल वर्णन में श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था उनके माता-पिता, जन्म आदि का चित्रण है । श्रीकृष्ण के जन्म की कथा भी परम्परागत कथा से प्रेरित है । उनके ग्रन्थ पर तुलसीकृत रामचरित मानस का स्पष्ट प्रभाव है । कहीं-कहीं तो गोस्वामीजी की कही हुई बात का ही उन्होंने चित्रण किया है ।

कंस बहुत ही क्रूर व अत्याचारी शासक है । श्रीकृष्ण के जन्म की बात से वह बहुत क्रोधित होता है और गोकुल में नवजात शिशुओं का वध करवा देता है ।

सूर्य-अंक पलनन्ह परे, करत जननि-पय-पान ।
पकरि पकरि शिशु मारहीं, पामर निठुर अजान ।।[2]

कवि ने अपने ग्रन्थ में श्रीकृष्ण को अवतार माना है । बाल वर्णन के उपरान्त पूतना-वध-कथा का वर्णन है --

सिर धरि आयसु पूतना, कवी वेश बनाय ।
धनि-जनि-ब्रज कुलीन्ह वध, मिलो कोदहिं जाय ।।[3]

कृष्ण कथामृत में दोहा, चौपाई के साथ-साथ छन्दों का भी प्रयोग किया गया है । देखिये उदाहरण --

---

1- श्रीकृष्ण कथामृत - श्रीगोविन्ददास व्यास "विनीत," पृष्ठ-90,
2- ,, ,, ,, पृष्ठ-125.
3- ,, ,, ,, पृष्ठ-128.

यदुराय कस्यो प्रान-पान-आन-पीन न गति लही ।
रोमावली खिरकी खिरी वच फूलटी नहिं सुधि रही।।
प्रति रोम प्रवहत रुधिर चटकत, तंतु-जाल मृनाल सौं ।
उमगत पग कर उठि गिरत कढ़ि बीच वदन कराल सौं ।।[1]

पूतना वध के पश्चात् बंक, त्रिव और बकासुर की कथा का वर्णन है । इस कथा में कृष्ण के अलौकिक रूप का वर्णन हुआ है । इसके बाद शकट कथा का चित्रण है । इसके अतिरिक्त तृणावर्त वध, यमलार्जुन मोक्ष का वर्णन है ।

श्रीकृष्ण कथामृत में कवि ने वृन्दावन वास, श्रीकृष्ण का वत्स-चारण, ब्रम्हा द्वारा वत्स हरण, कालिय मर्दन, प्रलम्ब वध आदि का वर्णन किया है । कवि ने बड़ा ही सरस, मनोहर, सुखकारी व चित्ताकर्षक वर्णन किया है । अलंकारों का सहज ही प्रयोग किया है । श्रीकृष्ण जब कालिय मर्दन के पश्चात् यमुना से ऊपर आते हैं तो उनका शरीर कितना सुन्दर प्रतीत होता है । देखिये उदाहरण —

स्याम - सरोज - सरीर सौं, निचुरत निरमल नीर ।
मानहु परत पयोद सौं, मुक्ता, अरु गम्भीर ।।[2]

कवि ने प्रेम परीक्षा कथा में श्रीकृष्ण की छवि का सुन्दर वर्णन किया है । देखिये —

जस स्वरूप स्वच्छन्द सुनिराजा ।
छवि प्रभाव जस संकर भाषा ।
सोच मन- मूरति नयन निहारी ।
मोर-मुकुट-पीताम्बर - धारी ।
भौंह - नयन - उर - बाहु बिसाला ।

1- श्रीकृष्ण कथामृत - पंडित गोविन्ददास व्यास "विनीत", पृष्ठ-129.
2- .. .. पृष्ठ-130.

अधर मुरलि उर गज मन - माला ।
स्याम - सरोज बदन मकरंदा ।
नयन - भृंग छवि करत अनंदा ।।1*

कवि ने गोवर्धन कथा में श्रीकृष्ण के पराक्रम अलौकिक स्वरूप का वर्णन किया है जो ब्रजवासियों की रक्षा हेतु गोवर्धन पर्वत को धारण कर लेते हैं और इन्द्र उनके चरणों में गिर पड़ता है ।

गिरिहि उठायउ तारिं प्रभु, सुर - पति लज्जित समाज ।
विनय कीन्हिं कर जोरि पुनि, जयति जयति ब्रजराज ।।2*

श्रीकृष्ण कथामृत में कवि ने गोपी चरित्र का विस्तृत वर्णन किया है । गोपी चरित्र के पश्चात् कवि ने चीर-हरण का वर्णन किया है । श्रीकृष्ण के महारास वर्णन में उन्होंने प्रकृति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है । पण्डित गोविन्ददास "विनीत" ने भी कंस-वध के वर्णन में कृष्ण के अतिमानवीय रूप का वर्णन करवाया है, वे बड़ी ही सरलता से कंस का वध कर देते हैं ।

विनीतजी ने श्रद्धा और भक्ति भाव से ओतप्रोत हो अपने ग्रन्थ की रचना की है उसके प्रत्येक पद में अमृत है । इनके काव्य में सरलता, सरसता, शब्द व्यंजना, भाव व्यंजना, चमत्कार, प्रसाद, माधुर्य और गाम्भीर्य समस्त गुण हैं । कृष्ण कथामृत में परम शान्तिदायक गुण है जिसके लिये मानव हृदय सन्तप्त व व्याकुल रहता है । विनीतजी ने भी गोपी विरह का वर्णन किया है । यद्यपि उनका गोपी विरह वर्णन सूर के सदृश विस्तृत, व्यापक व मार्मिक नहीं है तथापि विरह वर्णन में बड़ी कुशलता का प्रयोग किया है । श्रीकृष्ण के विरह में प्रकृति भी पीड़ित दिखायी पड़ती है । देखिये —

1- श्रीकृष्ण कथामृत -पंडित गोविन्ददास "विनीत," पृष्ठ-168 चौपाई ।
2- " " " पृष्ठ-176 दोहा ।

कुसुमित विटप रहे कुम्हलाई ।
जनु विधि बधिक गयउ दैकलाई ।।
खग-मृग विरहहिं दीन मलीना ।
बिनु आहार मनहु भे तन छीना ।।
बिन्दा-विपिन न जाय निहारा ।
मनु कलि विष भयउ उजारा ।
गो-धन-बछरु विरह दव डाढ़े ।
लखत नयन मूँद तब ठाढ़े ।।
भेंटि न तृन जल मुख भुलाने ।
कहहिं न मग जनु पथिक भुलाने ।।[1]

श्रीकृष्ण के विरह में राधिका अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं और अपनी कुंज-कुंज को देखती हैं ।

तब लगि आई राधिका, जबहिं देखत स्याम ।
उमगित धारहु दिसि भरत, जनु आवहि निशुकाम ।।[2]

कृष्ण कथामृत के गोपी विरह वर्णन में कवि ने विरह की अनेकों अन्तर्दशाओं का वर्णन किया है । गोपियाँ ही श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल नहीं हैं, अपितु श्रीकृष्ण भी गोपियों के विरह में व्याकुल हैं । उद्धव गोपियों से कहते हैं :-

तुम सब प्रभुहिं प्रान ते प्यारी ।
होय न छिन भर हिय लौं न्यारी ।।
राजकाज उत बाढ़त जाहीं ।
पलहु देन कर अवसर नाहीं ।।
तव बाढ़त चिन्ता चित तुम्हारी ।
निसि दिन रहत अधीन मुरारी ।।
परखन मोहिं पठयउ यदुवीरा ।
तिन कर सुनहु सँदेस अधीरा ।।[3]

1- श्रीकृष्ण कथामृत -श्री गोविन्ददास "विनीत" पृष्ठ-284 दोहा ।
2- ,, ,, ,, पृष्ठ-288 दोहा ।
3- ,, ,, ,, पृष्ठ-289 चौपाई ।

गोपी विरह वर्णन के पश्चात् कुब्जा उद्धार व जरासन्ध युद्ध का वर्णन है । कृष्ण कथामृत में रुक्मिणी मंगल व प्रद्युम्न कथा को भी कुशलपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है । अन्यान्य विवाह वर्णन में कवि ने श्रीकृष्ण व सत्यभामा के विवाह का वर्णन किया है । यहाँ श्रीकृष्ण के अत्यन्त पराक्रमी, व परामानवीय रूप का चित्रण हुआ है । नर की काया होते हुये भी वे महा-मानव हैं ।

उषा अनिरुद्ध कथा के पश्चात् श्रीबलरामजी के ब्रजागमन की कथा है । बलरामजी ब्रज में आते हैं, परन्तु कोई उन्हें पहचान नहीं पाता है । माता यशोदा को अपना नाम बताते हैं तो वे अंक पसार देती हैं ।

हलधर ही निज नाम उचारा ।
कहि जसुदा कहँ मातु पुकारा ।।
जसुमति लीन्हेउ अंक पसारी ।
सिर धरि कर नयनन्ह भरि वारि ।।[1]

इसके बाद द्विविद वध, साम्ब कथा तथा श्रीकृष्ण वैभव वर्णन है ।

श्रीकृष्ण कथामृत श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र की अपूर्व गाथा है । इसमें श्रीकृष्ण के जीवन की समस्त घटनाओं का क्रमभाव से वर्णन किया गया है । भारत वर्णन के पश्चात् जरासन्ध वध वर्णन, शिशुपाल वध, द्रौपदी चीर-हरण, महाभारत की संक्षिप्त कथा का चित्रण है । कृष्णार्जुन युद्ध, शाल्व वध, बलराम जी का तीर्थाटन, सुदामा चरित, सुभद्रा हरण आदि का चित्रण है । कृष्ण-कथामृत में श्रीमद्भागवत की समस्त कथा को कवि ने अपनी कल्पनानुसार नित्य से नये आख्यान प्रस्तुत किये हैं । यह ग्रन्थ भक्ति भावना से लिखा गया है । हर अध्याय की समाप्ति पर कवि "श्रीकृष्णार्पणमस्तु" लिखना नहीं भूला है ।

1- श्रीकृष्ण कथामृत - पंडित गोविन्ददास "विनीत," पृष्ठ-36। चौपाई ।

ग्रन्थ के अन्त में श्रीकृष्ण जी की आरती लिखी है । श्री विनीत जी कवि हैं या भक्त, यह भेद करना अत्यन्त कठिन है । कवि ने ग्रन्थ में बीच-बीच में बड़े-बड़े कवित्त लिखे हैं जिससे कथा प्रवाह में बाधा पहुँचती है, परन्तु फिर कथा आगे प्रवाहित होती जाती है ।

—— :0: ——

—— :o: ——

चतुर्थ अध्याय

—— :o: ——

चतुर्थ अध्याय

ठाकुर रूपसिंह का जीवन-वृत्त

शोध व अध्ययन के असंख्य साधन उपलब्ध होने तथा साहित्यिक इतिहास के अनेक विशाल ग्रन्थ उपलब्ध होने के उपरान्त बहुत से ऐसे अज्ञात रचनाकार हैं जिनकी ओर विद्वानों ने दृष्टि निपात नहीं किया है । देश के अनेक क्षेत्रों में सर्वथा अज्ञात व अल्पज्ञात ऐसे सैकड़ों ग्रन्थकार मिल जायेंगे जो इतिहास के लिये नवीन उपलब्धि सिद्ध हो सकते हैं । दुर्भाग्य से ऐसे अनेक रचनाकार हैं जो प्रकाशित होकर भी अज्ञात हैं । इन्हीं अज्ञात रचनाकारों में बुन्देल भूमि के प्रमुख कवि ठाकुर रूपसिंह भी हैं ।

जीवन परिचय

स्वर्गीय ठाकुर रूपसिंहजी के जीवन परिचय को प्राप्त करने के लिये काफी प्रयत्न करने पड़े । पहाड़गाँव जिला जालौन निवासी पण्डित लक्ष्मी प्रसाद शास्त्री द्वारा कवि रूपसिंहजी के जीवन परिचय पर किंचित् प्रकाश विकीर्ण किया गया जिससे आपके बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त हुयी ।

<u>जन्म-स्थान व जन्म तिथि</u>

स्वर्गीय ठाकुर लालसिंहजी भाद्रपद कृष्ण अष्टमी शनिवार संवत् 1904 (1847 ईस्वी) में समथर स्टेट के ग्राम बैला में अवतरित हुये थे। ग्राम बैला झाँसी-कानपुर रोड पर स्थित है। यह गाँव झाँसी से 71 किलोमीटर दूर है व ग्राम सेंवढ़ा के पास है। सेंवढ़ा तक बस जाती है और वहाँ से लगभग 4 किलोमीटर पैदल चलकर ग्राम बैला पहुँचा जा सकता है।

<u>वंश परम्परा</u>

कवि लालसिंहजी के पूर्वज भटिंडा निवासी थे। तत्कालीन समथर नरेश महाराज रणजीत सिंह प्रथम ने लालसिंहजी के पूर्वज स्वर्गीय माधवजू की वीरता से प्रभावित होकर उनके वंश को सिंह की उपाधि से विभूषित किया था। उसी समय से इनके वंशजों के नाम के साथ ठाकुर व सिंह जुड़ने लगा। उनके परिजनों ने बताया कि सेंवढ़ा की लूट के समय दीवानजू लोहे की नुकीली सलाखें युक्त दरवाजे से चिपक गये थे। इसके बाद हाथियों ने दरवाजा तोड़ा था फिर सैनिकों ने अन्दर प्रवेश कर विजय प्राप्त की।

ऐसे वीरतापूर्ण कारनामों के कारण महाराजा ने उनके वंश को सिंह की उपाधि से विभूषित किया। उनके समकालीन कवि श्रीकविनाथ ने माधवजू की वीरता को निम्नलिखित छंद में शब्द बद्ध किया है —

श्री कविनाथ वीर नृप रणजीत काज
किलकिल तमक तन तेग न बचायो है
उते मरहट्टा बुन्दिल से न आखिन पे रहे,
चिकेश वीर ते न [illegible] धायो है
बाजी तोप तुपक तरवार लाय ढूंढ वीर मने
कविनाथ मंड मुंड भूप छायो है

चिकसत कल नाकल भंडरिया पकर लगे
रामुपि विहार के कविन सरसायो है ।

समथर स्टेट के अन्तर्गत् औला में उपद्रवी तत्वों द्वारा किये गये हिंसक कार्यों के प्रतिकार के लिये इनके पूर्वजों को तैनात किया गया था । इन्होंने उन असामाजिक तत्वों का दमन किया । ये लोग तभी से औला जिला झाँसी में रहने लगे थे । इनके पूर्वज मूलतः भांडेर निवासी थे अतः ये भंडरिया कुल के श्रीवास्तव कहलाये । कवि रूपसिंह के पिता का नाम ठाकुर बहादुर श्रीवास्तव था । कृष्ण चन्द्रिका के अन्त में रूपसिंहजी ने लिखा है :-

श्रीवास्तव कायथ और
कुल भंडरिया जाय
नाम बहादुर देव पितु राम रूप सुत आय
वास औला ग्राम शुभ जन्मभूमि सुखधाम
समथर गति गुणवर तिलक, राव राव अभिराम ।

कवि रूपसिंहजी तीन भाई थे । आपका पारिवारिक व्यवसाय जमींदारी था । अधिकांश पारिवारिक सदस्य समथर स्टेट की फौज में थे । आपका विवाह संवत् 1926 विक्रमी में मड़ीगांव बरिया के बल्देव प्रसादजी कानूनगो की बहिन के साथ हुआ था । आज से लगभग 118 वर्ष पूर्व 22 वर्ष की अवस्था में विवाह होना आश्चर्य का विषय है, क्योंकि उस युग में बाल विवाह प्रचलित थे । रूपसिंहजी के चार पुत्र व दो पुत्रियाँ थीं । आपके पुत्रों के नाम क्रमशः ठाकुर गोविन्दसिंह, कुन्दन सिंह, रोशनसिंह तथा रघुवीर सिंह थे । आपके ज्येष्ठ पुत्र ठाकुर गोविन्द सिंह दफेदार ने संक्षिप्त कृष्ण चन्द्रिका को सन् 1927 में प्रकाशित करवाया ।

पारिवारिक जीवन

आपने बाल्यावस्था में ही हिन्दी, उर्दू और संस्कृत भाषा के अध्ययन के साथ ही साथ वैद्यक विद्या में भी बड़ी कुशलता प्राप्त की । पिंगल की कुशलता आपके ग्रन्थ से ही स्पष्ट होती है । आपके गुरु पंडित गंगाप्रसाद द्विवेदी थे ।

वे प्रकाण्ड पण्डित थे । ठाकुर रूपसिंह उनके आज्ञाकारी शिष्य थे । आपने आजकी भाँति विद्यालय या विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी । आपके पास कोई उपाधि व प्रमाणपत्र नहीं था । तथापि आपकी ज्ञान - साधना गंभीर एवं व्यापक थी । बाल्यावस्था से ही आपकी रुचि काव्य सृजन तथा ग्रन्थों के पठन पाठन में थी । इसी रुचि के कारण आपने अनेक ग्रन्थों का पठन पाठन किया । ठाकुर रूपसिंहजी ने कृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ का आरम्भ सम्वत् 1936 में किया था । ठाकुर साहब ने आरम्भ में ही जान लिया था कि हमारी गृहिणी न रहेगी इससे ग्रन्थ का निर्माण करते समय दस वर्ष तक कोई भी सांसारिक कार्य नहीं किया । आपको तुलसीदासजी, सूरदासजी व आचार्य केशव के काव्यों में बड़ी निष्ठा थी इसी से ग्रन्थ में यत्र तत्र इन्हीं महानुभावों की विचार छाया देखने को मिलती है ।

धार्मिक अभिरुचि

ठाकुर रूपसिंहजी परम धार्मिक थे । आप परम भागवत थे और महान भक्त थे । इस भवसागर से उद्धार पाने के लिये ही आपने श्रीमद्-भागवत के दशम् स्कन्ध के आधार पर कृष्ण चन्द्रिका का प्रणयन किया । आप साधु सज्जनों की संगति में बड़ा आनन्द अनुभव करते थे । धार्मिक अभिरुचि के कारण ही आपने जितने ग्रन्थों की रचना की वे सभी धर्म व भक्ति भावना पर आधारित हैं । अपने कृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ में उन्होंने कृष्ण के प्रति अनन्य श्रद्धा व भक्ति प्रकट की है । उन्होंने ग्रन्थ में कृष्ण के असाधारण कार्यों के कारण उनके ईश्वरीय स्वरूप की प्रतिष्ठा की है तो साथ ही साथ उनके मानवोचित कार्यों का भी दिग्दर्शन कराया है । उन्होंने एकादशी महात्म्य का छंदोबद्ध अनुवाद किया था, किन्तु वह इस समय अनुप-लब्ध है । इस ग्रन्थ का अनुवाद कर कवि ने अपनी विद्वता व धार्मिक अभिरुचि का परिचय दिया है । धार्मिक अभिरुचि के कारण ही आपका विचार अविचल

ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ की समाप्ति हो जाने पर पण्डित गंगाप्रसादजी द्विवेदी से अनुमति ली कि मेरी आयु एक मास की है यदि आप आज्ञा दें तो जगदीश जी के दर्शन और करूं । तब पण्डितजी ने कहा कि जाइये इससे उत्तम और है ही क्या ? बस इस प्रकार आचार्य की आज्ञा लेकर मार्ग में प्रयाग, विन्ध्य-वासिनी, काशी, वैद्यनाथ और गया में श्राद्ध करते हुये आप जगदीशपुरी को गये । उस समय पुरी में रथयात्रा महोत्सव के कारण मनुष्यों की बड़ी भीड़ थी अत: आपको अर्धरात्रि तक जगदीशजी के दर्शन न मिल सके । दर्शन न मिलने के कारण आप चिन्ता में मग्न बैठे थे कि इतने में दो अपरिचित मनुष्य आये और उन्होंने कहा चलिये हम आपको जगदीशजी के दर्शन कराने ही आये हैं । तब तो आप परम उत्साह से अपने ज्येष्ठ पुत्र सहित दर्शनों को गये । दर्शन करते समय आपने भगवान का श्रीवत्स कमल ग्रहण कर लिया और आपके नेत्रों से अविरल अश्रुधार बहने लगी । शरीर रोमांचित हो गया और कंठ गद् गद् हो गया । जान पड़ता था कि आप अपना भौतिक शरीर त्याग देंगे । बड़ी कठिनता से आपने भगवान का श्रीवत्स छोड़ा । इससे ज्ञात होता है कि आप महान भक्त थे । इन्हीं प्रसंगों से ज्ञात होता है कि आप महान धार्मिक अभिरुचि वाले थे ।

युगीन प्रभाव :

प्राप्त जानकारी के अनुसार कृष्ण चन्द्रिका का आरम्भ संवत् 1936 वि० में हुआ था । कृष्ण चन्द्रिका के अन्तिम पृष्ठ पर दिये गये कालानुसार ग्रन्थ की समाप्ति संवत् 1967 है । इस आधार पर ठाकुर रूपसिंह हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के दृष्टिकोण से भारतेन्दु युगीन ठहरते हैं । 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दो विरोधी संस्कृतियों के आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक संघर्ष के परिणाम स्वरूप नये युग का सूत्रपात हुआ । इस काल के साहित्य में हमें विविधता के दर्शन होते हैं । एक ओर जहाँ प्राचीन और

परम्परित काव्य धाराओं का प्रवाह दिखायी पड़ता है तो दूसरी ओर काव्य में नवीन दृष्टिकोण से समन्वित नवीन काव्य धारा का भी परिचय मिलता है ।

आचार्य शुक्ल के अनुसार भारतेन्दु युग प्राचीन व अर्वाचीन का संधिकाल था । नवीन भावनाओं को लिये हुये उस काल के कवि देश की परम्परागत चिरसंचित भावनाओं और उमंगों से परिपूर्ण थे । भारतीय जीवन के विविध रूपों की मार्मिकता उनके हृदयों में विराजमान थी । उस जीवन के प्रफुल्ल स्थल उनके हृदय में उमंगें उठाते थे ।

इस संक्रान्तिकाल में कविता का स्वरूप सचमुच निराला था । इसके अद्भुत व अपूर्व रूप की व्याख्या करते हुये डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है "कि भारतेन्दु युग के काव्य को पढ़ने से एक विचित्र कोलाहल-सा अनुभव होता है । विभिन्न धाराओं के एक साथ मिलने से पाठक को आकाशव्यापी कलकल-ध्वनि सुनायी देती है । कुछ लोग नायक नायिका नख शिख वर्णन में लगे हैं तो दूसरे प्रतिभावान समस्यापूर्ति में चमत्कार दिखा रहे हैं । अन्य कवि अकाल, महामारी, टेका आदि पर लोकगीत रच रहे हैं ।कुछ लोग कविता में गद्य की भाषा का भी प्रयोग कर रहे हैं ।" दरबारी संस्कृति व नवचेतना का प्रभाव सर्वाधिक कविता में ही दृष्टिगोचर होता है । भारतेन्दु युग के काव्य में व्यवस्था का अभाव है । प्राचीन रूढ़ियों पर चलने वाले पर्याप्त हैं तो नवीन प्रयोग करने वाले भी बहुत हैं । भारतेन्दु युग में यद्यपि मध्यकाल जैसा वीर-भक्ति और रीतिकाल जैसा शृंगार काव्य दिखायी नहीं पड़ता है तथापि नवीन युग की माँग की पूर्ति हेतु रचे गये साहित्य में हमें मौलिकता के दर्शन होते हैं । इस काल में प्राचीन परम्पराओं से पोषित कुछ रचनाओं में नवीन भाव व विचारों की भी अभिव्यक्ति हुयी है ।

भारतेन्दु युग में जहाँ राष्ट्रीय विचारधाराओं की अभिव्यक्ति खड़ी बोली में हुयी, वहीं ब्रजभाषा में पूर्ववर्ती काव्य की रचना हुयी ।

भारतेन्दु युग में श्रीकृष्ण की लीलाओं का सरस वर्णन अनेकों कवियों ने किया है । इन रचनाओं में परम्पराओं का विशिष्ट पेषण ही अधिक है । श्रीकृष्ण की सरस लीलाओं में हिंडोला, झूला, बाल्यावस्था, होली, नखशिख वर्णन के अतिरिक्त कृष्ण की विभिन्न छद्म लीलाओं का भी वर्णन अनेक मुक्तक व प्रबन्ध काव्यों में हुआ है ।

ठाकुर रूपसिंहजी ने भी तत्कालीन साहित्यिक वातावरण व भक्ति भावना से प्रभावित होकर कृष्ण चन्द्रिका की रचना की । प्राप्त जानकारी के अनुसार कृष्ण चन्द्रिका का आरम्भ 1956 वि0 में हुआ था । उक्त ग्रन्थ में ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण की सम्पूर्ण कथा वर्णित की है । ग्रन्थ में "रूपराम" उपनाम लिखा है । भक्ति भावना से ओतप्रोत हो कृष्ण के दैविक और मानवीय रूपों का कथानुसार वर्णन उक्त ग्रन्थ में किया है । वे परम भागवत् थे व भक्ति-शास्त्र के रसिक थे । उन्होंने इस दुस्तर संसार सागर से उद्धार पाने के लिये श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध के आधार पर कृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ रूपी नौका का निर्माण किया ।

कृष्णचन्द्रिका के अन्तिम पृष्ठ पर दिये गये कालानुसार ग्रन्थ की समाप्ति संवत् 1967 है, जबकि रूपसिंह ने ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठ पर ही कृति समाप्ति का समय भाद्रपद कृष्ण अष्टमी शनिवार संवत् 1964 बताया है ।[1]* सम्भवतः ग्रन्थ की समाप्ति 1964 में ही हो गयी हो, किन्तु अन्तिम रूप से संवत् 1967 में किया गया हो । कृष्ण चन्द्रिका का प्रकाशन सर्वप्रथम ठाकुर रूपसिंह के ज्येष्ठ पुत्र ठाकुर गोविन्द सिंह जी दफेदार ने सन् 1927 में किया था जिसकी लगभग 250 प्रतियाँ प्रकाशित की गयीं । इसका कोई मूल्य नहीं रखा गया । मूल्य के स्थान पर कृष्ण भक्ति लिखा हुआ है । उक्त ग्रन्थ का मुद्रण बाबू देवीदीन जायसवाल, यूनियन प्रेस, झाँसी द्वारा किया गया । कम प्रतियों के कारण ही सम्भवतः इस कवि से साहित्य जगत अपरिचित रह गया ।

1- परिचय - कृष्णचन्द्रिका (ठाकुर रूपसिंह कृत)- पं0सरयूप्रसाद शास्त्री ।

ठाकुर रूपसिंह के ग्रन्थ पर तत्कालीन युग का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । कवि समकालीन समाज से अवश्य प्रभावित होता है । जैसे प्रबंधकार का उद्देश्य कथानक की सामाजिक स्थिति का चित्रण करना होता है तथापि वह समकालीन सामाजिक प्रवृत्तियों का चित्रण अनायास ही कर जाता है । रीतिकालीन राजा तथा सरदार अपने महलों में अनेक रानियाँ रखते थे । कृष्ण चन्द्रिका के कृष्ण की रानियाँ व पटरानियाँ बड़े राजाओं और सरदारों की प्रवृत्ति की परिचायक है । एक से प्रेम करते हुये भी अनेक स्त्रियों का प्रेम हृदय में पालना उस समय का विशिष्ट गुण था तथा स्त्रियों के सौत भाव का आभास गोपियों के कुब्जा के प्रति कथनों में मिलता है । तत्कालीन पुरुषों की रसिकता व स्त्रियों की समर्पित भावना का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है । ठाकुर रूपसिंह के काव्य में तत्कालीन संस्कृति व लोकजीवन का चित्रण हुआ है । उनका कृष्ण काव्य संघर्षों से पलायन नहीं कहा जायेगा, बल्कि संघर्षों का डटकर सामना करने वाला कहा जायेगा । कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण का असुर संहारी चरित्र और लोकनायकत्व निश्चय ही तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की देन है ।

बुन्देलखण्ड में सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्यों की अधिक रचना हुयी अतः कृष्ण के लौकिक रूप का विकास बुन्देलखण्ड में ही हुआ । एक ओर कृष्ण का चित्रण कर्मयोगी और राजनीतिज्ञ रूप में किया गया तो दूसरी ओर कृष्ण का ऐश्वर्यपरक रूप तत्कालीन राजसी वैभव की उपज था । इसी क्रम में ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के असुर संहारक रूप का वर्णन कर कृष्ण काव्य को युग चेतना से संयुक्त किया है । ठाकुर रूपसिंह का कृष्ण काव्य वस्तु और शिल्प की दृष्टि से लोक तत्वों से अधिक संबद्ध है । कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण लोक सहज अनुभूतियों से परिपूर्ण है । इस प्रकार ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में लोक काव्यात्मकता के विविध रूपों का चित्रण किया है । ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के सौम्य, मनोहर, ललित स्वरूप का चित्रण तत्कालीन युग के अनुरूप ही किया है । उन्होंने कृष्ण को संसार सागर से पार करने वाला साधन बतलाया है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि ठाकुर रूपसिंह तत्कालीन युग से पूर्णतया प्रभावित हैं ।

अवसान काल

कृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ की समाप्ति के पश्चात् आप जगन्नाथ पुरी श्रीकृष्ण के दर्शन हेतु गये । जगन्नाथपुरी से लौटते समय मार्ग में आपने अपने ज्येष्ठ पुत्र से अनुरोध किया कि मुझे काशी ले चलो वहाँसे आठवें दिवस मेरा अवसान हो जायेगा, परन्तु आपके पुत्र मोहवश आपको घर ले आये । अन्तिम समय में आपको कोई कंठावरोध नहीं हुआ और आप शांत भाव से कम्बल पर पद्मासन लगाकर "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मंत्र तथा ओंकार का जप करते हुये आषाढ़ शुक्ल एकादशी संवत् 1960 वि० की बेला के लिये अन्तर्निहित हो गये ।

यद्यपि इस असार संसार में आप सशरीर नहीं हैं, किन्तु अपने इस ग्रन्थ के कारण हिन्दी साहित्य में आप सदैव स्मरण किये जाते रहेंगे ।

तत्कालीन कृष्ण भक्त कवियों में आपका स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है । आपने हिन्दी साहित्य को एक अनुपम कृति दी है और हिन्दी साहित्य आपका सदैव ऋणी रहेगा ।[1]

——— :0: ———

1- परिचय - कृष्णचन्द्रिका [ठाकुर रूपसिंह कृत] - पं०लक्ष्मीप्रसाद शास्त्री ।

—— :0: ——

पंचम् अध्याय

—— :0: ——

अध्याय - 2

श्रीकृष्ण चन्द्रिका का अनुशीलन

ठाकुर रूपसिंह कृत श्रीकृष्ण चन्द्रिका एक बृहदाकार ग्रन्थ है । यह एक भक्ति ग्रन्थ है इसमें श्रीकृष्ण की भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित है । श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्रांकन है । उनके जीवन की समस्त महत्वपूर्ण घटनायें बड़े ही सुन्दर, मनोहारी ढंग से काव्य में पिरोयी गई हैं । ठाकुर रूपसिंह एक प्रतिभाशालि कवि थे । उन्होंने कृष्ण का चरित्र-चित्रण करने के लिये कविता का अभ्यास किया हो, ऐसा नहीं है वरन् वे वास्तव में निसर्गतः कवि थे । कृष्ण-भक्ति उनमें रम रही थी । उनकी काव्य शक्ति कृष्ण लीला वर्णन में प्रस्फुटित हुयी । कृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ के काव्य सौन्दर्य के कतिपय कारण हैं । एक तो इन्होंने ब्रजभाषा का प्रयोग किया । इनका काव्य माधुर्य एवं लालित्य से पूर्ण है । उनका काव्य उनके प्रेमपूर्ण हृदय का मनोहारी उद्गार है । काव्य कृत्रिमता-विहीन है । उनकी रचना प्रबन्ध काव्य का एक उत्तम उदाहरण है । उनकी रचना किसी छन्द नियम-धारा में आबद्ध नहीं है । भाषा व भावों की सहज प्रवाहमयता है । भाषा में अलंकारिक या अन्य किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं । यद्यपि उन्होंने रूप वर्णन अधिक नहीं किया है, परन्तु जहाँ भी किया है अनुपम है ।

उनके रूपवर्णन की एक विशेषता यह है कि जिस के अधिकांश कवियों ने नारी-रूप वर्णन में ही पृष्ठ के पृष्ठ रंगीन किये हैं, किन्तु इन्होंने कृष्ण के पुरुषोचित रूप का अनूठा वर्णन किया है। इन्होंने कृष्ण की शिशु लीला, दधि-माखन चोरी, गोचारण, रासलीला, विभिन्न असुरों का वध, श्रीकृष्ण की स्तुति आदि से अपनी वाणी को अमर कर लिया है। उनका प्रत्येक वर्णन पाठक को स्वतः रस निमग्न कर देता है जिससे एक जादू-सा छा जाता है और पाठक आत्म विस्मृत हो जाता है। भ्रमरगीत यद्यपि सूर के भ्रमरगीत से अत्यन्त सूक्ष्म है उसमें विरह-विकल गोपियों की उपालम्भ मिश्रित सूक्तियाँ व उद्धव की दार्शनिकता एक ही स्थान पर मिलकर इतनी मनोहारिणी हो गयी हैं जितनी कि धूप-छाँव रंग की झिलमिलाहट। सैकड़ों पदों में श्रीकृष्ण के जीवन चरित का गायन किया गया है, किन्तु कथानक में कहीं भी शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं होती है। यद्यपि कृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ का आधार भागवत का दशम् स्कंध है, किन्तु स्थान-स्थान पर नवीनता दृष्टिगोचर होती है। कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी है। उनकी भाषा का माधुर्य भी अपना ही है। भाषा कृत्रिमता से दूर है। शृंगार का औचित्यपूर्ण चित्रण है। कहीं भी अश्लीलता के दर्शन नहीं होते हैं। माधुर्य एवं प्रसाद गुण तो रसानुकूल अपनी पूर्ण सजधज से आये हैं जिन्होंने तुच्छ दोषों को अपने प्रताप से अदृष्ट-सा बना दिया है।

कृष्णचन्द्रिका काव्य वीर रस से परिपूर्ण काव्य है। सम्पूर्ण काव्य में कृष्ण के वीर रूप का ही वर्णन किया है।

[क] कथानक

ठाकुर स्वामीजी ने कृष्णचन्द्रिका के कथानक को 90 अध्यायों में विभाजित किया है। कथानक की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करने से पहले कथासार जान लेना आवश्यक हो जाता है। कृष्णचन्द्रिका की कथा का सार विभिन्न अध्यायों में इस प्रकार है :-

अध्याय - 1

कृष्ण चन्द्रिका प्रबन्ध काव्य गणेश, सरस्वती, गुरुवंदना से प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् उमा, शंकर, ग्रह-नक्षत्रों आदि की वंदना की गयी है। प्रथम अध्याय में राजा परीक्षित शिकार से लौटते समय एक गाय और बैल के पीछे एक मूसलधारी मनुष्य को भागता हुआ देखकर क्रोधित होते हैं। राजा के पूछने पर वृषभ स्वयं को धर्म, गाय को पृथ्वी व मूसलधारी मनुष्य को कलियुग का प्रतीक बतलाता है। पृथ्वी कलियुग के अत्याचार से त्रस्त रहेगी। राजा के चिन्तित होने पर आचार्य शुक कृष्ण चरित्र की कथा सुनाते हैं।

अध्याय-2

द्वितीय अध्याय में कवि बतलाता है कि अत्याचारी कंस अपने पिता को पकड़कर राजसिंहासन पर बैठता है और तत्पश्चात् इन्द्रासन पर अधिकार करने की चेष्टा करता है। पृथ्वी अधर्म से पीड़ित है। इन्द्र, ब्रह्मा, शिवादि भगवान विष्णु की स्तुतिकर अधर्मनाश की प्रार्थना करते हैं। आकाशवाणी द्वारा ज्ञात होता है कि यदुवंश में माया सहित नारायण कृष्ण रूप में अवतरित होने वाले हैं। उनकी सेवा का निर्देश प्राप्त होता है।

अध्याय - 3

वसुदेव देवकी के विवाहोपरान्त विदाई के समय विदा दे रहे होते हैं कि आकाशवाणी होती है कि देवकी के आठवें पुत्र के द्वारा कंस का वध होगा। यह जानकर कंस तत्क्षण देवकी को मारने हेतु प्रवृत्त हो जाते हैं। वसुदेव द्वारा सभी बालकों को कंस को अर्पित सौंप देने की प्रतिज्ञा करने पर कंस उनको छोड़ देता है। प्रथम पुत्र को कंस द्वारा लौटा देने पर नारदजी के परामर्श पर क्रमशः छः पुत्रों को मार डालता है।

अध्याय - 4

चतुर्थ अध्याय में कवि वर्णन करता है कि कंस सभी यदुवंशी बालकों का मर्दन करवा देता है। देवकी के गर्भ में स्थित बालक को योगमाया द्वारा

गोकुलवासिनी रोहिणी के गर्भ में स्थित करवा दिया जाता है तत्पश्चात् कवि ने कान्ह के जन्म की कथा का वर्णन किया है ।

<u>अध्याय - 5</u>

पंचम् अध्याय में कारागार में बंदी देवकी वसुदेव को हरि का स्वयं दर्शन देकर स्वयं को ब्रज भिजवाने व यशोदा की पुत्री योगमाया को मथुरा लाने का निर्देश देना, कृष्ण-जन्म होने पर नारायण के निर्देशानुसार वसुदेव का कार्य करना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 6</u>

षष्ठम् अध्याय में शत्रु जन्म की सूचना पाकर कंस का बंदी-गृह आना, बालिका को शिला पर पटकना, दिव्य कन्या का कंस-हस्त से छूटकर आकाश में अष्टभुजा-मूर्ति के रूप में परिवर्तित होना व उसके शत्रु के ब्रज में जन्म लेने का बात कहना, कंस द्वारा देवकी वसुदेव को मुक्तकर ब्रज बालकों को मरवाना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 7</u>

सप्तम् अध्याय में कृष्ण-जन्म पर नन्द द्वारा उत्सव करवाना तथा नंद यशोदा द्वारा कृष्ण प्राप्ति का कारण पूर्व जन्म में किया जाने वाला तप वर्णित है ।

<u>अध्याय - 8</u>

आठवें अध्याय में पूतना का मनोहर रूप धारणकर नन्द के घर जाकर कृष्ण को सविष स्तनपान करवाना तथा कृष्ण का दूध के साथ उसके प्राण खींचना, मरते समय असली रूप में प्रकट होकर छ:कोस दूर जाकर गिरना, भयभीत यशोदा तथा गोपों द्वारा कृष्ण को विष से बचाने के लिये तंत्रादि उपाय करना वर्णित है ।

अध्याय - 9

नवें अध्याय में पूतना-वध से भयभीत कंस द्वारा कृष्ण को मारने हेतु भेजे गये बकासुर, शकटासुर और तृणावर्त का कृष्ण द्वारा वध होना वर्णित है ।

अध्याय - 10

दसवें अध्याय में कृष्ण बलराम का नामकरण संस्कार, कृष्ण की वर्षगांठ के अवसर पर ब्राम्हण भोजन जूठा कर देना, यशोदा द्वारा डाँटने पर ब्राम्हण को ही दोषी ठहराना जैसी बाल शरारतें वर्णित है ।

अध्याय - 11

ग्यारहवें अध्याय में कृष्ण द्वारा गोपियों को परेशान करना, यशोदा माता द्वारा कृष्ण के मिट्टी खाने पर उनका मुख खुलवाकर देखना फिर उसमें सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड के दर्शनकर आश्चर्य चकित होना, कृष्ण का माखन फैलाकर सखाओं सहित भागने पर यशोदा द्वारा कृष्ण को ओखल से बाँध देना वर्णित है ।

अध्याय - 12

बारहवें अध्याय में कुबेर पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव द्वारा मद्यपानकर मंदाकिनी में नग्नावस्था में स्त्रियों सहित जल विहार करना, नारदजी को देखकर भी विरत न होना, नारदजी द्वारा स्थावर योनि में शापित होना, शापित होकर कृष्ण द्वारा मुक्ति का वरदान लेना परिणामस्वरूप कृष्ण का ओखल लीला करते हुये उनका उद्धार करना वर्णित है । कृष्ण द्वारा गोपियों की मटकी फोड़ देना और उन्हीं को दोषी ठहराना, पंचवर्षीय कृष्ण का ग्वाल-बालों सहित वन में गोचारण हेतु जाना, वहाँ कंस द्वारा प्रेषित बकासुर एवं वत्सासुर का वध वर्णित है ।

अध्याय - 13

तेरहवें अध्याय में ग्वाल बाल सहित वन में विहार करते समय अघासुर राक्षस का अजगर रूप में मार्ग में लेट जाना, बालकों का उसे गुफा समझकर कृष्ण सहित प्रविष्ट होना, प्रविष्ट होने पर उसका मुख बन्द कर लेना एवं कृष्ण द्वारा भीतर-शरीर बढ़ाये जाने पर कंठावरोध की वेदना से अघासुर का मरना, कृष्ण का ग्वाल बाल वत्सादि को जीवितकर बाहर निकल जाना वर्णित है ।

अध्याय - 14

चौदहवें अध्याय में कृष्ण द्वारा ग्वाल बालों सहित वन में कलेऊ करना, ब्रम्हा द्वारा कृष्ण के परमतत्व की परीक्षा हेतु बछड़े और ग्वाल बालों को कुदरा में छिपाना, ब्रम्हा की माया जान कृष्ण द्वारा वैसे ही बछड़े व ग्वाल-बाल बनाकर घर ले जाना, एक वर्ष पश्चात् ब्रम्हा का लज्जित होकर माफी माँगते हुए बछड़े व ग्वाल बालों को वापस लौटा देना वर्णित है ।

अध्याय - 15

पन्द्रहवें अध्याय में कृष्ण की स्तुति वर्णित है । यह स्तुति ब्रम्हाजी द्वारा की गयी है ।

अध्याय - 16

इस अध्याय में कृष्ण बलराम का वन में गाय चराते समय गोपों सहित धेनुक राक्षस के बाग में प्रवेश, बलराम के वृक्ष हिलाने पर गर्दभाकृति धेनुक का बलराम में दुलत्ती मारना फलतः बलराम का उसका वध करना वर्णित है । कवि ने कालियदह का आमुख भी प्रस्तुत किया है । कृष्ण से बिछुड़कर ग्वाल-बालों का भटकते हुये यमुना का विषाक्त जल पीकर मूर्छित होना, कृष्ण द्वारा अपनी करूणामयी दृष्टि से उनको जीवित कर देना वर्णित है ।

अध्याय - 17

सत्रहवें अध्याय में नारद के सुझाव देने पर कंस नन्दबाबा से एक करोड़ कमल के पुष्प माँगता है । इस पर कृष्ण गेंद उठाने के बहाने यमुना में कूदकर

कालीनाग के सिर पर तीनों लोकों का भार रखते हैं। कालियनाग कृष्ण से क्षमा माँगते हुये कमल पुष्प प्रदान करता है व कृष्ण उसे रमणीक द्वीप में रहने का निर्देश देते हैं। यमुना तट पर विकल होते नन्द, यशोदा, गोपों आदि का कालीनाग पर सवार कृष्ण को आते देख प्रसन्न होना वर्णित है।

अध्याय - 18

अठारहवें अध्याय में राजा परीक्षित कालीनाग के रमणीक द्वीप छोड़ कर यमुना में रहने का कारण पूछते हैं। तब शुकदेवजी बतलाते हैं कि गरुड़ सर्पों को खा जाते थे अतः कालीनाग अपने सपरिवार यमुना में रहने लगा, क्योंकि सौभरि ऋषि के शाप के कारण गरुड़ वहाँ नहीं जा सकते थे।

अध्याय - 19

उन्नीसवें अध्याय में ब्रज में ग्रीष्म ऋतु में भी वसन्तश्री का प्रभाव बतलाया है। कपट रूप ग्वाल (प्रलम्बासुर) का खेल-खेल में बलराम को लेकर आकाश मार्ग में उड़ते हुये अपने सत्य रूप में आ-जाना यह देखकर उसकी पीठ पर बैठे बलराम का उसके मस्तक पर घूँसा मारकर उसे मार डालना वर्णित है।

अध्याय - 20

बीसवें अध्याय में वन में चरती हुयी गाय का मुँज वन में प्रविष्ट होना, उसके पश्चात् भयंकर दावानल में फँसना, कृष्ण द्वारा सभी को नेत्र बन्द करने का आदेश देना व दावानल का स्वयं पान करना वर्णित है।

अध्याय - 21

इक्कीसवें अध्याय में षड् ऋतुओं के प्रभाव से वृन्दावन के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

अध्याय - 22

बाईसवें अध्याय में कृष्ण के प्रति गोपियों का अगाध व निश्छल प्रेम, कृष्ण के वन जाने पर उनकी प्रतीक्षा करना व वंशी के प्रति गोपियों का सौतिया डाह वर्णित है ।

अध्याय - 23

तेईसवां अध्याय में वर्णित है कि मार्गशीर्ष मास में गोपिकायें कात्यायिनी देवी का व्रत करती हैं व पति रूप में श्रीकृष्ण को पाने की याचना करती हैं । एक मास बाद गोपियां यमुना में नग्न हो स्नान करती हैं, कृष्ण उनके वस्त्र उठा कदम्ब पर चढ़ जाते हैं, कृष्ण के कहने पर उसी अवस्था में बाहर आकर वस्त्र मांगती हैं, कृष्ण की आज्ञानुसार नग्नावस्था में स्नान करने के कारण वरुण देवता से क्षमा मांगती हैं व कृष्ण वस्त्र लौटाते हुये उन्हें शरद् रात्रि में रासलीला का आश्वासन देते हैं ।

अध्याय - 24

चौबीसवें अध्याय में गोचारण करते हुये क्षुधा से व्याकुल कृष्ण का गोपों से कंस के भय से छिपकर यज्ञ करते हुये ब्राम्हणों से अन्न मंगवाना, ब्राम्हणों द्वारा इन्कार करने पर पुनः गोपों को ब्राम्हण पत्नियों के पास भेजना, ब्राम्हण पत्नियों का पति के मना करने पर भी भोज्य सामग्री ले कृष्ण के पास दौड़ना, कृष्ण की स्तुति करना, कृष्ण के समझाने पर घर लौटना आदि वर्णित है ।

अध्याय - 25

पच्चीसवें अध्याय में कार्तिक बदी चतुर्दशी को कृष्ण द्वारा समस्त ब्रजवासियों को गोवर्धन पर्वत की पूजा करने के लिये प्रेरित करना, नन्द सहित ग्वालों का गोवर्धन की पूजा करना, कृष्ण का चतुर्भुज रूप में प्रकट होकर भोग ग्रहण करना, सभी ब्रजवासियों का गोवर्धन पूजा सार्थक समझना व अपने घर लौटना वर्णित है ।

अध्याय - 26

छब्बीसवें अध्याय में वर्णित है कि इन्द्र कुपित होकर आंधी-पानी की घोर वर्षा करता है, कृष्ण अपनी उंगली पर गोवर्धन पर्वत धारणकर समस्त ब्रज-निवासियों की रक्षा करते हैं। अपने प्रयासों को विफल होता देखकर इन्द्र परब्रह्म के स्वरूप को पहचान लेता है तथा लज्जित हो मेघों को वापिस बुला लेता है।

अध्याय - 27

कृष्ण-लीलाओं से प्रभावित हो ब्रजवासी उन्हें अवतार रूप मान लेते हैं। माता यशोदा गर्ग पुरोहित द्वारा बतलायी गयी कृष्ण अवतार की बात सबको बता देती हैं।

अध्याय - 28

अपने कर्म से लज्जित इन्द्र ऋषियों सहित कृष्ण के पास एकान्त में क्षमा माँगता है। उनके अगम्य अगोचर रूप की स्तुति करता है व उन्हें कामधेनु भेंट करता है।

अध्याय - 29

द्वादशी को आसुरी वेला में एकादशी व्रती नन्द का यमुना में स्नान करना व वरुण दूतों का नन्द को वरुण लोक में पहुँचाना, गोपों द्वारा चीत्कार करने पर कृष्ण का वरुण लोक जाना और वहाँ पूजित होकर मणि वस्त्रादिक भेंट स्वीकारकर पिता सहित लौट आना, ब्रजवासियों द्वारा वैकुंठ के दर्शन की इच्छा करने पर कृष्ण द्वारा सुषुप्तावस्था में ही उन्हें वैकुंठ के दर्शन करवाना वर्णित है।

अध्याय - 30

शरद रात्रि में कृष्ण द्वारा वंशी-वादन करने से गोपियों का अधीर होकर उनके पास आना, कृष्ण का उन्हें समझाना, किन्तु गोपियों का कृष्ण

को समर्पण करना, गोपियों की इच्छानुसार कृष्ण का योगमाया द्वारा निर्मित चबूतरे पर केन्द्रस्थ गोपी [प्रिया] के साथ मध्य में तथा दो-दो गोपियों के बीच अपना एक-एक रूप प्रकटकर रासलीला करना, गोपियों द्वारा गर्व करने पर कृष्ण का निज प्रिया के साथ अदृश्य हो जाना वर्णित है ।

अध्याय - 31

इकतीसवें अध्याय में कृष्ण-वियोग से व्याकुल गोपियों का कृष्ण को ढूँढना, कृष्ण की प्रिया को भी रोता बिलखता पाना [उसके द्वारा गर्व किये जाने पर कृष्ण उसे भी छोड़ गये थे], अन्त में व्याकुल गोपियों द्वारा यमुना किनारे एकत्र हो हरिगुणगान वर्णित है ।

अध्याय - 32

बत्तीसवें अध्याय में गोपियों की विरह-व्यथा का वर्णन किया गया है । गोपियाँ कृष्ण कृष्ण पुकारते मूर्छित हो जाती हैं ।

अध्याय - 33

कृष्ण पुनः प्रकट होते हैं । उनके प्रकट होने पर गोपियाँ रोष प्रकट करती हैं, कृष्ण अपने स्वरूप को स्पष्ट करते हैं और अपने अंतर्हित होने का कारण बतलाते हैं ।

अध्याय - 34

गोपियों के विषाद को मिटाकर कृष्ण प्रत्येक गोपी के साथ महारास करते हैं व प्रत्येक गोपी को आनन्दित करते हैं । इसके पश्चात् जल-विहार करते हैं । राजा परीक्षित शंका करते हैं कि श्रीकृष्ण ने परस्त्रियों के साथ भोग क्यों किया, तो शुकदेव उत्तर देते हैं कि सूर्य, अग्नि की भाँति परम तेजस्वी

उन कार्य से दूषित नहीं होते । इसके अतिरिक्त गोपियाँ वेद की ऋचायें थीं उन पर दोष लगाना व्यर्थ है ।

अध्याय -35

कृष्ण के बारह वर्ष पूर्ण हो जाने के पश्चात् नन्दबाबा अपने पूर्व वचन का स्मरणकर ग्वालबाल सहित अम्बिका देवी की पूजा करते हैं, दान-पुण्यकर वहीं सो जाते हैं । रात्रि में सोते हुये नन्द को अजगर निगल जाने की चेष्टा करता है, नन्द चिल्लाते हैं, कृष्ण के चरण का स्पर्शकर अजगर सुन्दर स्वरूप प्राप्तकर लेता है व अजगर योनि में अपने जन्म का कारण बताता है । वह कहता है कि पूर्व जन्म में वह अपने रूप पर गर्वित होकर अंगिरा वंशीय ऋषियों की हँसी उड़ाता था, उनके शाप के कारण ही वह अजगर योनि में उत्पन्न हुआ । दूसरी कथा में श्याम व बलराम का रात्रि में व्रजबालाओं सहित विहार करते समय शंखचूड़ द्वारा बाधा पहुँचाने पर उसे मारना वर्णित है ।

अध्याय - 36

ग्वाल बालों सहित कृष्ण बलराम के वन जाने पर गोपियाँ कृष्ण की लीलाओं का स्मरणकर वंशी से सौतिया डाह रखती हैं, क्योंकि उसे दिनरात वंशी का सान्निध्य प्राप्त रहता है । इस प्रकार गोपियों की रात्रि कृष्ण के साथ विहार करने में व दिन हरिगुणगान में व्यतीत हो जाता है ।

अध्याय - 37

वृषभ रूपधारी वृषासुर के व्रज में उपद्रव मचाने पर कृष्ण द्वारा उसकी गर्दन मरोड़कर मार डालना, पापमुक्ति के लिये गोवर्धन पर्वत के पास कुण्ड खुदवाकर राधा-कृष्ण के नाम से उन्हें प्रतिस्थापितकर तीर्थों को वहीं बुलवाकर स्नान करना, आदि वर्णित है । दूसरी कथा में नारद द्वारा कृष्ण बलराम को देवकी वसुदेव की सातवीं-आठवीं सन्तान जानकर कंस का पुनःदेवकी व वसुदेव

को बंदी बनाना, राक्षसों की व्यूह रचाकर अक्रूर को कृष्ण बलराम को धनुष यज्ञ की पूजा के बहाने बुलाने के लिये ब्रज भेजना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 38</u>

अड़तीसवें अध्याय में कंस द्वारा प्रेषित केशी द्वारा अश्व रूप में आकर ब्रज में उपद्रव मचाने पर कृष्ण द्वारा उसका मार डालना, व्योमासुर का ग्वाल-वेश में कृष्ण की टोली में मिलकर खेलना, ग्वाल बालों को खेल-खेल में कंदरा में छिपाना, कृष्ण को अकेला पाकर उनको मारने दौड़ना, कृष्ण द्वारा उसे मार डालना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 39</u>

अक्रूर का ब्रज प्रस्थान मार्ग में सोच विचारकर स्वयं को कंस का सेवक जान कृष्ण द्वारा प्रतिकूल व्यवहार की आशंका, दूसरी ओर दासों पर कृष्ण की अनुरक्ति जान स्वयं को सान्त्वना देना, इसी उधेड़बुन में अक्रूर का ब्रज पहुँचना और वहाँ पर कृष्ण,बलराम,नन्द द्वारा उनका उचित सम्मान किया जाना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 40</u>

चालीसवें अध्याय में अक्रूर द्वारा कृष्ण बलराम को उनके माता पिता के बंदी बनाये जाने का वर्णन करना, धनुर्यज्ञ का निमन्त्रण देना, कृष्ण का नन्द आदि गोपों सहित मथुरा प्रस्थान मार्ग में यमुना जल में स्नान करते समय अक्रूर का कृष्ण के चतुर्भुजी रूप का दर्शन करना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 41</u>

इकतालीसवें अध्याय में अक्रूर द्वारा चतुर्भुज भगवान की अनेक प्रकार से स्तुति करना वर्णित है ।

अध्याय - 42

बयालीसवें अध्याय में कृष्ण आदि का मथुरा पहुँचना, नगरवासियों द्वारा कृष्ण दर्शनकर आनन्दित होना कंस के धोबी से वस्त्र छीनकर सभी को बाँट देना, वायक नामक दर्जी व सुदामा नामक माली की सेवा से प्रसन्न हो उनका उद्धार करना वर्णित है।

अध्याय - 43

तैंतालीसवें अध्याय में कृष्ण अपने प्रति कुब्जा की भक्ति देखकर उसके कुबड़ेपन को मिटा देते हैं, रंगभूमि पहुँच रक्षकों की सेना मार भगाते हैं। दूसरे दिन कंस चिन्तित हो चाणूर, मुष्टिक, शल आदि पहलवानों को भेजता है, यह सब वर्णित है।

अध्याय - 45

पैंतालीसवें अध्याय में वर्णित है कि कृष्ण चाणूर, शल व बलराम, मुष्टिक कूट को मार डालते हैं, अन्य योद्धाओं का वध व शेष का पलायन देखकर कंस नन्द को बंदी बनाने का आदेश देता है। यह सुनकर कृष्ण कंस के मचान पर चढ़कर उसके केश पकड़ उसे पृथ्वी पर पटक देते हैं। तीनों लोकों का बोझ अपने शरीर पर लेकर उसके ऊपर कूदते हैं, कंस मृत्यु को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् देवताओं द्वारा कृष्ण की स्तुति वर्णित है।

अध्याय - 46

छियालीसवें अध्याय में कृष्ण के अमित पराक्रम को देखकर वसुदेव देवकी का उन्हें पुत्र मानने में संकोच करना, कृष्ण का माया द्वारा ज्ञान हरने पर स्नेह प्रदर्शित करना, उग्रसेन को पुनः राजा बनाना, नन्दादि को समझा-बुझाकर व्रज भेजना, अल्पकाल में ही चौदह विद्यायें, चौदह कलायें सीखकर गुरु दक्षिणा में गुरु के मृत पुत्रों को यमपुरी से लाकर गुरु को सौंपना, वर्णित है।

अध्याय - 47

सैंतालीसवें अध्याय में कृष्ण द्वारा प्रिय वियोग में दुःखी नन्द,यशोदा, गोपिकाओं आदि को समझाने के लिये सखा उद्धव को भेजना, उद्धव का सबको शीघ्र ही कृष्ण आगमन का सन्देश देकर आश्वस्त करना वर्णित है ।

अध्याय - 48

अड़तालीसवें अध्याय में गोपियों का उद्धव को कृष्ण का सखा जानकर अपनी प्रेम-वेदना व्यक्त करना, कृष्ण को उलाहना देना, उद्धव द्वारा उन्हें योगमार्ग का उपदेश देने पर प्रत्युत्तर में गोपियों का तर्कों द्वारा उद्धव को निरुत्तर करना, उद्धव का दुःखार्त होकर मथुरा जाकर कृष्ण को ब्रज की दशा से परिचित कराना वर्णित है ।

अध्याय - 49

उनचासवें अध्याय में वर्णित है कि कृष्ण कुब्जा को दिये गये पूर्व वचनों का स्मरणकर कुब्जा की काम-पीड़ा मिटाते हैं । उसके साथ विहार करते हैं । अक्रूर को पाण्डवों का समाचार जानने के लिये हस्तिनापुर भेजते हैं ।

अध्याय - 50

पचासवें अध्याय में कृष्ण की आज्ञा से अक्रूर का रथ द्वारा हस्तिनापुर जाना, दुर्योधन की सभा में कटु वचन सुन विदुरजी के समीप जाकर कुन्ती आदि की दुःखद स्थिति जानना, कुन्ती द्वारा कृष्ण से रक्षा-याचना करने पर धृतराष्ट्र को पक्षपात से विरत होने के लिये समझाना, परिणाम न निकलने पर मथुरा जाकर पाण्डवों की दुःखद स्थिति कृष्ण बलराम को बताना वर्णित है । इसी के साथ कथा का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है ।

अध्याय - 51

इक्यावनवें अध्याय में वर्णित है कि कंस की मृत्यु के पश्चात् उसकी दोनों रानियाँ अपने पिता जरासंध के पास जाती हैं । जरासंध का सत्रह बार तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ आक्रमण करने पर भी पराजित होना, विश्वार्थ तप करने को उद्यत होना, नारद द्वारा प्रेरित होकर कालयवन राक्षस की सहायता से करोड़ों सेना लेकर आक्रमण करना, कृष्ण का अपने बान्धवों को समुद्र वाली करवाकर सुविधायुक्त द्वारिका नगरी बनाकर वहाँ पहुँचना आदि वर्णित है ।

अध्याय - 52

बावनवें अध्याय में कृष्ण का पीछा करते हुये कालयवन का गुफा में प्रवेशकर सोते हुये पुरूष को लात मारना, पुरूष का जागकर कालयवन पर दृष्टि डालना, उसका भस्म हो जाना आदि वर्णित है । बावनवें अध्याय में शुकदेव ने गुप्त व्यक्ति का परिचय दिया है । मुचुकुंद का देवताओं और दैत्यों के युद्ध में देवताओं की सहायताकर देवताओं से आश निद्रा तथा जगाने वाले को दृष्टि- पात से भस्म कर देने का वरदान प्राप्त करना तथा कृष्ण के दर्शनकर उसका कैवल्य को प्राप्त करना वर्णित है ।

अध्याय - 53

त्रेपनवें अध्याय में कृष्ण का मथुरा लौटना, यवन सेना का संहार, जरासंध का पुनःआक्रमण, कृष्ण बलराम का पलायन, प्रवर्षण पर्वत पर आरोहण, जरासंध का उस पर्वत को आग लगाकर दोनों को मरा समझना, कृष्ण बलराम का जलते हुये पर्वत से कूदकर द्वारका पहुँचना, रैवत नामक राजा द्वारा अपनी सुलोचनी, चन्द्रमुखी कन्या का विवाह बलराम से कर देना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 54</u>

चौवनवें अध्याय में विदर्भ नरेश की पुत्री रुक्मिणी का विवाह बैकुण्ठ-नाथ के साथ नारद द्वारा बतलाना, रुक्मिणी व कृष्ण में परस्पर प्रेम होना, रुक्मिणी के भाई रुक्म द्वारा उसका विवाह शिशुपाल से तय करना, रुक्मिणी का व्याकुल होकर ब्राह्मण द्वारा कृष्ण के पास सन्देश भेजना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 55</u>

पचपनवें अध्याय में रुक्मिणी विवाह की तैयारियाँ, शिशुपाल का बारात लेकर आना, कृष्ण बलराम का सेना सहित विवाह देखने कुण्डनपुर आना, भीष्मक द्वारा उनका उचित सम्मान, रुक्मिणी का भवानी पूजाकर कृष्ण को पति रूप में पाने की प्रार्थना करना, लौटते समय शिशुपाल आदि राजाओं के सामने ही कृष्ण का रुक्मिणी का अपहरण कर रथ में बिठाकर द्वारका प्रस्थान वर्णित है ।

<u>अध्याय - 56</u>

रुक्मिणी हरण होने पर राजाओं द्वारा कृष्ण का पीछा करना, युद्ध में पराजित होना, रुक्म का क्रोधित होकर कृष्ण पर अस्त्र चलाना, कृष्ण द्वारा उसका शस्त्र काटकर रुक्मिणी के आग्रह पर उसे जान से न मारकर मुण्ड मुण्ड बना देना, बलराम के प्रतिवाद करने पर रुक्म को छोड़ना, अपमानित होकर रुक्म का भोज कर नगर बसाकर रहना, कृष्ण का रुक्मिणी से द्वारका पहुँचकर विवाह करना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 57</u>

सत्तावनवें अध्याय में शंकर द्वारा भस्मीभूत काम का रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लेना, शम्बासुर द्वारा उसे समुद्र में फिंकवाना, मल्लाह का शम्बासुर के यहाँ पाचिका रूप में स्थित रति को प्रद्युम्न सौंप देना, रति द्वारा प्रद्युम्न को पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाना, प्रद्युम्न का शम्बासुर को मारकर रति सहित

अध्याय - 58

कृष्ण का सत्राजित को सूर्य देवता द्वारा प्राप्त स्यमंतक मणि उग्रसेन को देने की बात करना सत्राजित का लोभवश इनकार करना, उसके भाई प्रसेन का वन में मणि खो देना, कृष्ण पर चोरी का कलंक लगना, कृष्ण का वन जाकर जाम्बवन्त से युद्ध करना, जाम्बवन्त का पराजित हो उन्हें रामावतार जान पुत्री जाम्बवती का विवाह कृष्ण से करना, मणि दहेज में देना, लज्जित होकर सत्राजित द्वारा अपनी कन्या सत्यभामा का कृष्ण से विवाह कर मणि दहेज में देने पर कृष्ण का मणि वापस करना वर्णित है ।

अध्याय - 59

उनसठवें अध्याय में पूर्व अध्याय की कथा का उपसंहार वर्णित है । सत्राजित का अपनी कन्या शतधन्वा को देने का वचन भुलाकर कृष्ण को देना, कृष्ण के हस्तिनापुर जाने पर अक्रूर व कृतवर्मा द्वारा शतधन्वा को भड़काना, भड़काये जाने पर शतधन्वा द्वारा सत्राजित की हत्याकर मणि प्राप्त करना, सत्यभामा का पिता की मृत्यु का समाचार हस्तिनापुर जाकर कृष्ण को देना, कृष्ण द्वारा शतधन्वा का पीछा करना, शतधन्वा का मणि अक्रूर को सौंपना, कृष्ण द्वारा शतधन्वा का वध, कुछ समय उपरान्त अक्रूर और कृतवर्मा का द्वारका जाकर कृष्ण को मणि सौंपना व कृष्ण का मणि सत्यभामा को सौंप देना वर्णित है ।

अध्याय - 60

कृष्ण का पाण्डवों की कुशलता जानने हेतु हस्तिनापुर जाना, कुन्ती का कृष्ण को अत्यधिक आदर सम्मान देना, अपने पाँचों पुत्रों की रक्षा की प्रार्थना करना, कृष्ण का भीम, अर्जुन सहित आखेट हेतु जाना, वहाँ कालिन्दी से विवाह करना तत्पश्चात् सत्या, लक्ष्मणा, भद्रा तथा वृन्दा जैसी सुन्दरियों से विवाह करना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 61</u>

इकसठवें अध्याय में भौमासुर संहार का वर्णन है ।

<u>अध्याय - 62</u>

बासठवें अध्याय में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की प्रेम परीक्षा का वर्णन है । रुक्मिणी को कृष्ण के सान्निध्य से अभिमान उत्पन्न हो जाता है । कृष्ण रुक्मिणी की प्रेम परीक्षा लेने हेतु पूछते हैं कि तिलकधारी राजाओं को त्याग कर तुमने मेरा ही वरण क्यों किया ? मैत्री या विवाह सम्बन्ध तो बराबरी वालों में ही होते हैं । यह सुनकर रुक्मिणी व्यथित हो रोने लगी, तब श्रीकृष्ण ने उन्हें यह कह कर आश्वस्त किया कि वे अपने प्रति उनकी भक्ति व प्रेम की परीक्षा ले रहे थे ।

<u>अध्याय - 63</u>

तिरसठवें अध्याय में वर्णित है कि कृष्ण की सोलह हजार पत्नी आठ रानियों में प्रत्येक के दस-दस पुत्र व एक-एक कन्या होगी । रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह रुक्मवती से होगा । प्रद्युम्न व रुक्मवती से अनिरुद्ध उत्पन्न होगा । रुक्म कृष्ण से शत्रुता समाप्त करने हेतु अपनी पौत्री का विवाह अनिरुद्ध से करेगा । विवाह-अवसर पर बलराम से जुआ खेलते समय रुक्म पराजित होकर भी अपनी विजय बतलाता है इसपर बलराम क्रुद्ध हो जाते हैं व रुक्म का वध कर देते हैं ।

<u>अध्याय - 64</u>

चौंसठवें अध्याय में वर्णित है कि बलि पुत्र शिव द्वारा प्रदत्त हजार भुजाओं वाले बाणासुर की अतीव सुन्दरी पुत्री ऊषा पार्वती की कृपा से अनिरुद्ध को स्वप्न में देखकर मुग्ध हो जाती है । मोहित होकर वह अनिरुद्ध का अपहरण करवाकर अपने महल में रखकर उसका भोग करती है । यह जानकर

बाणासुर अनिरुद्ध को नागपाश में बांध देता है । इधर अनिरुद्ध वियोग से दुखी ऊषा को नारदजी रनिवास में प्रकट होकर अनिरुद्ध का ठिकाना बताते हैं ।

अध्याय - 65

पैंसठवे अध्याय में वर्णित है कि कृष्ण बलराम बारह अक्षौहिणी सेना लेकर बाणासुर के नगर को घेर लेते हैं, शिव अपने भक्त बाणासुर की ओर से कृष्ण से युद्ध करते हैं, अन्त में कृष्ण के जृम्भणास्त्र चलाने पर शिवजी मोहग्रस्त हो जाते हैं, तत्पश्चात् कृष्ण बाणासुर की 4 भुजायें छोड़कर शेष नौ सौ-छियान्बे भुजायें काट देते हैं, बाणासुर शिवजी की शरण में जाता है, शिवजी उसके कृष्ण से क्षमा-याचना भी करते हैं । अन्त में बाणासुर लज्जित होकर कृष्ण से क्षमा-याचना करता है व ऊषा अनिरुद्ध का विवाह सम्पन्न करवाता है ।

अध्याय - 66

छियासठवें अध्याय में वर्णन है कि राजा नृग द्वारा दान की गयी गाय को पुनः दूसरे ब्राम्हण को दान कर देना, ब्राम्हणों का परस्पर कलह करना, राजा को गिरगिट योनि में जन्म लेकर अंध कूप में गिरने का शाप देना, कृष्ण के स्पर्शमात्र से उसका उद्धार होना ।

अध्याय - 67

कृष्ण की आज्ञा लेकर बलराम गोकुल जाते हैं, यशोदा अपना मातृ-प्रेम प्रकट करती हैं । गोपियाँ कृष्ण के झूठे व चाटु वचनों का उलाहना देती हैं । बलराम ब्रज में दो मास रुककर गोपियों को रासलीला का सुख प्रदान करते हैं ।

अध्याय - 68

इस अध्याय में पौण्ड्रक-वध का वर्णन किया गया है ।

अध्याय - 69

उनहत्तरवें अध्याय में वर्णन है कि भौमासुर वध के उपरान्त उसका द्विविद नामक वानर मित्र द्वारका में उत्पात करता है, बलरामजी को रैवत पर्वत पर रमणियों की मण्डली में मदिरा पीता देखकर उन्हें चिढ़ाता है, उनका पान-पात्र लेकर भाग जाता है । बलरामजी कुपित होकर उसका वध कर डालते हैं ।

अध्याय - 70

सत्तरवें अध्याय में वर्णन है कि हस्तिनापुर में दुर्योधन सुता लक्ष्मणा के स्वयंवर के मध्य कृष्ण पुत्र साम्ब उसका अपहरण कर लेता है । कौरवों से पराजित साम्ब बन्धनग्रस्त हो जाता है । नारदजी द्वारा समाचार प्राप्तकर बलरामजी हस्तिनापुर जाकर कौरवों से साम्ब को छोड़ देने का आग्रह करते हैं । न मानने पर हल के अग्र भाग से हस्तिनापुर को गंगाजी की ओर घसीटते हैं, कौरव अन्त में बलराम की स्तुति करते हैं तथा अपरिमित दहेज देकर कन्या और वर को द्वारका भेज देते हैं ।

अध्याय - 71

इकहत्तरवें अध्याय में नारद मोह का वर्णन है । नारद कृष्ण की सोलह हजार रानियों के साथ गार्हस्थ लीला का कौतुक मन में लेकर द्वारका जाते हैं । वहाँ पृथक-पृथक महल में पृथक-पृथक पत्नी के साथ कृष्ण को कार्यरत देखते हैं व उनकी अमित लीलाओं का गायन करते लौट जाते हैं ।

अध्याय - 72

कृष्ण की सभा में जरासंध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं का दूत आकर उनकी मुक्ति हेतु कृष्ण से प्रार्थना करता है । नारद का युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दर्शन देने की प्रार्थना करना वर्णित है ।

<u>अध्याय - 73</u>

युधिष्ठिर कृष्ण से आज्ञा ले दिग्विजय हेतु चारों भाइयों को नियुक्त करते हैं । जरासंध के अतिरिक्त सभी राजा अधीनस्थ हो जाते हैं । भीम, अर्जुन, कृष्ण ब्राह्मण-वेश में जरासंध के पास जाकर अपना परिचय देते हुए उससे युद्ध की कामना करते हैं । जरासंध ब्राह्मण वेश की प्रतिष्ठा रखते हुये युद्ध की चुनौती स्वीकार करता है । वह कृष्ण व अर्जुन को अपने योग्य न समझते हुये भीम से युद्ध करना स्वीकार कर लेता है । सत्ताईस दिन तक भीषण युद्ध होता है । अट्ठाईसवें दिन भीम कृष्ण के संकेत पर जरासंध को चीर देते हैं ।

<u>अध्याय - 74</u>

जरासंध की कैद से 20 हजार आठ सौ राजाओं को मुक्त कर जरासंध तनय सहदेव को राजगद्दी पर बैठा दिया जाता है । मुक्त हुये राजाओं को आदर सहित राजसूय यज्ञ में आने का निमंत्रण दिया जाता है । यज्ञ के अंतर्गत दिग्विजय को एक दृष्टि से पूर्ण कर अर्जुन, भीम तथा जरासंध पुत्र सहदेव हस्तिनापुर लौटते हैं ।

<u>अध्याय - 75</u>

पचहत्तरवें अध्याय में वर्णित है कि राजसूय यज्ञ का श्रीगणेश होता है, चारों वर्णों का जन-समुदाय यज्ञ दर्शनार्थ एकत्र होता है । अग्रपूजा के प्रश्न पर शिशुपाल कृष्ण पर कटूक्तियों की बौछार करता है । अन्य राजाओं को जब श्रीकृष्ण शिशुपाल वध हेतु उद्यत देखते हैं तो उन्हें रोककर स्वयं चक्र द्वारा उसका मस्तक काट देते हैं । अन्त में राजसूय यज्ञ पूर्ण होता है ।

<u>अध्याय - 76</u>

युधिष्ठिर के वैभव से दुर्योधन का ईर्ष्या करना, एक दिन विशेष भवन में पाण्डवों का द्रोपदी सहित गंधर्व,अप्सराओं का नृत्य देखना,दुर्योधन का वहाँ जाकर कृष्ण की माया से भ्रमित होकर थल में जल व जल में थल का

आघात पाकर गिर पड़ना, द्रौपदी, भीम तथा अन्य नरेशों का हँसना, दुर्योधन का पाण्डवों से शत्रुता बाँधकर लौट जाना वर्णित है ।

अध्याय - 77

शाल्व का अपने मित्र शिशुपाल की मृत्यु उपरान्त तप द्वारा शिव को प्रसन्न करना, शिव द्वारा शक्ति प्राप्त करके द्वारका पुरी को उजाड़ना, कृष्ण बलराम की अनुपस्थिति में प्रद्युम्न शाम्ब का सेना सहित सत्ताईस दिन तक युद्ध करना, कृष्ण का स्वप्न द्वारा द्वारका का हाल जानकर द्वारका लौटना व शाल्व का वध करना वर्णित है ।

अध्याय - 78

दन्तवक्त्र व विदूरथ का कृष्ण के साथ युद्ध और संहार, तीर्थ यात्रा करते हुये बलराम का नैमिषारण्य पहुँचना, वहाँ सभी ऋषि-मुनियों द्वारा उनका सम्मान किया जाना, व्यासासन पर बैठे रोमहर्षण के तटस्थ रहने पर बलराम का क्रोधवश कुशा के अग्रभाग से उनका वध करना, ऋषियों के हाहाकार करने पर उनके पुत्र उग्रश्रवा को व्यासासन पर बैठाकर समस्त वेद, धर्म कंठस्थ करना, ब्रह्म हत्या निवारणार्थ तीर्थ यात्रा का उपक्रम वर्णित है ।

अध्याय - 79

उन्यासीवें अध्याय में बलराम का गोमती, गंगा आदि तीर्थ करते हुये प्रभास क्षेत्र पहुँचकर महाभारत युद्ध का समाचार सुनना, लड़ते हुये भीम-दुर्योधन को लड़ने से रोकना, उनके न मानने पर पुनः तीर्थ यात्रा करते हुये ब्रह्म हत्या के प्रभाव से मुक्त होकर द्वारका पहुँचना वर्णित है । ।

अध्याय - 80

पत्नी के आग्रह से दीन हीन सुदामा का श्रीकृष्ण के पास जाना, मित्र सुदामा के आगमन का समाचार सुन अश्रुपूर्ण नेत्रों से श्रीकृष्ण द्वारा उनका आदर किया जाना, उत्तम वस्त्र-आभूषण पहनाकर उनकी सेवा करना, कृष्ण की पटरानियों व वसुदेव द्वारा सुदामा के भाग्य की सराहना करना वर्णित है ।

अध्याय - 81

कृष्ण का सुदामा द्वारा लायी गयी पोटली से चावल निकाल कर खाना, उसके स्वाद की प्रशंसा करना, दो दिन पश्चात् अश्रुपूर्ण नेत्रों से सुदामा को विदा करना, घर में झोंपड़ी दिखायी न देने पर सुदामा का पछताना, दासियों द्वारा सुदामा को राजमहल में ले जाना, पत्नी द्वारा सब हाल बतलाये जाने पर कृष्ण की कृपा समझ हरि चरणों में अनुरक्त हो जाना वर्णित है ।

अध्याय - 82

कृष्ण बलराम का सुखपूर्वक द्वारका में राज्य करना, खग्रास सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र जाना, वहाँ यदुवंशियों, कुन्ती, नन्द, यशोदा, गोप, गोपिकाओं से मिलना, कृष्ण द्वारा सभी को आत्मज्ञान की शिक्षा देना वर्णित है ।

अध्याय - 83

कुरुक्षेत्र में कृष्ण की रानियों का द्रौपदी से भिन्न-भिन्न विवाह का वृत्तान्त बतलाना, रोहिणी द्वारा सोलह हजार एक सौ आठ रानियों की ओर से भौमासुर के वध और उनके उद्धार की कथा बतलाना, द्रौपदी का अपने विवाह का हाल सुनाना वर्णित है ।

अध्याय - 84

कृष्ण, बलराम के दर्शन हेतु वेदव्यास आदि ऋषियों का कुरुक्षेत्र आगमन, ऋषियों द्वारा कृष्ण की स्तुति करना, वसुदेव द्वारा अठारहों रानियों सहित यज्ञ करने पर कृष्ण की कृपा से देवताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अपना-अपना भाग लेना, ब्रजवासियों का कृष्ण विरह की बात सोचकर दुःखी होना, कृष्ण द्वारा उनका ज्ञान हरकर उन्हें विदा करना वर्णित है ।

अध्याय - 85

कृष्ण की परमलीलाओं को देखकर वसुदेव व देवकी उन्हें ईश्वर जान उनकी स्तुति करते हैं । कंस द्वारा मारे गये बालकों को दिखाने का हठ करते हैं । कृष्ण राजा बलि से छवों बालकों को लाकर माता को सौंप देते हैं । बालक माता-पिता तथा बलराम कृष्ण को दण्डवत्कर देवलोक को जाते हैं ।

अध्याय - 86

छियासीवें अध्याय में वर्णित है कि अर्जुन प्रभास तीर्थ जाते हैं वहाँ बलराम की बहिन सुभद्रा को देखकर मोहित हो जाते हैं । दोनों में परस्पर प्रेम उत्पन्न हो जाता है । देव-दर्शनार्थ जाती हुयी सुभद्रा का अर्जुन अपहरण कर लेते हैं, बलराम के क्रुद्ध होने पर कृष्ण उन्हें समझा-बुझाकर युद्ध से विरत कर देते हैं । कृष्ण सुभद्रा व अर्जुन का विवाह करवा देते हैं । कृष्ण मिथिला जाकर कृष्ण भक्त श्रुतदेव गृहस्थ तथा मिथिला नरेश बहुलाश्व दोनों को एक साथ दर्शन देकर उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं ।

अध्याय - 87

सतासीवें अध्याय में वेद स्तुति के साथ-साथ ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया गया है ।

अध्याय - 88

युधिष्ठिर द्वारा दरिद्र वेषधारी शंकर की उपासना से भोगों की प्राप्ति एवं लक्ष्मी-पति विष्णु की स्तुति से सर्वस्व की हानि का कारण पूछने पर कृष्ण ने कथा सुनायी कि एक बार शिव द्वारा वरदान प्राप्त भस्मासुर ने वर की परीक्षा हेतु शिव के सिर पर हाथ रख उन्हें भस्म करना चाहा तब शिव ने विष्णु की शरण में जाकर स्वयं की रक्षा की । भस्मासुर के वहाँ पहुँचने पर विष्णु ने उसे भ्रमितकर उसे शिव के सिर पर हाथ रखने के लिये विवश कर दिया, परिणामस्वरूप वह भस्म हो गया ।

अध्याय - 89

सहनशीलता की परीक्षार्थ ब्रम्हा-पुत्र भृगु का ब्रम्हलोक कैलाश पर्वत जाकर क्रमश: ब्रम्हा, शिव का अनादर करना, उनका क्रोधित हो भृगु को मारने दौड़ना, अन्त में भृगु का बैकुंठ जाकर शयनासीन भगवान विष्णु पर पाद प्रहार करना, विष्णु का उठकर उनके चरण-कमलों को सहलाना, फलत: मुनियों द्वारा भगवान विष्णु को ही सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित करना वर्णित है। इसके पश्चात् इस अध्याय में कृष्ण द्वारा अर्जुन के धनुर्धारी होने के गर्व को तोड़ने से सम्बन्धित कथा वर्णित है।

अध्याय - 90

रानियों सहित कृष्ण का लीला विहार करना व उनकी प्रेमपूर्ण चेष्टाओं का सुन्दर वर्णन है। कृष्ण सुखपूर्वक द्वारका में अपनी रानियों सहित निवास करते हैं। कृष्ण की ही परम्परा का वर्णनकर कवि ने कृष्ण को सब जीवों का आश्रयदाता एवं प्राणीमात्र का दुःखहरण करने वाला बतलाया है।

कथा की विवेचना

अधिकांश कृष्ण-भक्त कवियों का सर्वाधिक समादृत, स्वीकृत एवं परिचित ग्रन्थरत्न श्रीमद्भागवत ही है। इसका कारण यह है कि भक्ति विषयक सिद्धान्त का जितना मनोरम, व्यापक श्रीमद्भागवत में उपलब्ध होता है अन्यत्र नहीं। इसी परम्परा की श्रृंखला में एक और कड़ी जोड़कर ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका की रचना की। प्राचीनकाल में भक्त कवि कविता के लिये कविता नहीं करते थे वरन् अपनी धार्मिक भावनाओं की तुष्टि के लिये व अपने धार्मिक विचारों के प्रचार के लिये काव्य सृजन करते थे। इसी भक्ति भावना से प्रेरित होकर ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका की रचना की। श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध के आधार पर अपनी रुचि व शैली के अनुसार ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका काव्य का सृजन किया। उन्होंने स्थान-स्थान

पर कथा, चरित्र चित्रण व भावों में अन्तर लाकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है । कवि ने प्रत्येक अध्याय के अन्त में "इति श्रीमद्भागवत दशम् अमन हरि आय" लिखा है ।

ठाकुर रूपसिंह की कृष्ण चन्द्रिका की विशेषतायें निम्नलिखित हैं :-

[1] कथानक में घटनाओं का संयोजन व चयन कुशलतापूर्ण :-

कवि ने कथानक में घटनाओं का संयोजन व चयन कुशलतापूर्ण ढंग से किया है । उदाहरणार्थ महत्वपूर्ण प्रसंगों का वर्णन विस्तृत रूप से किया है । कम महत्वपूर्ण प्रसंगों का संक्षिप्त वर्णन किया है । कवि ने कृष्ण का असुरों से संघर्ष व कंस द्वारा कृष्ण के वध हेतु किये गये प्रयत्नों का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है । गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम प्रदर्शन, भक्ति-भावना, राधाकृष्ण प्रेम, कृष्ण का मथुरा गमन, सुदामा चरित्र, कृष्ण के मित्रों का चरित्र, कौरव-पाण्डव वर्णन को भी प्रमुखता दी है । दूसरी ओर कुछ गौण प्रसंगों जैसे कर्ण छेदन, नामकरण संस्कार आदि का संक्षिप्त वर्णन है । कथा सुव्यवस्थित तथा घटनायें क्रमबद्ध हैं । सम्पूर्ण कथा के केन्द्र श्रीकृष्ण हैं । कृष्ण के चारों ओर कथा का जाल बिछाया गया है । जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण जाते हैं वहाँ-वहाँ कवि भी जाता है । एक दो स्थानों पर कंस के दरबार में नारद की उपस्थिति भी चित्रित की गयी है । जहाँ श्रीकृष्ण अनुपस्थित होते हैं वहाँ नारद उनके विरुद्ध कुछ षड्यंत्र की रचना करते हैं । सम्पूर्ण कथा का केन्द्र एक होने के कारण कथा विशृंखलित नहीं हो सकती ।

कथायोजना की दृष्टि से ठाकुर रूपसिंह को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । पाठक को ऐसा जान पड़ता है कि कवि कृष्ण के दिन प्रति दिन के जीवन का वर्णन कर रहा है । इस प्रकार कृष्ण के जीवन के छ:वर्षों का चित्रण बड़ी सफलतापूर्वक कर देता है । ग्रन्थ के उत्तरार्ध में कवि कृष्ण के जीवन की

प्रत्येक घटना का सरस व स्वाभाविक वर्णन करता है ।

सूर ने कृष्ण-जीवन की घटनाओं को गीत रूप में बिखराकर उनका चित्रण किया था, परन्तु रूपसिंहजी ने भागवत पुराण की उन्हीं घटनाओं का हार पिरोकर ग्रन्थ निर्माण किया है । कवि ने सूर की भांति एक ही घटना की अनेक बार पुनरावृत्ति नहीं की है । उन्होंने कृष्ण के जन्म, शैशव, यौवन आदि घटनाओं का क्रमानुसार वर्णन किया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने कृष्ण की कुरता-टोपी वर्णन जैसी छोटी घटना से लेकर कंस वध जैसी महत्वपूर्ण घटना का बड़ी कुशलता से चित्रण किया है । तीसवें अध्याय में कार्तिक पूर्णिमा को गोपिकाओं व राधा के साथ रासलीला करते हुये कृष्ण के मनोहारी रूप की छटा देखिये :-

> कुसुमाकर चारु सिंगार बनायो ।
> मन मोहन मोहन रूप सुहायो ।।
> हत चन्द मनोभव सुन्दर ताई ।
> जग जीवन नैनन के सुख दाई ।।
> अवलोक अलौकिक रूप रसाला ।
> जन चारु चकोर चन्द्रिका वाला ।।
> छवि सागर नागर चाय चहूरे ।
> मुख कंज भ्रमे द्रुग भौर गहरे ।।
> अति अद्भुत सुन्दर सोभ विराजे ।
> जग ढूंढ़ फिरी उपमा सब लाजे ।।
> अभयाल प्रकास दिगंतन कीनो ।
> विधु पूर पियुख ज्यों जग दीनो ।।[1]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय 30, पृष्ठ-82.

प्रत्येक अध्याय में रूपसिंहजी पहले कृष्ण को साधारण बालक के रूप में चित्रित करते हैं तत्पश्चात् उनके अवतारी रूप से भी पाठक को अवगत करा देते हैं । उदाहरणार्थ आठवें अध्याय में उन्हें बालक के रूप में चित्रित किया है। पुन: ग्यारहवें अध्याय में उन्हें अवतारी रूप में चित्रित किया है । माता यशोदा कृष्ण के मुख में सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड का दर्शनकर आश्चर्य चकित हो जाती हैं । पहले श्रीकृष्ण के बाल रूप का वर्णन देखिये :-

अँगूठा मुख में ले निज सुख सों
परे अकेले श्याम ।।[1]

ग्यारहवें अध्याय में कवि ने कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं का चित्रण स्वाभाविक बालक रूप में किया है, देखिये :-

खेलन को द्वारा दुरु भाई । लौं लखा यदु देख बनाई ।।
बछरा पूछ धरे कर धाई । भागहिं गिरहिं धरन पर आई ।।
धाय उठाय माय उर लावे। गोद राख पय पान करावे ।।
भोजन को नन्दराय बुलावे । नहिं आवे जसुदा पठवावे ।।
भोजन करत करत भजजाई । भूमि ढोर मोदन बिखराई ।।
बहुर रोहणी जसुमत ल्यावे। नाचि गये भोजन करवावे ।।[2]

ग्यारहवें अध्याय में ही कृष्ण के अवतारी रूप को देखिये :-

ब्रम्हाण्ड देखे इने मुख माहीं । ठाढ़ी जसोधा हुवे भीत ताहीं ।।
मेरी बड़ी भूल कहा बखानी । त्रैलोक के नाथ को सुत मानो ।।[3]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-8, पृष्ठ-26.
2- „ „ अध्याय-11, पृष्ठ-36.
3- „ „ अध्याय-11, पृष्ठ-36.

बारहवें अध्याय में माता यशोदा शरारत करने पर श्रीकृष्ण को नितान्त बालक समझकर ऊखल से बाँध देती हैं। पुन:उनके चमत्कारी रूप का दर्शनकर भयभीत हो जाती हैं। यदि कृष्ण को कवि सदैव चमत्कारी रूप में चित्रित करता तो पाठक उतने आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाता। कृष्ण के अत्यधिक दैविक रूप का दिग्दर्शन कराकर भी कवि उन्हें साधारण मानव के रूप में चित्रित करने में सफल रहा है।

कथा में आश्चर्यजनक प्रसंग भी विद्यमान हैं। इन प्रसंगों से कथा गतिवान बनी है। आरम्भ में देवकी को विदा करते समय एक महत्वपूर्ण आकाशवाणी होती है जिसके कारण कंस देवकी वसुदेव को कारागार में बंद कर देता है।

होत भई मग में नभ बानी ।
भ्रम कृता तुम्हरे हित ठानी ।।
जाहि पठावत प्रेम घनेरो ।
ताकुत अष्टम बालक तेरो ।।1.

नारद मुनि भी कंस के दरबार में चक्कर लगाते रहते हैं व कथा को गति प्रदान करते हैं। नारद कंस को अनेक बार उत्तेजित करते हैं। वे यह भी बतला देते हैं कि तेरा शत्रु ब्रज में जन्म ले चुका है। कालियनाग को कृष्ण के पास भेजने का आदेश कंस ने नारदजी के भड़काने पर ही दिया था।

कृष्ण चन्द्रिका की कथा का प्रत्येक तन्तु भली भाँति जुड़ा है। कहीं भी कथा की शृंखला नहीं टूटती है। इस कथानक का वस्तु गठन श्रेष्ठ है। घटनायें शृंखलाबद्ध हैं। कहीं भी शिथिलता नहीं है। एक घटना की समाप्ति के पश्चात् पाठक आगे के कथानक के लिये उत्सुक हो उठता है। यही सफल कथानक के संगठन की विशेषता है। कवि ने ग्रन्थारम्भ गणेश वंदना से किया है :-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-3, पृष्ठ-12.

गावैं वेद कुमद पुरान सिद्ध साधु गाथ,
पावैं दास चावैं सकाल के सपुन को ।
विघन विनासन को वारो बाहु दंड मंडि मंडि ज्यों,
विघुन्ड वंद भी जन तुम को ।।
नाम लेत बानी दीन आपदा न पावै कान,
लेत अनाथ यों कुभाय निज सुख को ।
एक मुख चतुर्मुख, पंचमुख, षष्ठमुख ।
सहमुख कौन कौन करै गज मुख को ।।[1]

<u>सरस्वती वंदना</u> —

कवि ने वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की ग्रन्थारम्भ में गणेश वंदना के पश्चात् वंदना की है ।

बानी बीना पान धर, मो बानी कर वास ।
जिहिते हौं श्रीकृष्ण जस भाषा करौं प्रकास ।।[2]

<u>गुरु वंदना</u> —

श्री गुरु पद पंकज रज अंजन सुगन दोष भव रोग विभंजन ।
सुमरत सुखद नवीन मूरी, करत सकल दुख सुजन दूरी ।।[3]

गुरु वंदना के पश्चात् शंकर-पार्वती, ग्रह-नक्षत्रों, ऋषि-मुनियों एवं अन्य देवी-देवताओं की वंदना की है । रूपसिंहजी ने कथा को सर्ग या लीलाओं में विभाजित न करके अध्यायों में विभाजित किया है । मुख्य अध्याय हैं :-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ-1

2- ,, ,, पृष्ठ-1

3- ,, ,, पृष्ठ-1

कृष्ण-जन्मोत्सव, पूतना वध, शकटासुर वध, तृणावर्त वध, माखन चोरी, वृन्दावन-गमन, वत्सासुर वध, बकासुर वध, राधा कृष्ण संयोग, अघासुर वध, कालियमर्दन, चीर हरण लीला, गोवर्धन लीला, कंस वध, मथुरागमन, ब्रज विरह लीला, उद्धव का ब्रज आगमन, कृष्ण द्वारा सोलह हजार रानियाँ व आठ पटरानियाँ बनाना तथा कृष्ण के वंश का उल्लेख है ।

उपरोक्त घटनाओं को ९० अध्यायों में विभाजित किया गया है । अध्यायों के शीर्षकों से स्पष्ट हो जाता है कि कथा में श्रीकृष्ण के शौर्य व चमत्कारी कार्यों का वर्णन है । रूपसिंह ने भक्ति भावना से प्रेरित होकर ग्रन्थ की रचना की थी अतः इसमें भक्ति भावना की प्रधानता है ।

श्रीकृष्ण चन्द्रिका कथावस्तु विन्यास के दृष्टिकोण से उत्तम है ।

[2] <u>नवीन अध्याय की कथा की सूचना प्रथम दोहे में :-</u>

कवि के कथानक की एक विशेषता यह भी है कि जैसे ही वह नवीन अध्याय आरम्भ करता है उस अध्याय की सम्पूर्ण सूचना एक ही दोहे में दे देता है । देखिये उदाहरण द्वितीय अध्याय की सूचना --

या दूजे अध्याय में विस्मय कंस बखान
पील कुबलिया हय मुक्ता जरासिन्ध किय दान ।
सुन समाज मुन गुन कथा कवि नरेश कर जोर
कृपा सिन्धु वर्नन करहु हरि या ध्यात बहोर ।।[1]

अध्याय के आरम्भ का दोहा पढ़ने से उस अध्याय की सम्पूर्ण कथा ज्ञात हो जाती है । पाठक पूर्वानुमान लगा लेता है कि इस अध्याय में अमुक व्यक्ति से सम्बन्धित कथा है । जैसे - चौदहवें अध्याय के आरम्भ में जो दोहा लिखा है उसे पढ़ने से

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-2, पृष्ठ-8.

भी अपने पूर्व साहित्य से प्रभावित है । रामचरित मानस की रचना उन्होंने स्वान्तः सुखाय की थी पर इसके लिये वे नाना पुराण निगमागम की सहायता लेना नहीं भूले हैं ।

रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका में हम कवि की मौलिकताओं के दर्शन कर सकते हैं । ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में कई मौलिक प्रवृत्तियाँ हैं । कवि की सर्वप्रथम मौलिक विशिष्टता अपने ग्रन्थ में कृष्ण की प्रेमिका के रूप में राधा शब्द का उल्लेख न करना है । कृष्ण काव्य परम्परा के अन्तर्गत् सभी कवियों ने अपने ग्रन्थों में राधा को कृष्ण की प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है, परन्तु रूपसिंह ने कहीं भी राधा शब्द का प्रयोग नहीं किया है । उन्होंने एक या दो स्थानों पर प्रिया शब्द का उल्लेख किया है । सम्भवतः वही प्रिया अन्य कवियों की राधा रही हो । देखिये :-

गोपिन के मनकी गति जान लिये,
अनुमान कियो अवतारी
मोहि गयो सिगरी नर नारिन,
मोह मढ़ी मत ज्ञान बिसारी ।।
या चित छोड़ सुअन्तर ध्यान,
लखे चित आनहि आतमधारी ।
याहित बोध "प्रिया" कहे,
छिन अन्तरध्यान भये गिरधारी ।।[1]

प्रेमालाप व मिलन प्रसंग भी मौलिक उद्भावनाओं के परिचायक हैं । प्रेम के स्वाभाविक रूप और सहज ग्राम्य जीवन की झाँकी का सुन्दर प्रस्तुतीकरण है । परस्पर मिलन, युद्ध विवाद, कृष्ण विवाह तथा प्रेम विह्वलता को विविध हाव भावों के साथ तथा तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का मौलिक चित्रण किया है । इस प्रकार के चित्रण कवि के व्यापक अध्ययन, गम्भीर चिन्तन, एवं सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-30, पृष्ठ-84.

कृष्ण चन्द्रिका में चित्रित अनेकों प्रेम लीलायें ब्रह्म वैवर्त पुराण पर आधारित होने के उपरान्त भी नवीन भाव एवं शिल्प से समन्वित हैं। रूपसिंहजी ने अन्न प्राशन, वर्षगांठ, कर्ण छेदन आदि संस्कारों के वर्णन लौकिक रीति के आधार पर भागवत निरपेक्ष रहकर ही किया है। वसुदेव जब श्रीकृष्ण को नन्दबाबा के यहाँ छोड़ आते हैं तो नन्द कृष्ण जन्म का विशाल उत्सव मनाते हैं। देखिये :-

द्वार वन्दनवार बांधि सांतियाँ धरवाय।
केत तोरनहु पताका रहीं मन्दिर छाय।।
ल्याय भिन्न-भिन्न सेज सब परचारका द बनाय।
पाय भूषण वस्त्र दान्न प्रेम मे कुछ पाय ।।[1]

तत्कालीन समाज में बालक की छठी मनायी जाती थी। उसका स्वाभाविक चित्रण देखिये :-

गावत सोहरे बाज बजाई। मंगल मूल छटी तिथि आई।।
नन्द लखे कुल बन्धु बुलाये। दान दिये पुन पूज्य जिमायें।।
मित्र स्वभृत्य कुटुम्बिन जोरे। भोजन कीन विनोद न थोरे।।
भूषन वस्त्र दिये मन भाये। आशिष दे सब ग्रेहन आये।।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने स्थान-स्थान पर अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रस्तुतीकरण किया है। तृणावर्त, शकटासुर, कागासुर, वत्सासुर, अघासुर, बकासुर, यमलार्जुन मोक्ष आदि भागवतीय कथाओं का वर्णन भी कवि ने अपनी सहज मौलिकता के साथ किया है। इस वर्णन में अद्भुत किन्तु असाधारण मानवीयता ही अधिक है। दैवी या अलौकिक प्रतीत कम। उदाहरणार्थ भागवत में तृणावर्त का वर्णन देखिये। तत्पश्चात् रूपसिंहजी की कृष्ण चन्द्रिका का।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-7, पृष्ठ-23.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-7, पृष्ठ-23.

मन मुदम निरखे ढोटो देख्यो निजलोचन ।
व्रजबालाओ न्भमतल् लखाली बहुली ।।[1]

*   *   *   *

भुजन का भारी किंकिणि पहरी
भारो का कुछ दानी ।
उर आर ढोले पग न उठैले ढोले
अरि मद भानी ।।[2]

कृष्ण के लीलागान में रूपसिंहजी ने कृष्ण के सोने, जागने, रूठने, मनाने, खाने, पीने, गोचारण, सखाओं के साथ विविध क्रीड़ाओं का ही विशेषतः विशद् व रोचक वर्णन किया है । इन बाल क्रीड़ाओं में भी सामान्य बालक की बाल क्रीड़ाओं के ही चित्र अधिक हैं । ब्रह्मत्व के आतंक से कवि बार-बार बच निकला है । उदाहरणार्थ माटी खाने का प्रसंग देखिये :-

एक दिवस हरि माटी खाई ।
जसुमति कही सखा सब आई ।।
सुन आई कर लाठी धारी ।
पकरे जाय माय बनवारी ।।[3]

कवि ने ब्रह्मत्व बोध वाले प्रसंग को सखाओं के पारस्परिक स्नेह संवर्धन का रूप बनाकर अपनी सख्य भाव की आराधना को संतुष्ट किया है ।

कृष्ण का घुटनों चलना, पाँवों चलना, बाल छवि, दूध माखन चोरी आदि प्रसंगों में भी कवि ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का दिग्दर्शन किया है । गोदोहन व गोचारण में भी कवि का बहुत मन रमा है । बाल शरारतों का चित्रण नितान्त मौलिक है - देखिये उदाहरण :-

---

1- श्रीमद्भागवत्-नवनीत, दशम् स्कन्ध.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-9, पृष्ठ-28.
3- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-11, पृष्ठ-36.

सिद्ध पाक कर अर्द्ध जबै कुकव्यान लगायऊ ।
सत्वर जाय मुराल धार अर्पित मंड पायऊ ।।
कृत डोल देउ भोजन करत कवि कुल
निज कुल कुल निरख ।
यह पाक कुठारेउ लाल तुव सुन,
अनुभा विस्मत हरख ।।[1]

धनुक वध, कालिय मर्दन, ये सब प्रसंग कृष्ण चन्द्रिका में भागवत परक ही हैं, परन्तु कालिय दमन की पूर्व पीठिका में कवि ने कालीय दमन का भागवतीय कारण न लेकर नितान्त मौलिक कारण ढूंढा है । कृष्ण चन्द्रिका में कंस नारद के भड़काने पर नन्दबाबा से एक करोड़ कमल पुष्प मांगता है । श्रीकृष्णजी भी कालिय मर्दन कमल मांगने हेतु ही करते हैं । यह कल्पना भी नितान्त मौलिक व ठोस है ।

सुन प्रभु कवि अधिराज प्रत,
मथुरा कंस महीप ।
कमल पठावहु ताहि सुन,
गवनहु रमनक द्वीप ।।[2]

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण ग्वाल बालों की मूर्छा दूर करने हेतु कालियदह में कूदे थे, जबकि कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण निज माता पिता को दुखी देखकर अपने अनिष्ट की चिन्ता किये बिना कालीदह में कूद पड़े । काली-दमन के समय की दूसरी नवीनता यह है कि भागवत में कृष्ण के यमुना में कूदते ही दो बालक नन्द यशोदा को खबर देते हैं और वे रोते पड़ते ब्रजवासियों के साथ विलाप करते हैं, जबकि कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के कालियदह में कूदते

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-10, पृष्ठ-33.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-17, पृष्ठ-55.

ही नन्द यशोदा को खबर कर दी जाती है और वे यमुना तट पर आते हैं, व गोकुलवासियों के साथ विलाप करते हैं। तबतक कृष्ण कालीयनाग को अपने वश में कर ऊपर आ जाते हैं। इस प्रकार कवि ने स्थान-स्थान पर मौलिकता का समावेश किया है।

वृन्दावन प्रवेश का वर्णन अत्यन्त सजीव आकर्षक व मनोमुग्धकारी है। कवि ने कृष्ण के देवत्व के स्थान पर नरत्व को प्रधानता दी है।

मुरली का वर्णन भी बड़ा प्रभावशाली किया है। बाँस की बाँसुरी का स्वर हमारे मन को तृप्ति, उल्लास एवं हृदय को अनिर्वचनीय सुख प्रदान करने वाला है। मुरली प्रकरण में भी गोपियों की मुरली के प्रति उक्तियाँ नितान्त मौलिक हैं।

> बैठ हरिमुख गरब अब क्यों परम निडरक भई ।
> लखन सौं सतरात गुरुजन लाज त्याग दई ।।1.

मुरली वादन के इस व्यापक प्रभाव में उनकी कवित्व शक्ति और भक्ति भावना का मणि कांचन संयोग हुआ है। कृष्ण चन्द्रिका में गोपियों का मुरली के प्रति सौतिया डाह नितान्त मौलिक है।

> लाग लागन लौत सी कटु बोल बोलन लगी ।
> पान अधरामृत को कर आप आनन्द पगी ।।2.

चीरहरण लीला में भी कवि की मौलिकता के दर्शन होते हैं। भागवत में इस लीला के अन्तर्गत् वर्षा और शरद् ऋतुओं का सरस वर्णन करते हुये प्रकृति नटी के सुरम्य चित्र प्रस्तुत किये हैं, जबकि रूपसिंहजी ने इस लीला का उद्देश्य प्रेम का मनोवैज्ञानिक विकास रखा है। श्रीमद्भागवत में नग्न स्नान के औचित्य के साथ संयम व मर्यादा पर दृष्टिपात हुआ है, परन्तु कवि इस झमेले में नहीं

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-22, पृष्ठ-64.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-20, पृष्ठ 63.

पड़ा है । उसने स्वस्थ व लौकिक दृष्टिकोण अपनाया है । भागवत में कृष्ण गोपियों को औचित्य की शिक्षा देते हैं, जबकि रूपसिंहजी के कृष्ण गोपिकाओं को वस्त्र प्रदान करने में बहुत सताते हैं । देखिये —

गोपिन के वस बैन सुने हरि ।
भाष न देहु कहे प्रिय अम्बर ।।
नग्न सबै मिलि मो ढिंग आवहु ।
तौ अपने पट तुम्ह पावहु ।।[1]

कृष्ण चन्द्रिका की गोवर्द्धन लीला में भी कवि ने मौलिक कल्पनायें की हैं । श्रीमद्भागवत में गोवर्द्धन लीला का वातावरण दार्शनिक व धार्मिक है । श्रीमद्-भागवत में कर्म का विशद् विवेचन हुआ है । देखिये उदाहरण —

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ।।[2]

कृष्ण चन्द्रिका में रूपसिंहजी ने एक पृथक कारण दिया है । रूपसिंहजी के अनुसार श्रीकृष्ण को स्वप्न में एक जटाधारी पुरुष गोवर्द्धन पूजन की प्रेरणा देते हैं यह सर्वथा मौलिक व नवीन विचार है । श्रीमद्भागवत व कृष्ण चन्द्रिका के रास वर्णन में भी पर्याप्त अन्तर है । रासपंचाध्यायी भागवत का एक महत्वपूर्ण प्रसंग है और इसे रसिकों का श्रृंगार मान अनेक कवियों ने इसके आधार पर विभिन्न ग्रन्थों की रचना की है । भागवत में वर्णित है कि श्रीकृष्ण एक अनाम गोपिका का गर्व दूर करने हेतु अन्तर्ध्यान हो जाते हैं, जबकि ठाकुर रूपसिंह ने गोपी को छिपा कर एक नवीन कल्पना की है ।

भागवत के कृष्ण अन्तर्हित होने के बाद लौट कर गोपिकाओं के समक्ष दार्शनिकतापूर्ण प्रवचन देते हैं, किन्तु रूपसिंहजी के कृष्ण लौकिक पुरुष की भांति रास आरम्भ करते हैं । रूपसिंहजी ने रासक्रीड़ा के अन्तर्गत जलक्रीड़ा दूसरे दिन

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-22, पृष्ठ-66.
2- श्रीमद्भागवत - श्लोक दशम् स्कन्ध.

करवाकर नवीनता का परिचय दिया है । कृष्ण चन्द्रिका में रास के अन्त में वामन पुराण का उल्लेख है । रूपसिंहजी ने ब्रह्मा और भृगु ऋषि के संवाद में बतलाया है कि गोपिकायें वास्तव में वेद की ऋचायें थीं । सगुण भक्ति का रसपान करने श्रीकृष्ण के साथ गोपी रूप में अवतरित हुयी थीं ।

गोपिन की उत्पत्ति नर राई ।
पुरान बरन सब सुनहिं सुनाई ।।
रासेश्वरी जान का कारन ।
जन्मी ब्रज हरि कौ बिहारन ।।
वेद रिचा देवीगन गोपिन ।
प्रकटीं ब्रज हरि कर्म सेवन ।।[1]

अक्रूर के ब्रजागमन के प्रसंग में भी कवि ने सर्वथा नवीन कल्पना की है । यहाँ नारदजी स्वयं कंस को परामर्श देते हैं कि कृष्ण बलराम को मथुरा बुलवाया जाय । इसी प्रसंग में कंस के दुःस्वप्न का भी कवि ने वर्णन किया है ।

गोपिकाओं की उद्विग्नता, श्रीकृष्ण के प्रति यशोदा वचन, यशोदा - गोपिकाओं का विलाप आदि प्रसंगों में कवि ने अद्भुत मौलिकता दर्शायी है । मातृ हृदय की व्याकुलता, प्रेमी हृदय की तत्परता, जनक हृदय की शंकाकुलता के मौलिक चित्र प्रस्तुत किये हैं जो हृदय को विदीर्ण करने वाले हैं ।

कंस वध की पूर्व पीठिका के रूप में वर्णित भागवत की समस्त कथाओं को न लेकर केवल कुछ कथाओं को संक्षिप्त रूप में लिया है । कुब्जा प्रसंग भी संक्षिप्त है । कवि ने उद्धव के ब्रजागमन के समय की भी श्रीमद्भागवत से मौलिक कल्पना की है । भागवत में उद्धव की ब्रजयात्रा, नन्द यशोदा और गोपियों को श्रीकृष्ण का संदेश देकर उन्हें परितोष देना है, जबकि रूपसिंह का उद्देश्य उद्धव द्वारा ज्ञान की गरिमा व पाण्डित्य प्रदर्शन है और गोपियों की प्रेमभक्ति से पराजित

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-34, पृष्ठ-91.

को प्रेम भक्ति में दीक्षित होना है । इसके अतिरिक्त कृष्ण नन्द यशोदा तथा गोपियों को पत्र लिखते हैं,यह कवि की मौलिक कल्पना है ।

कवि ने श्रीकृष्ण के वंश की कथा में एक और मौलिक सर्जना की है । शंकर द्वारा भस्मीभूत "काम" प्रद्युम्न के रूप में रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लेता है । प्रसूति-गृह से ही शम्बासुर द्वारा उसका अपहरण कर लिये जाने पर रुक्मिणी आदि पटरानियाँ सभी दासियों व अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों से प्रद्युम्न का पता पूछती हैं तब पाठक नामक दासी कहती है कि हमने कुमार को नहीं छिपाया है और न ही किसी को छुपाते देखा है । सभी लोगों के आश्चर्य प्रकट करने पर नारदजी प्रकट होकर बतलाते हैं कि प्रद्युम्न रूप कामदेव शीघ्र ही दैत्य का वध कर आप सबसे मिलेंगे । देखिये उदाहरण —

देखत सुमन स्वहि धार ।
जात भयो पुर द्वारक द्वारा ।।
मायहि के गहा सुत अगार ।
लै सुत भाग्यो कृष्ण कुमार ।।
डार दयो शठ सागर माहि ।
मीन लयो सगरी सुत ताहिं ।।
मत्स्य गिलो तिहि मीनहि जाय ।
अद्भुत बात कही किम जाय ।।[1]

: : : :

निज पाठक बोल उठी सुन बानी ।
हम कीन कुमार नहीं महरानी ।।
हम औरहि लेत नहीं सुत देखी ।
सुत भी हरि राउर शोर ओलखे ।।
तबनी सुमती पुर की सुर आई ।
कहि विस्मय बात सबै विसराई ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-37, पृष्ठ-156·

तेहि औसर में मुनि नारद आये ।
रनिवास सबै नर नारि बुलाये ।।
यहि बालहि काल न खाय सकै जू ।
जगदु कन ब्योम समोद बकै जू ।।
कछु बोल गये सबनी निज धाई ।
अरि मार तुमैं मिल है पुन आई ।।[1]

उपरोक्त घटना न तो सूरसागर में वर्णित है न श्रीमद्भागवत में । रूपसिंहजी ने प्रद्युम्न के सहसा गायब हो जाने पर माता रुक्मिणी व अन्य रानियों को स्वाभाविक रूप से चिन्तित बताया है । यह घटना रूपसिंहजी की मौलिक प्रतिभा का दर्शन कराती है । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्रीकृष्ण चन्द्रिका श्रीमद्भागवत का रूपान्तर मात्र नहीं है अपितु कवि की अपनी भावना है ।

[3]- <u>कथा रोचक है</u> —

कथा में सरसता का अभाव होते हुये भी कथा रोचक है । प्रस्तावना के रूप में मंगलाचरण है । गणेश, सरस्वती, शिव,गुरु, गोसाईं, ऋषियों और ग्रहों की वंदना प्रारम्भिक चार छन्दों में की गयी है । तत्पश्चात् रूपसिंहजी की मौलिक उद्भावनाओं के साथ कथा का आरम्भ होता है । कवि ने पृथ्वी को गौ, वृषभ को धर्म और उसके पीछे भागते हुये श्याम तन मुकुटधारी पुरुष को कलियुग का प्रतीक बनाकर कथा का आरम्भ किया है ।

पंथ माहि देखी यह राई, भाजत जात वृषभ अरु गाई ।
तिन पाछे मुकुट कर लीने, धावत धरे क्रोध नर कीने ।।[2]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-37, पृष्ठ-136.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-1, पृष्ठ-3.

[6]- कथानक में अनेक बार कवि को अवसर का ध्यान न रहना :

कवि को कई बार अवसर का ध्यान नहीं रहता जिस समय उद्धव यशोदा नन्द के पास पहुँचते हैं उस समय नन्द यशोदा द्वारा कृष्ण का बारम्बार स्मरण करने पर भी उद्धव कृष्ण की कुशलता का समाचार न देकर उनके सम्मुख कृष्ण के ईश्वर तत्त्व का उपदेश देने लगते हैं ।

तुम कृष्ण हिं बालक पुत्र न जानो ।
सब के पितु हैं परमेश्वर मानो ।।
उर की सब जानत अन्तर्यामी ।
मन के जन दर्शन देहहि स्वामी ।।[1]

[7]- स्थान-स्थान पर कृष्ण स्तुतियों के कारण कहीं-कहीं कथानक में शिथिलता :

कवि ने कृष्ण चन्द्रिका का सृजन भक्ति भावना से प्रेरित होकर किया है अतः अनेक स्थानों पर लम्बी-लम्बी कृष्ण स्तुतियों के कारण कथा प्रवाह में शिथिलता व गतिरोध उत्पन्न हुआ है । ब्रह्मा, कालीनाग, वरुण देवता, अक्रूर, रुक्मिणी आदि पात्रों ने कृष्ण की विस्तृत स्तुतियाँ की हैं । उदाहरणार्थ जब रासलीला में कृष्ण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं तो गोपिकायें उनकी अनेक प्रकार से स्तुति करती हैं । देखिये —

जन्म लयौ जब ते तुमने तब ते ब्रज में सुख सुजन छायी ।
वर्ण सुबेन विचार हिये फिर होय रमा वरवास बनायी ।
दुःख अनेक को तुमने जन रक्षक हो यश वेदन गायी ।
लीजिये सु सुख कृपाकर जाय न हो विरहा तन तायी ।।
वक्र कटाक्ष न तीक्षण बानन वे सब तन प्राण निवारे ।
बोलन चित्त मरोरन ग्रीव चितोवन मोहन मंद सम्हारे ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका – ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-47.

कै कबौं हरे पट आर्कव होय करौ मुस्कान हमारे ।
द्वेष समेत कुटुम्ब छुटो अब प्रेम बढ़ौ मन नाथ तुम्हारे ।।
केवल नन्द कुमार नहीं तुमहौ जग जीवन पालन हारे ।
भार अपार भयो भुव पै तब देव पयोनिधि तीर पुकारे ।।
हौं व्रज में अवतारहि लै अब हौं जब ये तुम बैन उचारे ।
रसिक दासन कौं प्रन के हमरे हित होय कठोर सिधारे ।।[1]

इसी प्रकार स्थान-स्थान पर विस्तृत स्तुतियों के कारण कथा प्रवाह टूट सा जाता है और पाठक को ऊब सी प्रतीत होने लगती है । कहीं-कहीं तो संपूर्ण अध्याय में केवल श्रीकृष्ण की स्तुतियाँ ही की गयी हैं ।

(6)- कथानक में भक्ति भावना के आधिक्य के कारण पुनरावृत्ति :

कवि ने अतीव भक्ति भावना के कारण पुनरावृत्ति को भी स्थान दिया है । कृष्ण द्वारा वध किये गये राक्षसों के नामों की अनेक बार गणना की गयी है । एक दो स्थानों पर ऋषियों के नामों की भी परिगणना की गयी है ।

पुलहि पुलस्त्य अगस्त भृगु
कश्यप गौतम व्यास
विश्वामित्र वशिष्ठ मुनि
भारद्वाज दुर्वास ।।[2]

कृष्ण जीवन के विभिन्न प्रसंगों को जोड़ने के लिये भी कवि ने निम्न आशय की पंक्तियों की बारम्बार आवृत्ति की है । इस आवृत्ति से पाठक का मन ऊब जाता है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 32, पृष्ठ-87.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-

"कहि शुकदेव नरेश सुन यह कुब्जान मुरार "।[1]

"कहि शुकदेव नरेश सुन हरि गत काज निदान"।[2]

"कहि शुकदेव नरेश सुन अकथ चरित भगवान"।[3]

(9)- प्रासंगिक कथाओं की बहुलता :

श्रीकृष्ण चन्द्रिका के कथानक की एक और महान विशेषता यह है कि इसमें प्रासंगिक कथाओं की बहुलता है। प्रासंगिक कथाओं का बाहुल्य होते हुये भी सम्पूर्ण कथानक एक ही श्रृंखला में आबद्ध है। प्रासंगिक कथाओं के बाहुल्य के कारण ग्रन्थ का कलेवर अति विशाल हो गया है। कवि अपने कथानक को गतिशीलता प्रदान करने हेतु या किसी विषय को स्पष्ट करने हेतु स्थान-स्थान पर प्रासंगिक कथाओं को वर्णित करता है। प्रासंगिक कथाओं की योजना पुराण शैली के आधार पर की गयी है। नृप अनेक बार शंका उपस्थित करता है तथा शुकदेवजी उस शंका के समाधान हेतु प्रासंगिक घटना का उल्लेख करते हैं। जिस समय कृष्ण यमलार्जुन को शाप मुक्त करते हैं उसी समय राजा परीक्षित शंका उपस्थित करते हैं। उत्तर में शुकदेवजी प्रासंगिक घटना का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार राजा गोपियों के साथ रास विहार करने पर शंका उपस्थित करता है कि कृष्ण ने परायी स्त्रियों के साथ रास क्रीड़ा क्यों की तो शुकदेवजी ने प्रासंगिक कथा सुना दी। इस प्रकार की प्रासंगिक कथायें कवि ने पाठकों की विभिन्न शंकाओं के समाधान हेतु प्रस्तुत की हैं। वास्तव में आज के युग में यह शैली रुचिकर नहीं है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण चन्द्रिका की अपनी अनूठी, अनुपम विशेषतायें हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण श्रीकृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ किसी भी महाकाव्य से कम नहीं है।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय -30, पृष्ठ-80

2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 33, पृष्ठ-88

3- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 40, पृष्ठ-101

ग्रन्थ का बृहदाकार

ठाकुर रूपसिंह कृत श्रीकृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ अत्यन्त विस्तृत है। इसका कारण यह है कि कवि ने कृष्ण के जीवन चरित का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। कृष्ण इतिहास प्रसिद्ध पौराणिक पुरुष हैं उनकी जीवन-गाथा का प्रणयन करना सरल नहीं है। कृष्ण ने अधर्म के विनाश एवं धर्म की रक्षार्थ स्वयं एकाकी रूप में और धर्मराज पाण्डवों के साथ रह कर कूटनीति राजनीति के नाम पर साम, दाम, दण्ड, भेद सभी का सहारा लेकर कार्य सम्पादित किया और उन्होंने एक युग का प्रवर्तन किया जिसके कारण वे युग पुरुष कहलाये और इस युग प्रवर्तन में जो उन्होंने विभिन्न कार्य किये वे अनेकों आख्यानों के साथ प्रस्फुटित हुये और वे कवियों की कविता के चरित नायक हुये। कृष्ण चन्द्रिका में कवि ने कृष्ण-जीवन के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया है जिसके कारण ग्रन्थ बृहद् आकार का हो गया है।

कृष्ण मथुरा के कारागार से गोकुल पहुँचकर नन्द बाबा व यशोदा के वात्सल्य में धीरे-धीरे बड़े होते हैं पर वे जानते हैं कि उन्हें अपने दुष्ट प्रवृत्ति मामा कंस का वध करना है जिससे समस्त प्रजा त्रस्त है। उनके माता-पिता कारागार में बंदी हैं अतः उन्होंने स्वयं एकाकी रूप में सर्वप्रथम अपने बाल्यकाल में ही कंस द्वारा भेजी गयी पूतना एवं तृणावर्त, वत्सासुर, अरिष्टासुर, कुवलयापीड, केशी, चाणूर एवं शाल आदि अनेक असुरों का संहार करके अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय देकर अन्त में कंस तक का वध किया। इतना ही नहीं उन्होंने रात्रि में गोपिकाओं के साथ रास लीला रचकर तथा दिन में अपने गोकुलवासियों को जो उनके साथ रहा करते थे, कंस जैसे आततायी से मुक्ति पाने के लिये संघर्ष करने के लिये सतत् अभ्यास कराते रहे हैं इसीलिये वे लीलावतार भी कहे गये हैं।

बाणासुर जैसा सहस्त्र भुजाधारी दम्भी शिव-भक्त जो अपने मद में स्वयं अपने आराध्य देव शिव का अपमान करने लगा था एवं उनके पुत्र अनिरुद्ध को बाणासुर की पुत्री ऊषा से प्रेम सम्बन्ध होने के कारण बंदी बना लिया था, भी उनसे न बच सका ।

मगध नरेश जरासन्ध का भी कम आतंक न था । युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ बिना जरासन्ध-वध के सम्भव न था अत: कृष्ण ने जरासंध का वध करके युधिष्ठिर के लिये मार्ग प्रशस्त किया । चेदि नरेश शिशुपाल भी कृष्ण के कोपभाजन से न बच सका । इतना ही नहीं कृष्ण ने उसके बंदी-गृह में कैद सोलह हजार स्त्रियों को जो विभिन्न देशों एवं विभिन्न वर्गों की थीं, बंदी-गृह से मुक्त किया और जब उन अबलाओं ने कृष्ण से निवेदन किया कि अब वे इस अवस्था में कहाँ जायें ? कौन उनको अपनायेगा ? कृष्ण ने उत्तर दिया - कोई नहीं अपनाये तो मैं तुम सबको अपनाऊँगा और शिशुपाल की भाँति दासियों के रूप में नहीं वरन् उन्हें रानियों की भाँति रखा जायेगा । कृष्ण ने इस प्रकार उन सबका उद्धार किया । इस प्रकार तत्कालीन समाज में वे एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रान्ति करते हैं ।

कृष्ण का व्यक्तित्व बहुआयामी था अत: उनके व्यक्तित्व को उभारने के कारण ही ग्रन्थ बहुत विस्तृत हो गया है । ग्रन्थ के बृहत् आकार के अनेक कारण हैं । ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के दिन प्रति-दिन की घटनाओं का संयोजन वृहत् रूप से किया है । अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसंगों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिससे ग्रन्थ विस्तृत हो गया है । ग्रन्थ के बृहत् आकार के कतिपय कारण हैं जो निम्नलिखित हैं :-

(1)- कृष्ण व असुरों के संघर्ष का विस्तृत चित्रण :-

कवि का उद्देश्य कृष्ण को एक धीर वीर पुरुष के रूप में चित्रित करना रहा है अत: कृष्ण का कंस द्वारा भेजे गये विभिन्न असुरों से संघर्ष विस्तृत रूप से दिखाया गया है । इसके अतिरिक्त कृष्ण चन्द्रिका का कथानक श्रीमद्भागवत

के दशम् स्कन्ध पर आधारित है अतः कवि कृष्ण जीवन के इन संघर्षों को अनदेखा नहीं कर सकता था । अतः उसने इनको विस्तृत रूप से चित्रित किया है जिससे ग्रन्थ का आकार बढ़ गया है । कवि का मन कृष्ण की वीरता का गायन करने में भी अधिक रमा है । कृष्ण बाल्यावस्था में ही पूतना, तृणावर्त, वत्सासुर, केशी, बकासुर एवं शकटादि राक्षसों का संहार करते हैं । पूतना-वध का एक दृश्य देखिये :-

कान्ह जसुमत गोद ते लेलीन कण्ठ लगाय ।
कंचुकी निज खेव अंचल दीन मुख में नाय ।।
दाब दन्तन पयद कौ नौ गटकहु पय पान ।
होय व्याकुल भाव अंचल मुंच - मुंच मसान ।।

* * * * *

कीन चित्त स्तूल पलक मे पय प्रान पान मुरार ।
भूम पात चिकार कै कर दूर दृष्टि उगार ।।
द्रुम लागे गिरत गिर त्यौं गिरी दानव नार ।
कोस है मयितोच अर कृष्ण चन्द्र विहार ।।[1]

इसी प्रकार कंस द्वारा प्रेषित कागासुर, तृणावर्त आदि का भी कृष्ण वध कर देते हैं । बकासुर, अघासुर, वत्सासुर के वध के पश्चात् कालियनाग दमन करते हैं । कालियनाग से कृष्ण के संघर्ष का एक चित्र देखिये :-

उछल उताल व्याल भाजन गुपाल गौन,
मंडाकल भार कौ धार बढ़ियत है ।
अरध उठाइबे को चाहै सीस जौन नाग,
लागे कल तोन फन पिठौनी बढ़ियत है ।[2]

1- श्री कृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय -8, पृष्ठ-25

2- श्री कृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-17, पृष्ठ-54

कंस-वध के समय कृष्ण की वीरता का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन है। पहले ही समस्त शब्द चित्र-सा उपस्थित कर देते हैं।

सुने मुरारि बैन रोम रोम रोष भोय गो समोय
दुष्ट दुष्ट गो उमन्ध कृष्ण केहरी।
गय समीप मंच कंस देख काल काल से
यों कहो न भाज बांध लाज दाल देहरी

* * * * *

निहार बार रोष कृष्ण केश कंस के धरे गिराय
भूम कूद कंस धार भूर भार है
भयो अजान चूर चूर प्राण के पयान गौनहार
दैत्य देव लोग कृष्ण जै उचार हैं।[1]

इसी प्रकार शिशुपाल-वध का एक चित्र देखिये :-

कर कोप लखै शिशुपालहि घेरो।
हरि निंदहि काल कराल हेरो॥
मुखते अब दुर्मुख बैन निकारो।
सुखदे धरते सिर सत्वर न्यारो॥

* * * *

अभिमान बढ़े वर पूरब भागो।
अब भो कुल केशव क्रोध त्यागो॥
यरते बहु आगर दुर्मति भाषी।
कर चक्र धरो यदुनंदन भाषी॥
शिशुपाल सिरै हुत चक्र प्रहारो।
धरते कर भिन्न धरा पर डारो॥
सब राजुन भूतल कंटक टारो।
सुर मानस मानव देव उचारो॥[2]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-45, पृष्ठ-113
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-79, पृष्ठ-232

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ में विभिन्न असुरों व शत्रुओं से कृष्ण का संघर्ष दिखाया है जिससे ग्रन्थ विस्तृत हो गया है ।

गोपियों का कृष्ण प्रेम :

कवि ने अध्याय नम्बर 22, 23, 30, 31, 32, 33 व 34 में कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम का वर्णन किया है । कवि ने संयोग श्रृंगार व विप्रलंभ श्रृंगार दोनों ही का वर्णन किया है । कवि ने यद्यपि विरह की समस्त अन्तर्दशाओं का दिग्दर्शन नहीं किया है, परन्तु विरह वर्णन किया है । कृष्ण के प्रति गोपियों के अगाध प्रेम का एक चित्र देखिये :-

जब हरे कृष्ण गोपिन दुकूल ।
तब दीन लिये वर जमुन कूल ।।
हम कातिक मे तुम्हरे प्रसंग ।
करवे सुख दायक रहस रंग ।।
तबही गोपी तन मन अधीर ।
दिन काटहि ज्यों त्यों मदन पीर ।
अब गोर गनावहि जोर हाथ ।
हम आई सुखद ऋतु शरद् रात ।।[1]

महारास में जब श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं तब गोपिकाओं की विरह-व्यथा देखिये :-

पूछ एक एक सी प्रत्येक धाय धाय-धाय ।
गौन कौन काम श्याम प्रान प्रान राख राय ।।
हृजिय अनै को लहे छिपे भनैं न पास,
लेखिये समन्न लोच काम अग्नि को प्रकास ।
पीय पीय टेर टेर हेर हेर ठौर ठौर ।
कान्हरे लहे न कान्ह थाक सर्व दौर दौर ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय -30, पृ०-8।

सकौ दियौ तुमै नरेश को खिराज बान ।
कौन दोष त्याग दीन नाक दीन दास्किान ।।[1]

गोपिकाओं के कृष्ण के प्रति प्रेम का वर्णन कवि ने सूर के समान व्यापक एवं विस्तृत नहीं किया है, क्योंकि कवि का अभीष्ट श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य दिखाना है । फिर भी कृष्ण के प्रेममय दिव्य रूप की झाँकी हमें मिल जाती है । इन वर्णनों से भी ग्रन्थ का स्वरूप विस्तृत हुआ है ।

भक्ति-भावना एवं कृष्ण स्तुतियाँ :-

कवि का हृदय श्रीकृष्ण की भक्ति से परिपूर्ण है । भक्ति भावना के वशीभूत होकर ही उसने इस ग्रन्थ की रचना की है । उसने अपने भक्त-हृदय के समस्त भक्ति भावों को काव्य में उड़ेल दिया है जिससे ग्रन्थ का कलेवर विस्तृत हो गया है । कवि ने कृष्ण चन्द्रिका में दास्य एवं सख्य भाव की भक्ति की है । जब कृष्ण विभिन्न असुरों का संहार कर लेते हैं तो कवि कृष्ण के प्रति दास्य भक्ति का निवेदन करने लगता है । सम्पूर्ण ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों में कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित विशाल छन्द मिलते हैं । भक्ति भावना से पूर्ण एक छन्द देखिये :-

जन्म कर्म अनन्त केर अनन्त वेद बखान ।
पुण्य धर्म प्रकाश पुन्य लसई श्रीभगवान ।।
देव दासन को सुखी नहि लेत हैं अवतार ।
दिव्य मूरत शुभ कीरत हरत भूतल भार ।।[2]

कृष्ण ही इस संसार के कार्य व कारण हैं । कवि निवेदन करता है कि भगवान उसे शरण में ले लें ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-31, पृष्ठ-85
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-3, पृष्ठ-15

अज अद्भुत रूप सदा तुम सोहो ।
जिन जीव लखे प्रभु मायहि मोहो ।।
तुमही जग कारन कारज स्वामी ।
जग जीवन की मत अन्तर्यामी ।।
सबने जिहारो सबते रघु न्यारे ।
अति अद्भुत निगम वेद उचारे ।।
इम अद्भुत के अक्रूरो जन भाखो ।
अब मोहि कृपा कर शरनहि राखो ।।[1]

कवि श्रीकृष्ण को ब्रह्म का अवतार मानता है । और अनेकों प्रकार से विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से स्तुतियाँ करता है । जब अक्रूर जी श्रीकृष्ण बलराम को लेने आते हैं तो राह में जल में स्नान करते हुये वे श्रीकृष्ण के चतुर्भुजी रूप का दर्शन करते हैं और उनकी अनेक प्रकार से स्तुतियाँ करते हैं ।

भयभीत अक्रूर भय जल ठाढ़े ।
पुन बोध हिये धर धीरज गाढ़े ।।
गनके जन दर्शन दीनेउ स्वामी ।
अब मोहि भयो जग जीवन नामी ।
अति अद्भुत दुस्तर जीव माया ।
तर पार लखे अकौ जग जाया ।।
अक्रूरो सिर नाय दुवौ कर जोरे ।
कर अस्तुति आनन्द प्रेम न थोरे ।।
तुम आदहु मध्यहु अन्त समाना ।
जग मोहत हो सबके भुलाना ।।
जग है तुमते प्रभ पालन होई ।
जल बीचिय ज्यों जल में मिल जाई ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-41, पृष्ठ-104.

हरि रूप विराट कहूँ कुछ गावै ।
जब शेष महेश न पारहि पावै ।।
जब बाढ़हि कूट अधर्म प्रकासौं ।
प्रकटो महि भंजन दैत्य विनासौं ।।[1]

इसी प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ में कृष्ण स्तुतियाँ यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं । जरासंध की कैद से जब कृष्ण अनेकों राजाओं को मुक्त कराते हैं तो वे श्रीकृष्ण की स्तुति गान करते हैं ।

जय दीन दयाल कृपाल हरे ।
हिरणाकुश रावण कंस अरे ।।
द्विज दीनन दारुन दाल हरो ।
रथ रूप अनेक उधार करो ।।
हम काल बली मुख आय परे ।
अब दुर्जय दारुन पाश हरे ।।
विधि सेवत शंकर मोद भये ।
भुविराज समाजन साथ रये ।।[2]

श्रीकृष्ण की स्तुति और भक्ति प्रत्येक अध्याय में की गयी है । वसुदेव द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति देखिये :-

पर पूर आदहु मध्य अन्त अनन्त एक अनूप ।
पूर ध्यान परेश निर्गुन सगुन ब्रम्ह स्वरूप ।।
सचराचर तव अतीत अज अनादि आत्म पार ।
जय दीनबन्धु दयाल शम्भु स्वयम्भु के करतार ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-61, पृष्ठ 104.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-74, पृष्ठ 229.

जय जगत कारन भूप भासन राम रूप अनन्त ।
भव भूत संभव काल कारन आपही सब तन्त ।।
नहि नैन देख न कर्न सुन नहि बर्न बाणी जाय ।
सब मध्य है सबते परे मन पर्न अद्भुत ताय ।।[1]

ईश्वर अनन्त स्वरूप है । वही निर्गुण व सगुण ब्रह्म है । इस संसार का कारण व कार्य वही है । उसके स्वरूप का वर्णन करना सम्भव नहीं है ।

इस प्रकार कृष्ण भक्ति से पूर्ण स्तुतियों की रचना करने से ग्रन्थ की विशालता में वृद्धि हुई है ।

युद्ध वर्णन :-

कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन संघर्षपूर्ण रहा । बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक उन्हें अनेकों असुरों व दुष्टजनों का संहार करना पड़ा । अनेकों राजाओं से उनका युद्ध हुआ । समरांगण के अनेकों दृश्य चित्र कवि ने अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं जिससे ग्रन्थ का कलेवर विस्तृत हो गया है । कंस-वध के पश्चात् उसकी दोनों रानियाँ अपने पिता जरासंध के पास जाती हैं, जरासंध सत्रह बार तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्ध करता है । श्रीकृष्ण - जरासंध के युद्ध का एक वर्णन देखिये :-

दबी दल बादल सी चहुँ ओर । छिपे जन सूर निहार प्रभोर ।।
बहे सर बारूनी जल धार । चमक्कत दामिनि सी तलवार ।।
कटे तनवीर परे धर माँहि । भई गति ग्रीष्म प्रान नसाहिं।।
तबे बल के कबौं धनु तान छिदे जुग स्यंदन कोटन बान ।।
फिरे बिन मुन्डन कोटन रुण्ड । लिये कर खड्ग करे रवि चंड ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर [illegible]सिंह, अध्याय-85, पृष्ठ 261.

परे कट भूम करी कमुण्ड । किकारत भाजत बीरन झुण्ड ।।
अनेकन सौ हरि बानन मार । बहाय दये रन नागर धार।।[1]

युद्ध वर्णन पढ़ने से युद्ध का पूरा दृश्य नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो जाता है । युद्ध वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक है । युद्ध वर्णन में भी कवि का मन रमा है, क्योंकि श्रीकृष्ण के वीर रूप को दर्शाने का युद्ध एक माध्यम है । और उदाहरण देखिये :-

प्रमत्त दैत्य युद्ध रत्त चल तब देखकै ,
सरोष कै प्रचण्ड एक कृष्ण चन्द्र धाइयो ।
कराल काल दंडसे विशाल मारतंड से,
अखंड बान बान कै कुण्ड मुण्ड ढाइयो ।।[2]

रुक्मिणी हरण के पश्चात् श्रीकृष्ण विभिन्न राजाओं से भीषण युद्ध करते हैं, युद्ध का एक चित्र देखिये :-

सुर यादव योधन कर कर क्रोधन बरन प्रबोधन तर झण्डे ।
लागत तन शस्त्र भागत संगन जिम तूल पवन पर झण्डे ।।
कट पग भुज मुण्डय फरकत रुण्डय गज भुशुण्ड बिनतुण्ड फिरे ।
भव उठ बल तज्जत पुन रन गज्जत असि अरि बज्जत भूम गिरे ।।[3]

और आगे देखिये :-

रवि पूर धूम चहूं ओर ।
अति बढ़ो संगर घोर ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 51, पृष्ठ-134
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 56, पृष्ठ-150
3- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 56, पृष्ठ-150

मुद सुरतन रन त्याग ।
तब युद्ध कादर भाग ।।
शिव हुति सुरन शीश ।
लहि माल मेल गिरीश ।।[1]

कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न का शम्बासुर से युद्ध होता है । उस युद्ध का एक चित्र देखिये :-

भरे अस क्रुद्ध दुवौ बलवन्त । करे रन अद्भुत भांति अनन्त ।।
कहुं सर सेल त्रिशूल पवार । गदा बहु वज्र कुठार प्रहार ।।
धरे कर सम्बर आयुध जोन । निवारतहि सत्वर पद्मन तौन ।।
मयासुर मायहि दानव जोर । तपोधन ते सर पावक घोर ।।[2]

श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन दुष्टों, राक्षसों से युद्ध करते हुये व्यतीत हुआ था अतः कवि ने युद्ध वर्णन में अपनी अपूर्व कुशलता का परिचय दिया है । शब्दों का चयन भी युद्ध वर्णन के अनुकूल है । श्रीकृष्ण और भौमासुर के मध्य युद्ध का एक चित्र प्रस्तुत है :-

जुद्ध क्रुद्ध अस्त्र शस्त्र दैत्य चंड छंडियो । चक्र को प्रहार चक्र पान सर्व खंडियो ।।
निसले निहार अस्त्र शस्त्र धाम धायगो । कोदण्ड सूल ले प्रमत्त युद्ध आयगो।।
काल दंड ते कराल कृष्ण पै प्रहारि है । देव देव चक्र मारतंड भूम डार है ।।
भूम पुत्र शीश काट डार भूम मे दयो । शीश पात शब्द भी अघात भूमि डोलयो।।[3]

श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का, वाणासुर की पुत्री ऊषा प्रेमवश अपहरण करवाकर अपने महल में रख लेती है और वाणासुर यह जानकर क्रोधित होकर अनिरुद्ध को नागपाश में बांध लेता है तब श्रीकृष्ण व बलराम का वाणासुर से

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-56, पृष्ठ- 150.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-57, पृष्ठ- 157.
3- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-61, पृष्ठ- 178.

भीषण संग्राम होता है उस संग्राम का एक चित्र देखिये :-

कहुं रन भूम परे भट वीर । बही भयदा नद शोन गम्भीर ।।
चिकार गिरे महि घायल झूम । भयंकर ज्यों गिर निर्झर भूम ।।
बहे बहु स्यंदन सिंधुर वाज । मनो सरिता मग नाव जहाज ।।
बहे भट रुण्ड वितुण्ड वितुण्ड । फिरे नरग्राहन के जनु झुण्ड ।।[1]

इसी प्रकार युद्ध के अनेक चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं । युद्ध वर्णन में कवि पृष्ठ के पृष्ठ समाप्त करता गया है जिससे ग्रन्थ का आकार विशाल हो गया है ।

श्रीकृष्ण रूप सौन्दर्य वर्णन :-

हिन्दी साहित्य रमणी रूप वर्णन से आच्छादित है । केवल कृष्ण काव्य ही ऐसा है जिसमें पुरुष रूप का विशद वर्णन है । प्रस्तुत ग्रन्थ के कवि ठाकुर रूपसिंह कृष्ण के भक्त हैं अतः उन्होंने अपने आराध्य इष्ट देवता के रूप - सौन्दर्य का वर्णन स्थान-स्थान पर किया है जिससे ग्रन्थ के आकार में वृद्धि हुयी है । कवि ने कृष्ण के बाल रूप कैशोर्य एवं युवावस्था के रूप सौन्दर्य का बड़ा मोहक वर्णन किया है । श्रीकृष्ण के बाल सौन्दर्य की एक झाँकी देखिये:-

नंद स्वछन्द खेलत संग बालक वृन्द वृन्द ।
नील वारिज नील वारिद नीलमनि द्युति कुन्द कुन्द ।।
देख मोहत नारि पूर्ण निहार आनन चंद चंद ।
वार फेरत रूप धावत नैन दोष आनन्द मन्द ।।
किरीट मुकुट सिर पीत वसन तन विहरत अजिर मुदित नंद नन्दन ।
बोलन वचन सुधा वरषत के नैनन के निरखि विश्व शिव वन्दन ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 65, पृष्ठ-202.

भृगु कर्ष विराजत हीय लसं ।
भुज दंड उदंड अखंड बलं ।।
मकराकृत कुंडल सोहि श्रुतं ।
दृग पंकज पुंज विडंब कृतं ।।
बरमाल निवारक ग्रीव लसे ।
शुक कुंजन कुंजन प्रान हसे ।।[1]

ठाकुर रूपसिंह ने वीर पुरुष के सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण किया है । सौन्दर्य वर्णन में उन्होंने प्रचलित उपमायें ही दी हैं । उनमें नवीनता नहीं है । जब श्रीकृष्ण गोपिकाओं के साथ रास में लीन होते हैं उस समय के उनके रूप सौन्दर्य की छटा अनुपम है ।

तन घनश्याम सुख धाम,
छवि ग्राम मन मर्दन,
तमाल नाल कंज द्युति मन्दकी ।
नैन रतिनारे अरु नारे ।
अनियारे भारे भृकुटि कुदण्ड ।
मैन फल पुंज छन्द की ।।[2]

और देखिये —

कृष्णा कर बार सिंगार बनायो ।
मन मोहन मोहन रूप सुहायो ।।
जत चन्द मनो भव सुन्दर लाई ।
जग जीवन नैनन के सुख दाई ।।
अवलोक अलौकिक रूप रसाला ।
जन चार चकोर बहुरिका बाला ।।
छवि सागर नागर पाय अधूरे ।
मुख कंज भये दृग भौर भरे ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-74, पृष्ठ-229.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-30, पृष्ठ-82.

अति कछुक सुन्दर सोभै विराजे ।
जग दूढ़ फिरो उपमा सब लाजे ।।
कायास प्रकास दिगंत कीनो ।
किय पूर त्रिभुवन ज्यौं अदीनो ।।[1]

श्रीकृष्ण के सौन्दर्य वर्णन के कारण भी ग्रन्थ वृहदाकार है ।

विभिन्न उत्सवों एवं संस्कारों का वर्णन :-

श्रीकृष्ण चन्द्रिका में अनेक उत्सवों एवं संस्कारों का विस्तृत चित्रण किया है जिससे ग्रन्थ के कलेवर में वृद्धि हुयी है । कृष्ण जन्मोत्सव का विशद् वर्णन है । श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव पर गोपों का उत्साह देखते बनता है ।

गोप सबै मिल गोपिन यो पसु केस ठये ।
देन बधाव दही धरके सिर आय गये ।।
डारहि नन्द दुआर मची अति कीचरवाँ ।
फैल गयो जितरे ब्रज में दध कादि मर्वा ।।
नाचहि गावहिं ग्वालिन ग्वाल प्रमोद गये ।
नन्द अनन्द बढ़ाय सबै ढिग बोल लये ।।
भोजन भूषन चीर तिने पहिराय नये ।
टीकव पान समान विदा तहि ग्रेह गये ।।[2]

श्रीकृष्ण व बलराम के नामकरण संस्कार हेतु नन्द बाबा ऋषि गर्ग को आमन्त्रित करते हैं । ऋषि गर्ग उनका नामकरण करते हैं । नन्द बाबा उनको दक्षिणा देते हैं, देखिये :-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर जगसिंह, अध्याय-30, पृष्ठ-82.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर जगसिंह, अध्याय-7, पृष्ठ-24.

लखि दच्छिन गर्ग असीस दई ।
मथुरापुर की जब बाट लई ।।
कछुदेवकि बाय यहै बरनी ।
सब सोचत जो प्रकटी करनी ।।[1]

इसी प्रकार श्रीकृष्ण की वर्ष गाँठ के उत्सव का चित्रण देखिये :-

वर्ष गाँठ साज आज नन्द राज श्याम की ।
बायनो तमोल बाँट बोल बाम ग्राम की ।।
गोपिका प्रमोद आय गावहीं बधावनी ।
दान बाव कान नन्द वर्ष मेळावनी ।।
श्यामको सिंगार बाम श्याम विन्द है दयो ।
नन्द राय अन्हवाय नन्द द्वार मे गयो ।।
पूजन दूब रोचनाद वर्ष वर्ष हार्यो ।
कृष्ण चन्द वर्ष गाँठ पाट की बधावयो ।।[2]

कवि अपने समाज के वातावरण से प्रभावित होता है । बुन्देलखण्ड में परम्परा है कि जन्म, विवाह आदि उत्सवों पर बायना बाँटा जाता है, कवि ने उसी का चित्रण उपर्युक्त छंद में किया है । कवि ने श्रीकृष्ण के अनेक विवाहों का भी वर्णन किया है । नृप नग्नजीत की कन्या से विवाह का एक चित्र देखिये :-

नृप नग्नजीत आनन्द मान । नर नारि करहि हरि कीर्ति गान ।।
कुल भूप लीन दुहिता सँभार । कर वेद भेद भाँवर सुधार ।।
दस सहस गाय दीनी मंगाय । नव सहस दये दन्ती सजाय ।।
पुन दीन दिव्य दस लख बाज । रथ शत तिहत्तर सहस साज ।।
पट भूषन दीने विविध रंग । दिय दास दासिका विपुल संग ।।[3]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-10, पृष्ठ-30.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-10, पृष्ठ-32
3- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-60, पृष्ठ-173.

इस प्रकार विभिन्न संस्कारों एवं उत्सवों के चित्रण से समस्त ग्रन्थ भरा हुआ है। इसीलिये ग्रन्थ का आकार विशाल हो गया है।

कवि ने बारात का चित्रण भी स्वाभाविक किया है। शिशुपाल की बारात का एक चित्र देखिये :-

> आयो उतै बरात साज शिशुपाल सुकुलहि।
> पैदल रथ गज बाज भार हल्ले महि झुलहि।।
> कुण्डिनपुर नियरानि बजत झकोर निशाननि।
> रूकमराज दल साज बाज लीने अगुवाननि ।।
> युत भाय स्याय पहराय सब परछ दीन जनवास बर।
> पुन भोजन चार प्रकार रच बोल बरात जिवाय कर।।[1]

इन विभिन्न संस्कारों एवं उत्सवों के वर्णन से ग्रन्थ के कलेवर में वृद्धि हुई है।

मूल कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाओं का वर्णन :-

ठाकुर रूपसिंह ने मूल कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाओं का भी वर्णन किया है जिससे ग्रन्थ वृहदाकार हो गया है। प्रासंगिक घटनाओं की योजना पुराण शैली के आधार पर की गयी है। राजा परीक्षित अनेक बार शंका उपस्थित करते हैं, शुकदेवजी उस शंका निवारण हेतु प्रासंगिक घटना का वर्णन कर देते हैं जैसे परीक्षित शंका करते हैं कि कृष्ण ने परायी नारियों के साथ रासक्रीड़ा क्यों की ? इसके उत्तर में शुकदेवजी प्रासंगिक घटनाओं का वर्णन करते हैं। जब राजा परीक्षित कालियनाग के रमणीक द्वीप को छोड़कर यमुना में आकर रहने का कारण पूछते हैं तो शुकदेवजी उस समय प्रासंगिक कथा का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार भस्मासुर कथा, भृगु कथा, मुचकुंद कथा, आदि अनेक कथा तथा राजा नृगकी कथा, नारदमोह कथा आदि अनेक प्रासंगिक कथाओं से ग्रन्थ के आकार में वृद्धि हुई है।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-55, पृष्ठ- 145.

पुनरावृत्ति :-

कवि ने स्थान-स्थान पर पुनरावृत्ति की है, जैसे -

कह सुखदेव महीप सुन, सुखद हरि गुन गान ।[1]

कहि शुक मुन सुन भूप, हरि चरित्र पावन परम ।[2]

कहि मुनीस नरनाह सुन, हरिमाया बलवान ।[3]

कहि शुक मुन महिपाल सुन, हरिमाया बलवान ।[4]

कहिं शुक मुनि महिपाल सुन, हरि चरित्र सुखदान ।[5]

कहि शुक मुन नरनाहि सुन हरि जस अकथ अगाध ।[6]

कहि मुनीश महिपाल सुन, हरि गत अकथ अपार ।[7]

कहीं कहीं पर कवि ने नाम परिगणन शैली को अपनाया है । नगर वर्णन में नगरों की शोभा वर्णित करते समय कवि ने अनेक वृक्षों के नामों की गणना की है ।

लसै कुन्द, चंपका जुही गुलाब मल्लिकाय,
मालतीन केतकी अनार रम्य पुंज ही ।
मृनाल के वराल भृंग गंध लुब्ध हंस,
कंस कुक्कुटादि मंजलादि चक्रवाक कुंजही ।।
कदम्ब तालह तमाल पिप्पली वटाल,
केल मौल श्रीरसाल जाल चार जाल मोद ही ।।[8]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-12, पृष्ठ-38
2- .. .. .. -13, पृष्ठ-40
3- .. .. .. -14, पृष्ठ-46
4- .. .. .. -24, पृष्ठ-67
5- .. .. .. -37, पृष्ठ-94
6- .. .. .. -85, पृष्ठ-261
7- .. .. .. -78, पृष्ठ-236
8- .. .. .. -55, पृष्ठ-144

इसी प्रकार कवि ने ऋषियों के नामों की भी गणना की है ।

> नारद व्यास वशिष्ट गर्ग गौतम कात्यायन ।
> कश्यप पुलह पुलस्त अंगिरा वामदेवजन ।।
> देवल च्यवन आस्त अब पाराशर गालव ।
> याज्ञवल्क भृगु भरद्वाज मारकंड भार्गव ।।
> कौशिक दुर्वासि शौनक सनक पुंडरीक शांडिल्य वर ।
> कुश जन्हु कन्हु आये ऋषि देव उठे अवनींद्र हर ।।[1]

इन वर्णनों से व पुनरावृत्ति से ग्रन्थ के आकार में वृद्धि हुई है ।

कवि के दार्शनिक विचार :-

कवि ने श्रीकृष्णचन्द्रिका ग्रन्थ में दार्शनिक विचार प्रकट किये हैं । ईश्वर अज, विराट, सगुण स्वरूप है । उसका आदि मध्य व अन्त नहीं है । यह समस्त चराचर जगत उसका ही स्वरूप है । समस्त जगत में उसका ही अंश विद्यमान है ।

> वे अजं विराट सगुन वीत जन्म कर्म ।
> आद मध्य न अन्त है सब अंश ब्रह्म अनूप ।।[2]

आत्मा परमात्मा एक ही हैं इस प्रकार उन्होंने अद्वैतवादी दर्शन को माना है । इस विश्व में प्राणी का आधार प्राणी ही है । प्राणी जन्म लेता है, मृत्यु को प्राप्त हो जाता है पुनः जन्म लेता है, फिर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और इस प्रकार जन्म-मरण में ही गई कल्प व्यतीत हो जाते हैं और प्राणी इस भवसागर से पार नहीं हो पाता है । प्राणी यदि कृष्ण-चरित्र का गान करे तो वह इस भवसागर से पार हो सकता है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-64, पृष्ठ-257

2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-67, पृष्ठ-269

कृष्ण चरित पावन अमित अभिमत फलदातार ।
गाय गाय नर सकल ही, पावै भव निधि पार ।।[1]

व्यक्ति का कल्याण इसलिये नहीं हो पाता है, क्योंकि वह देह, गेह, पुत्र, माया-मोह आदि में ही लिप्त रहता है । यदि वह ईश-चरणों में अपने मन को समर्पित करदे तो उसे बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है । यह संसार मिथ्या है, परन्तु प्राणी माया के आच्छन्न होने के कारण इस बात से अनभिज्ञ रहता है और इस मायावी संसार को एक मात्र सत्य समझ लेता है । प्राणी का हृदय अज्ञान रूपी अंधकार से आच्छादित रहता है और वह मायावश ईश्वर के स्वरूप को पहचान नहीं पाता है । ईश्वर के सूक्ष्म व स्थूल शरीर का विचार व्यर्थ है । उसको न तो कानों ने सुना है, न नेत्रों ने देखा है । उसका आदि मध्य अन्त कुछ भी नहीं है । वह बिना पग चलता है, कर हीन होकर विभिन्न कार्य करता है । मुखहीन होते हुये भी समस्त रसों का उपभोग करता है । वह बिना वाणी के भी वेदज्ञ है । वह श्रुतिहीन होने पर भी समस्त ध्वनियाँ सुन लेता है, दृगहीन होने पर भी जड़-चेतन को देख लेता है । बिना नासिका के गन्ध का ज्ञाता है, तनहीन होने पर भी स्पर्श कर लेता है । उसके कर्म अद्भुत अकथ्य और अलौकिक हैं ।

नहि सूक्ष्म स्थूल शरीर विचारो ।
जिहि कर्न सुनो नहि नैन निहारो ।।
गुन तत्त्व न तन रंग न रेखा ।
जिहि आद न मध्य न अन्त विशेषा ।।
पग हीन चरै अरु कौन सुनावो ।
करहीन करै विधि कोट न जावो ।।
मुखहीन लखे रस भोगन भोगी ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-90, पृष्ठ-283.

बिन बैन कहै बहु बैन प्रयोगी ।।
श्रुतिहीन सुनै बहु बीरय बानी ।
दृगहीन लखै बहु अंगन बानी ।।
बिन घ्रानहि गन्ध ग्रहै सब सोई ।
तनहीन करै परसहि जोई ।।
अस अद्भुत कर्म अकथ्य अलोकी ।
कहु काहु कहीं न सुनी न बिलोकी ।।1.

ईश्वर परिपूर्ण है, अनूप है वही सगुण व निर्गुण ब्रह्म दोनों ही है ।

पूर पूर आदहु मध्य अन्त अनन्त एक अनूप ।
पूर सम्प्रधान परेश निर्गुन सगुन ब्रह्म स्वरूप ।।2.

इस काया में प्राण चेतना ईश्वर की व्यापकता है ।

सुन तात तत्व अचेत गुन तन प्राण ए जड़ जान ।
इन सर्व को चैतन्य कारक अन्त ईश्वर मान ।।3.

ईश्वर सबके मध्य है,परन्तु सबसे दूर भी है । ब्रह्म व जीव एक ही हैं,परन्तु माया के प्रपंच के कारण ही वे भिन्न माने जाते हैं । प्राणी को विषय-वासना को त्यागकर सत्कर्म करना चाहिये जिससे वह मुक्त जीवन व्यतीत कर सके । हरि श्री अनादि अखंड व अनूप है । विषयों में रति होने के कारण ही सब भव रूपी अन्धकूप में भ्रमित रहते हैं । ईश्वर के चरणों के जो दर्शन कर लेता है वह भवसागर व शारीरिक दोषों से मुक्त हो जाता है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-87, पृष्ठ-268.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-85, पृष्ठ-261.
3- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-85, पृष्ठ-261.

हरि औ अनाद अखंड अनूपा ।
मिथ्या रति होय भौ भव कूपा ।।
इन वर्नन के जिन दर्शन पाये ।
भव सिंधु शारीरिक दोष नशाये ।।[1]

ईश्वर का रूप अद्भुत है, माया-मोह में ग्रसित प्राणी उसके स्वरूप को नहीं पहचान पाता है । इस विश्व का संचालक, नियामक व कर्त्ता ईश्वर ही है । इस विश्व में गतिशीलता ईश्वर के कारण ही है । सारा संसार ईशमय है ।

जग अद्भुत रूप सदा तुम सोहौ ।
जिन जीव सबै प्रभु मायहि मोहौ ।।
तुमही जग कारज कारन स्वामी ।
जग जीवन की गत अन्तर्यामी ।।
सबमें बिहरौ सबसे रहु न्यारे ।
अति अद्भुत निगम भेद उचारे ।।
हम अद्भुत के बहुरौ जस भाखौ ।
अब मोहि कृपा कर शरनहि राखौ ।।[2]

ईश्वर ही इस जगत का पालनकर्त्ता है । उसकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता है । कवि ने ग्रन्थ में अनेक भक्ति-भावना से पूर्ण दार्शनिक विचार प्रकट किये हैं । राजा परीक्षित शुकदेवजी से प्रश्न करते हैं और शुकदेवजी उनकी शंका समाधान हेतु बड़े-बड़े दार्शनिक विचार प्रकट करते हैं । अध्याय 85, 84, 87 व 90 इन्हीं दार्शनिक विचारों से पूर्ण हैं । दार्शनिक विचारों के कारण कथा प्रवाह रुक सा जाता है । संपूर्ण

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-84, पृष्ठ-258.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-61, पृष्ठ-104.

ग्रन्थ में भक्ति भावों से परिपूर्ण दार्शनिक विचार पढ़ने को मिलते हैं। इन्हीं दार्शनिक विचारों के उल्लेख के कारण ग्रन्थ वृहदाकार हो गया है।

कृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ के वृहदाकार का कारण इसका महाकाव्यत्व भी है। यदि हम महाकाव्य के समस्त तत्वों को ध्यान में रखकर ग्रन्थ की परीक्षा करें तो यह महाकाव्य सिद्ध होता है।

श्रीकृष्ण चन्द्रिका का महाकाव्यत्व

श्रीकृष्ण चन्द्रिका एक वृहद् ग्रन्थ है। यह अपने अन्दर महाकाव्य जैसी गम्भीरता समाहित किये हुये है। कृष्ण चन्द्रिका काव्य को महाकाव्यत्व की कसौटी पर कसने से पहले महाकाव्य के लक्षणों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

बन्ध की दृष्टि से भारतीय समीक्षा पद्धति में श्रव्यकाव्य के दो भेद किये गये हैं – एक प्रबन्ध और दूसरा मुक्तक। प्रबन्ध में पूर्वापर का तारतम्य होता है। मुक्तक में इस तारतम्य का अभाव रहता है। प्रबन्ध में छन्द एक दूसरे से कथानक की शृंखला में आबद्ध रहते हैं। उनका क्रम उलटा पलटा नहीं जा सकता है वे एक-दूसरे से अपेक्षा रखते हैं। मुक्तक छन्द पारस्परिक बंधन से मुक्त होते हैं वे स्वतः पूर्ण होते हैं। वे क्रम से रखे जा सकते हैं, किन्तु एक छंद दूसरे से अपेक्षा नहीं करता। प्रबन्ध के भी दो भेद किये गये हैं। एक महाकाव्य, दूसरा खण्डकाव्य। महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है उसमें जीवन की अनेकरूपता दिखायी जाती है। खण्डकाव्य में किसी एक ही घटना को मुख्यता दी जाती है और इस कारण इसमें एक देशीयता रहती है। श्रीकृष्ण चन्द्रिका को महाकाव्यत्व की कसौटी पर परखने से पहले महाकाव्यत्व के शास्त्रीय लक्षणों की जानकारी अत्यन्त आवश्यक हो जाती है। बाबू गुलाबराय के अनुसार :-

महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण :-

1- यह सर्गों में बंधा हुआ होता है ।

2- इसमें एक नायक रहता है जो देवता या उत्तम वंश का धीरोदात्त गुणों से समन्वित पुरुष होता है । उसमें एक वंश के बहुत से राजा हो सकते हैं - जैसे कि रघुवंश में ।

3- श्रृंगार, वीर, शान्त रसों में से कोई एक रस अंगी रूप में रहता है । नाटक की सब सन्धियाँ होती हैं ।

4- इसका वृत्तान्त इतिहास प्रसिद्ध होता है या सज्जनाश्रित ।

5- इसमें मंगलाचरण और वस्तु निर्देश होता है ।

6- कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का गुण कीर्तन रहता है जैसे कि रामचरित मानस में ।

7- एक सर्ग में एक ही छंद रहता है और अन्त में वह बदल जाता है । यह नियम शिथिल भी हो सकता है । जैसे कि रामचन्द्रिका में । प्रवाह के लिये छन्द की एकता वांछनीय है । सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की सूचना रहती है । कम से कम आठ सर्ग होने चाहिये ।

8- इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि,प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संग्राम, यात्रा, अभ्युदय आदि क्रियाओं का वर्णन रहता है ।

पाश्चात्य मत से महाकाव्य के लक्षण :-

1- यह एक वृहदाकार कथन प्रधान काव्य है ।

2- व्यक्ति की अपेक्षा इसमें जातीय भाव अधिक रहते हैं । इसमें प्रायःकोई बड़ा जातीय संघर्ष दिखाया जाता है ।

3- इसका विषय परम्परा से प्रतिष्ठित और लोकप्रिय होता है ।

4- इसमें पात्र शौर्ययुक्त प्रधान होते हैं । उनका सम्पर्क देवताओं से भी रहता है । उनके कार्यों की दिशा निर्धारित करने में देवताओं और नियति का हाथ रहता है ।

5- इसमें नायक को लेकर सारी कथा एक सूत्र से बंधी रहती है ।

6- इसकी शैली में एक प्रकार की शालीनता व उच्चता रहती है ।

7- इसमें एक ही छंद का प्रयोग होता है ।

उपर्युक्त लक्षणों की कसौटी पर कृष्ण चन्द्रिका की परीक्षा करने पर अनेक अंशों से यह महाकाव्य दृष्टिगोचर होता है । संक्षेप में इन तत्वों के आधार पर इसका विवेचन इस प्रकार है ।

शुक्लजी के अनुसार महाकाव्य का इतिवृत्त व्यापक होने के साथ-साथ सुसंगठित भी होना चाहिये । उसमें ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का वर्णन होना चाहिये जो हमारी भावनाओं को तरंगित कर सकें । कवि की भाव व्यंजना में हृदय को आंदोलित करने की क्षमता होनी चाहिये । महाकाव्य के संवादों में रोचकता, नाटकीयता व औचित्य का गुण होना अनिवार्य है । इसके अतिरिक्त शैली की महानता और शैली में प्रौढ़ता भी होनी चाहिये ।

ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका की कथा-वस्तु श्रीकृष्ण के समग्र जीवन का चित्रण है । कृष्ण कथा शताब्दियों से भारतीय जन-जीवन का कंठहार रही है । कृष्ण चन्द्रिका का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत है अतः यह कथा इतिहास प्रसिद्ध है ।

कवि ने अपने प्रबन्ध काव्य में कृष्ण चरित्र को उपस्थित किया है । उन्होंने कृष्ण भगवान के ब्रज, मथुरा और द्वारिका के जीवन को एक कथा के तारतम्य में आबद्ध करके चरित्र नायक के जीवन की अनेकरूपता के दर्शन कराये हैं।

कवि ने ब्रजभाषा को अपनाया है । इस ग्रन्थ में भावुकता के स्थान पर कर्तव्यपरायणता को अधिक स्थान दिया है । प्रमुख पात्रों का चित्रण बड़े कौशल के साथ हुआ है । ब्रज और मथुरा के माधुर्यमय स्थलों पर सूर की स्पष्ट छाप है । कृष्ण चन्द्रिका की कथा संगठित है । इसमें बाह्य विधान के साथ-साथ आंतरिक विधान भी है । प्रबन्धकाव्य के रूप में प्रारम्भ में मंगलाचरण है । गणेश, सरस्वती, शिव, गुरु, गंधर्व, कविजन और ग्रहों की वंदना प्रारम्भिक छंदों में की गयी है । तत्पश्चात् रूपसिंहजी की मौलिक उद्भावनाओं के साथ कथा प्रारम्भ होती है । कवि ने पृथ्वी को गाय, वृषभ को धर्म और उसके पीछे भागते हुये श्याम तनधारी मूसल ग्रहण किये हुये पुरुष को कलियुग का प्रतीक बताते हुये कथा प्रारम्भ की है ।

> पंथमाहि देखौ यक राई, भागत जात वृषभ अरु गाई ।
> तिन पाछे मूसल कर लीने, धावत धरे क्रोध नर कीने ।।[1]

मंगलाचरण में गणेशजी की वंदना के पश्चात् सरस्वतीजी की वंदना की है । देखिये :-

> बानी बीना पान धर, मो बानी करवास ।
> जिहिते, हौं श्रीकृष्ण जस भाषा करौं प्रकास ।।[2]

ठाकुर रूपसिंह ने वाणी की देवी सरस्वती की वंदना श्रीकृष्ण की यशगाथा लिखने के लिये ही की है ।

सम्पूर्ण कथानक को नवे अध्यायों में विभाजित किया गया है । आकाश वाणी का श्रवणकर कंस कृष्ण-वध हेतु विभिन्न राक्षसों को भेजता है, कंस के भय से कृष्ण को गोकुल ले जाया जाता है, कृष्ण द्वारा अनेकों असुरों का वध, राधा-कृष्ण प्रेम, बाल लीला, रास लीला, मथुरागमन, कंसवध, शिशु-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-1, पृष्ठ-3.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-1, पृष्ठ-1.

पाल वध, कृष्ण द्वारा सोलह हजार रानियों से विवाह तथा कृष्ण के कौतुक चरित्रों का वर्णन इन समस्त प्रकरणों को अध्यायों में विभाजितकर कथा का प्रणयन किया है । इस कथा में जीवन व्यापी संघर्षों,कार्यों का सम्यक् चित्रण है जो इसे महाकाव्योचित विस्तार देने में सर्वथा समर्थ है ।

कृष्ण चन्द्रिका के कथानक का प्रवाह कहीं-कहीं अवरुद्ध भी दृष्टि-गोचर होता है इसका कारण प्रासंगिक कथाओं की बहुलता है । वैसे सम्पूर्ण कथानक व प्रसंग परस्पर आबद्ध हैं । अरस्तु के अनुसार जीवन्त कथानक का गुण यह है कि उसमें आदि,मध्य व अन्त का सर्वांगपूर्ण विकास हुआ हो । अतः इस दृष्टि से कृष्ण चन्द्रिका की कथा सुगठित है ।

नायक :-

कृष्ण में महाकाव्योचित नायक के सम्पूर्ण गुण हैं । उनमें साहस, वीरता, क्षमाशीलता, जातीय गौरव, विनयशीलता, प्रेमपरता आदि समस्त गुण हैं । ठाकुर जगसिंह के नायक में वीरोचित गुरुता बाल्यकाल से ही अभिव्यक्त है । उन्होंने 6 से 8 वर्ष की अवस्था तक ही अनेकों राक्षसों का वध कर दिया जो कंस द्वारा भेजे गये थे । कृष्ण वीर के साथ रसिक भी हैं । वे गोपिकाओं और राधिका के साथ विभिन्न प्रकार की प्रेम-क्रीड़ायें करते हैं । वैसे कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के वीर रूप का ही अत्यधिक दिग्दर्शन हुआ है । कुम्भासुर का संहार करते समय कृष्ण की वीरता देखिये :-

गहि शुण्ड कुंभ गहि देव दोय ।
गज कुम्भ गह्यो जनु सिंह सोय ।।
झुक देव दैत्य धरनी पछार ।
उठ कीन मुष्ठ ठक्कन आर ।।
कर रवि गर्द कालन्त धाय ।
लिय हरिहिं घेर कुंभन बजाय ।।

कर त्रिशूल कर धनु करत घोर ।
जनु गरजत मेघ गिरावत जोर ।।
हरि क्रुद्ध अतिहिं बढ़ाय प्रभाय ।
मुष्टिक कीनी प्रानन विहाय ।।
जिमि मधुप वस्त्र भीजो निचोर ।
तिमि बली कीनी प्रानन विहाय ।।[1]

कृष्ण वीर तो हैं ही, साथ ही रसिक भी हैं । परन्तु वे गोपिकाओं के अनुनय-विनय पर ही उनके साथ विहार करते हैं । देखिये :-

गोपिका रुदन ध्वनि सुन पीय लखे विहाय ।
गोन मोहन चाहिके तिहि नाहि रोक रिसाय ।।
होय प्रकट ध्यान कै हरि देह दीन विहाय ।
मोन ज्यों धन दामिनी तिमि कामिनी हरिषाय ।।
पायके सामीप मुक्तहि तर भईं भव पार ।।[2]

कृष्ण धीरोदात्त नायक हैं व महाकाव्य के नायक की समस्त चारित्रिक विशेषतायें उनमें हैं ।

रसात्मकता व प्रभावान्विति :-

भावोद्रेक, रसात्मकता महाकाव्य का एक प्रमुख तत्त्व है । महाकाव्य में श्रृंगार और वीर रस की प्रधानता रहती है । महाकाव्य में करुण, वीभत्स और शान्त रस का भी समावेश होता है । उपर्युक्त सभी गुण कृष्ण चन्द्रिका में हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर लालसिंह, अध्याय- 37, पृष्ठ-95.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर लालसिंह, अध्याय-31, पृष्ठ- 81.

श्रृंगार रस का एक उदाहरण देखिये :-

> तन मन सुख भूल बात अंकन उड़ उडगात,
> पुलक अलक विथुर कलक अंग मोद छाय ।
> मुक्ता मन माल बाल टूट-टूट गिरत बार,
> लटक मुकट अलन धरत झलन मन्द भाय ।।[1]

एक और चित्र देखिये :-

> रचेल कलित कलान विविध विधान मन्मथ मद हरे ।
> सब हाव भाव कटाक्ष प्रमुदित लखहि पिय प्यारी गरे ।।[2]

वीर रस के अगणित चित्र श्रीकृष्ण चन्द्रिका में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं । इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की अद्भुत अलौकिक वीरता का वर्णन किया गया है । वीर रस का एक चित्र देखिये :-

> प्रमत्त दैत्य युद्ध रत्त यत्र तत्र देख के,
> तरोष के प्रचण्ड चक्र कृष्ण चन्द्र छंडियो ।
> कराल काल दंडसी विशाल मार तंडसी अंड,
> दान बान के तुमण्ड मुण्ड खंडियो ।।[3]

<u>वस्तु वर्णन :-</u>

ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में अपनी असाधारण वर्णन शक्ति का परिचय दिया है । कृष्ण चन्द्रिका में बाल क्रीड़ाओं, जल क्रीड़ा, विवाह वर्णन, युद्ध वर्णन, नखशिख वर्णन आदि विभिन्न माध्यमों से अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 34, पृष्ठ-90.
2- .. .. अध्याय- 34, पृष्ठ-90.
3- .. .. अध्याय- 51, पृष्ठ-134.

बाल-क्रीड़ा का एक वर्णन देखिये :-

खेलन को द्वार दुहु भाई ।
संग सखा बहु खेल बनाई ।।
बछरा पूछ धरे कर धाई ।
भागहिं गिरहिं धरन पर आई ।।
धाय उठाय माय उर लावे ।
गोद राख पय पान करावे ।।
भोजन को नदराय बुलावे ।
नहि आवे जसुधा गहिलावे ।।
भोजन करत करत बलाई ।
घी खीर योदन मिठाई ।।[1]

रूप-वर्णन का एक उदाहरण देखिये :-

कीट मुकुट सिर पीत वसन तन विहरत,
अजिर मुदित नद नन्दन ।
बोलत वचन कुछ अबलन के,
नैनन के मिस किय शिव वन्दन ।।[2]

जन्मोत्सव का एक चित्र देखिये कितना स्वाभाविक है । नन्द श्रीकृष्ण जन्मोत्सव को मनाते कितने प्रसन्न हैं ।

गावत सोहरे बाज बधाई ।
मंगल मूल छठी तिथि आई ।।
नन्द सबै कुल बन्धु बुलाये ।
दान दिये पुन पूज जिवाये ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-11, पृष्ठ- 36

2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-11, पृष्ठ-36

मित्र अमृत्य कुटम्बिन जोरे ।
भोजन कीन विनोद न थोरे ।।
भूषण वस्त्र दिये मन भाये ।
आशिश दे सब ग्रेह न आये ।।[1]

विवाह वर्णन का एक उदाहरण देखिये कितना स्वाभाविक है :-

आयो उते बरात साज शिशुपाल सुभूपहि ।
पैदल रथ गज बाज भार सब्जे महि भूपहि ।।
कुण्डिनपुर नियरान बज्ज धन घोर निशानिन ।
रुक्मराज दल साज साज लीये अगुवानिन ।।
पुनि भाय त्याय पहराय सब परछ दीन जनवास वर ।
पुर भोजन चार प्रकार रच बोल बरात जिमाय कर ।।[2]

युद्ध वर्णन का एक चित्र देखिये :-

क्रुर यादव योधन कर कर क्रोधन,
अरन प्रबोधन लर जुट्टे ।
लागत सर बीजुर भागत तंजन,
जिमि द्रुम पवन हर जुट्टे ।।[3]

महान उद्देश्य :-

प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य भी महाकाव्य के समान महान है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति इस ग्रन्थ का महान लक्ष्य है । कथा-नायक कृष्ण अधर्म के नाश हेतु पृथ्वी पर अवतार लेते हैं । वे इस विश्व के सुख व आनन्द का कारण हैं व भक्तों की प्रसन्नता हेतु इस धरा पर अवतार लेते हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 7, पृष्ठ-23
2- ,, ,, अध्याय-55, पृष्ठ-145
3- ,, ,, अध्याय-56, पृष्ठ-150

जग कारन सुख धाम, अज अनाद सर्वज्ञ विभु ।
मंगल हित अभिराम, धरहु हिय विमल ॥[1]

इस ग्रन्थ का एक महान उद्देश्य श्रीकृष्ण चरित का गायन भी है जो अभिमत फलदायक व भव-बन्धन से मुक्त कराने वाला भी है ।

कृष्ण चरित पावन अमित, अभिमत फलदातार ।
गाय गाय नर सकल ही, पावें भव निधि पार ॥[2]

कथा नायक कृष्ण पाप के बोझ तले दबी हुई पृथ्वी की मुक्ति हेतु कंसादिक राक्षसों का संहार करते हैं । देश व जाति के गौरव का वर्णन करना भी कृष्ण चन्द्रिका का काम है । जाति व देश का गौरव उसके निवासियों पर निर्भर होता है । कृष्ण केवल क्षीरसागर में निवास करने वाले भगवान ही नहीं हैं अपितु वे भारत के निवासी वसुदेव-देवकी के पुत्र तथा नन्द यशोदा द्वारा पोषित हिन्दू जाति के सदस्य भी हैं । भारत भूमि वीर प्रसूता है, कृष्ण में वीरता व प्रेम दोनों ही हैं । कृष्ण चन्द्रिका में प्रमुख रूप से पाप विनाशक शक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है । इस ग्रन्थ में कृष्ण के लोक मंगल व लोक-रंजक दोनों ही रूपों से अवगत कराया गया है ।

इस पृथ्वी से अधर्मियों की समाप्ति के लिये ही कृष्ण जन्म ग्रहण करते हैं । तत्पश्चात् पृथ्वी पर सुख शान्ति व समृद्धि का प्रयास करते हैं अतः इस ग्रन्थ का उद्देश्य महान है अतः इसे हम महाकाव्य की कोटि में रख सकते हैं ।

उदात्त भाषा शैली :-

महाकाव्य में भाषा शैली की गरिमा आवश्यक होती है । महाकाव्य की भाषा भावानुसारिणी, सशक्त, प्रौढ़ व प्रवाहमयी होनी चाहिये । शैली भावा-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-62, पृष्ठ-182.
2- „ „ अध्याय-90, पृष्ठ-283.

भिव्यक्ति से पूर्ण, उत्कृष्ट व्यंजना शक्ति तथा अलंकारों से परिपूर्ण होगी । कृष्ण चन्द्रिका की भाषा शैली महाकाव्यानुसार उदात्त एवं ओजपूर्ण है । ठाकुर रूपसिंह ने अपने ग्रन्थ में अवधी, बुन्देली, ब्रजभाषा व खड़ी बोली का प्रयोग किया है । उन्होंने प्रांजल ब्रजभाषा का प्रयोग किया है ।

घन श्याम सिंह ढूंढ़त ठौर-ठौर,
बन पूछहिं फिर वर दौर-दौर ।
सब कृष्ण प्रेम मदमत्त बाल,
बन भ्रमें भनें हरि गुन रसाल ।।[1]

ठाकुर रूपसिंह बुन्देलखंड के निवासी है अतः उन्होंने अपने काव्य में बुन्देली भाषा का भी प्रयोग किया है ।

बाय मारो, पछारो, निकारो ।
धरो केस टारो कुवाँ कुन्ट मों कुण्डो ।।[2]

यत्र तत्र अवधी भाषा का भी प्रयोग किया है ।

सिसु सब खेल मगन है रहेऊ,
बाप टार जमुनहिं ले गयेऊ ।[3]

कृष्ण चन्द्रिका महाकाव्य की शैली ओज गुण से पूर्ण है । उनकी शैली पर पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

महान कार्य व युग जीवन का चित्रण :-

प्रत्येक कवि या लेखक अपने युग से अवश्य प्रभावित होता है व वह अपनी रचना में उस युग का स्पष्ट चित्र खींचता है । राजा रूपसिंह भी इसका अपवाद नहीं है । उनके समय में रीतिकालीन वर्णन शैली व आधुनिक दोनों का

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-31, पृष्ठ-85.
2- " " अध्याय-45, पृष्ठ-111.
3- " " अध्याय-17, पृष्ठ-52

ही समायोजन किया जाता था । ठाकुर रूपसिंह ने भी वैसा ही किया । अधिकांश स्थानों पर उनकी रचना में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं । रीतिकालीन कवि प्रेम एवं वीरता दोनों पर ही काव्य रचना करते थे, कवि रूपसिंह ने भी प्रेम व वीरता को काव्य में स्थान दिया है । कृष्ण प्रेम द्वारा ही राधा व गोपिकाओं के हृदय पर विजयश्री प्राप्त करते हैं, साथ ही असुरों के संहार द्वारा वीरता का प्रदर्शन करते हैं । महाकाव्य में कोई न कोई महान कार्य अवश्य दिखाया जाता है तो कृष्ण चन्द्रिका में भी असुरों का विनाश एक महान कार्य दिखाया गया है । महाकाव्य में उस युग के निवासियों के जीवन का चित्रण होता है तो कृष्ण चन्द्रिका में भी उस युग का चित्रण है । ठाकुर रूपसिंह के समय समाज में आडम्बर, भक्ति, बहु विवाह आदि प्रचलित थे । इन सबका वर्णन कृष्ण चन्द्रिका में किया गया है । कृष्ण-चन्द्रिका में तत्कालीन संस्कृति व लोक जीवन का चित्रण हुआ है । कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण का असुर संहारी चरित्र और लोकनायकत्व तत्कालीन परिस्थितियों की ही देन है । कृष्ण का ऐश्वर्ययुक्त रूप तत्कालीन राजसी वैभव की उपज था । कृष्ण चन्द्रिका में कवि ने कृष्ण के असुर संहारक रूप का वर्णनकर कृष्ण काव्य को युग चेतना से सम्बद्ध किया है । कवि ने अपने ग्रन्थ में लोक तत्वों को सम्बद्ध किया है । श्रीकृष्ण की बाल क्रीड़ायें, उनकी लीलायें आदि लोकानुभूतियों से परिपूर्ण हैं । कृष्ण चन्द्रिका में जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, विभिन्न संस्कारों आदि में उस युग की छाप स्पष्ट दीखती है जैसे शुभ काम करने से पहले हिन्दू लोग अपने घरों के दरवाजों पर वन्दनवार बाँधते हैं ।

द्वार बन्दनवार बाँधि मोतियाँ धरवाय ।
केत तोरनहु पताकन रचौं मन्दिर छाय ।।
न्हाय नित्य नित्य देव सब परमारकाद कराय ।
पाय भूषण वसन रतन द्विज गे सुख पाय ।।[1]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-7, पृष्ठ-23.

बालक का जन्म होने पर उसकी छठी पूजा होती है, उसका चित्रण देखिये :-

> गावत सोहरे बाज बधाई । मंगल मूल छठी तिथि आई ।।
> नन्द सबै कुलबन्धु बुलाये । दान दिये पुन पूज जिवाये ।।[1]

शुभ उत्सव की समाप्ति के पश्चात् सभी सम्बन्धियों, इष्ट मित्रों को पहिरावन दी जाती है, उसका एक चित्र देखिये :-

> पहिरावन सबहि दिवावहि, कर जुहार सुत लेय ।
> आप जमुना तट मुदित, मिले नन्द वसुदेव ।।[2]

इस प्रकार युग जीवन के अगणित चित्र इस ग्रन्थ में बिखरे पड़े हैं । अतः इसमें महाकाव्य के समान ही युग जीवन का चित्रण हुआ है ।

चरित्र चित्रण :-

पात्रों के चरित्र चित्रण में कवि को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुयी है । कृष्ण चन्द्रिका का कथानक अत्यन्त व्यापक है व उसमें अनेकों पात्र हैं । सभी पात्र अपना पृथक व्यक्तित्व लिये हमारे सम्मुख आते हैं । कृष्ण, बलराम, नन्द, यशोदा, गोपियाँ, कंस, राधा, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन आदि सभी पात्र पौराणिक होते हुये भी आधुनिक चेतना से अनुप्राणित हैं । इस ग्रन्थ के प्रमुख पात्र कृष्ण हैं जो ब्रह्म के अवतार हैं, उनका जन्म दुष्टदलन व धर्म स्थापना के लिये हुआ है । कृष्ण के चरित्र में मानवत्व व देवत्व का अद्भुत सम्मिश्रण है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर [illegible]सिंह, अध्याय-7, पृष्ठ-23.
2- ,, ,, अध्याय-7, पृष्ठ-24.

बाल्यावस्था में कृष्ण जहाँ बाल-क्रीड़ाओं से जनसाधारण का मनोविनोद करते हैं वहीं असुरों का संहारकर देवत्व का प्रदर्शन करते हैं । कृष्ण प्रेम के प्रतीक हैं । कृष्ण के चरित्र में शील, सौन्दर्य व शक्ति का संगम है, वे धर्म संस्थापक व राष्ट्रीय नेता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं । कृष्ण चन्द्रिका में राधा को प्रिया के रूप में कवि ने परिचित करवाया है जिसका सम्पूर्ण ग्रन्थ में दो स्थानों पर ही वर्णन है । प्रिया कृष्ण के अधिक निकट है, किन्तु उसकी तुलना में गोपिकाओं के चरित्र को कवि ने अधिक उभारा है । गोपियाँ वेद की ऋचायें हैं और कृष्ण लीला के आनन्द हेतु गोपी रूप में ब्रज में जन्म ग्रहण करती हैं । गोपियाँ कृष्ण प्रेम की दीवानी हैं । इस ग्रन्थ में खलनायक के रूप में कंस हमारे समक्ष आता है जो जब तक जीवित रहता है कृष्ण-वध का कोई न कोई षड्यंत्र रचता ही रहता है । यद्यपि वह षड्यंत्र में सफल नहीं हो पाता है ।

इस ग्रन्थ का एक और पात्र माता यशोदा हैं जो वात्सल्य व ममत्व से पूर्ण हैं व कृष्ण की जरा सी तकलीफ पर वे व्यथित हो तड़पने लगती हैं । बलराम भी एक ऐसे पात्र हैं जो सदा कृष्ण के निकट सम्पर्क में रहते हैं । उनमें वीरता, धीरता की न्यूनता नहीं है । वे सदैव कृष्ण का साथ देते हैं । नंद के चरित्र में कवि ने पितृ प्रेम का प्रदर्शन कराया है । कृष्ण के वास्तविक पिता वसुदेव का चरित्र चित्रण विशेष रूप से नहीं हुआ है । माता देवकी का उल्लेख ग्रन्थारम्भ में हुआ है जो सदैव कृष्ण के लिये चिन्तित रहती हैं । उद्धव कृष्ण के सखा के रूप में पाठकों के समक्ष आते हैं वे ज्ञानमार्गी व श्री भक्त हैं । अक्रूरजी कृष्ण बलराम को कंस के पास मथुरा ले जाते हैं । इसके अतिरिक्त कवि ने कृष्ण की रानियों व जरासंध, नरकासुर, शिशुपाल, सुदामा, शाम्ब, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि के रेखाचित्र प्रस्तुत किये हैं ।

अक्रूर का उल्लेख कवि ने कई स्थानों पर किया है । अक्रूर कृष्ण भक्त दिखाये गये हैं, वे ही कृष्ण बलराम को लेकर मथुरा जाते हैं । अक्रूर ही पाण्डवों के लिये सन्देश लेकर जाते हैं वहाँ दुर्योधन को धर्म विपरीत सुनकर वे तुरन्त वहाँ से चल देते हैं ।

कवि के आराध्य व इष्ट देव कृष्ण हैं अतः कृष्ण के चरित्र को उन्होंने खूब उभारा है । कृष्ण इस संसार के नियामक, नियन्ता, कर्त्ता-धर्त्ता व पालन-पोषण कर्ता हैं । कृष्ण के चरित्र में शील, सौन्दर्य व शक्ति तीनों का ही सम्मिश्रण है । कृष्ण असुरों का विनाशकर एक धर्म संस्थापक एवं राष्ट्र सेवा में निरत महान नेता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं । राष्ट्र की समुन्नति हेतु युधिष्ठिर को योग्य राजा समझ वे महाभारत युद्ध में पाण्डवों का पक्ष लेते हैं व युधिष्ठिर को सम्राट बनवा देते हैं । इस प्रकार कवि श्रीकृष्ण के चरित्र चित्रण में पूर्ण सफल हुआ है । राजा रूपसिंह के काव्य की एक और विशेषता यह है कि उन्होंने अपने इतने विशाल ग्रन्थ में कहीं भी राधिका जी के नाम का उल्लेख नहीं किया है । गोपियों के मध्य एक गोपी ऐसी है जो श्रीकृष्ण के अधिक निकट है । इस गोपी का परिचय कवि ने दो प्रसंगों में प्रिया के रूप में कराया है । प्रिया ही संभवतः ठाकुर रूपसिंह की राधिका हो । ठाकुर रूपसिंह ने इस ग्रन्थ में प्रिया और कृष्ण के प्रेम प्रसंगों का अति संक्षिप्त वर्णन किया है अतः प्रिया के चरित्र पर प्रकाश नहीं पड़ता है ।

कृष्ण चन्द्रिका में उल्लेख है कि गोपियाँ वेद की ऋचायें थीं । कृष्ण - लीला के आनन्द हेतु उन्होंने ब्रज में गोपी रूप में जन्म लिया था । गोपियाँ कृष्ण की दीवानी हैं, बाल्यावस्था से ही वे कृष्ण को अपने पति रूप में वरण करना चाहती हैं अतः उन्होंने देवी से वरदान प्राप्ति हेतु साधना की ।

कर जोर जोर सिर नाय कहि,
देहु माय हरि वर हमहिं ।
दधि ओदन भोजन लेव महि,
कुश पिव पय आतुर रहहिं ।।[1]

गोपियों के प्रिय कृष्ण जब मथुरा चले जाते हैं तो गोपियाँ विरह दग्ध हो अपना होश गवाँ देती हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-33, पृष्ठ-88.

मन गोपिन हरि तन मन औरं
विरहा प्रकट जारहिं शरीर ।
यह जान प्रकट करुणा निधान,
पल ओट वक्त जन पूर अजान ।।[1]

गोपियों का जीवन कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् नीरस हो जाता है, वे कृष्ण के लौटने की आशा में अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं । जब उन्हें ज्ञात होता है कि कुब्जा पटरानी बन गयी है तो वे कृष्ण को उपालम्भ देते हुये उद्धव से कहती हैं —

कुब्जा कृत सब काम, नाच नचावत गिरधरहिं ।
खोटो अपनो दाम, औरै दोष न ब्योहरिय ।।[2]

इस प्रकार ठाकुर रूपसिंह की गोपिकायें सरल हृदया भोली भाली हैं । उनके हृदय में प्रेम का सागर हिलोरें ले रहा है, वे कृष्ण दीवानी हैं ।

कंस मथुरा नरेश का पुत्र था । राज्य लिप्सा के कारण व अपने सज्जन पिता उग्रसेन को बन्दीगृह में डाल स्वयं राजा बन बैठता है । कृष्ण को वह अपना परम शत्रु समझ अनेक बार राक्षसों को उनके वध हेतु भेजता है, परन्तु कृष्ण-वध करवाने में असफल रहता है । अन्त में वह कृष्ण को मथुरा बुलाकर उनको मारने की विस्तृत योजना बनाता है । उस योजना के विफल हो जाने पर जब वह कृष्ण द्वारा मरने लगता है तब भी उसमें दुर्विचारों का संहार नहीं होता है । वह सोचता है, यदि मेरे प्राण बच गये तो मैं समस्त ग्वालों, वसुदेव, देवकी, उग्रसेन सबका वध करवा दूंगा ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 33, पृष्ठ- 88.
2- श्री कृष्ण चंद्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-48, पृष्ठ- 126.

कवि ने माता यशोदा का चरित्र चित्रण कुशलतापूर्वक किया है। वे वात्सल्य की मूर्ति हैं। कृष्ण को देखते ही वे आनन्दित हो नन्द को बुलाती हैं।

> जब देख जसुधा पूत मुख, मन मान मोद अपार।
> पुन नन्द आनन्द कंद, जन्महिं पाईयो फल वार ।।[1]

कृष्ण को तनिक-सी तकलीफ होने पर उनका मातृ हृदय हाहाकार करने लगता है और वे कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् करुण विलाप करती हैं।

बलराम एक ऐसे पात्र हैं जो कृष्ण के अत्यन्त निकटतम हैं। वे धीर वीर हैं। बाल्यावस्था में वे कृष्ण को अनेक प्रकार से चिढ़ाते हैं। युवावस्था में वे कृष्ण के निकटतम सहयोगी हैं। ब्रजवासियों के संकट निवारणार्थ कृष्ण जब संकल्पित होते हैं और माता यशोदा दुख मनाती हैं तब बलराम ही कृष्ण की शक्ति बताते हुये माता को सांत्वना प्रदान करते हैं। कंस द्वारा प्रेषित धेनुक, प्रलंबासुर, मुष्टिक आदि राक्षसों का वध कर वे अपनी वीरता का परिचय देते हैं।

नन्द भी कृष्ण चन्द्रिका काव्य के एक महत्वपूर्ण पात्र हैं, वे कृष्ण के प्रति पितृ प्रेम से परिपूर्ण हृदय लिये हैं। वसुदेव कृष्ण के वास्तविक पिता हैं, परन्तु कृष्ण से दूर रहने के कारण कवि ने उनके चरित्र को विशेष महत्व नहीं दिया है।

देवकी कृष्ण की जन्मदात्री हैं उनका हृदय वात्सल्य से पूर्ण है। इस प्रकार पात्रों के चरित्र चित्रण में भी कवि को सफलता प्राप्त हुयी है।

ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में अपूर्व वर्णन कौशल का परिचय दिया है। एक ओर कवि नगर, पर्वत आदि का वर्णन करता है तो दूसरी ओर अनेक उत्सवों का वर्णन करके अपनी विदग्धता का परिचय देता है। प्रकृति चित्रण में भी कवि ने रुचि दिखायी है। महाकाव्योचित अनेकों वर्णन ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होते हैं।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-7, पृष्ठ-22-

<u>नगर वर्णन :-</u>

श्रीकृष्ण चन्द्रिका में कवि ने नगर वर्णन किया है । ग्रन्थ में मथुरा व द्वारकापुरी की शोभा का वर्णन है । यह शैली तुलसीदासजी से ली गयी प्रतीत होती है । मथुरा नगरी की शोभा का वर्णन देखिये :-

बाग तड़ाग सभाग विलोकत जात बने ।
कुंज लतानि वितान सुसौरभ फूल घने ।।
दिव्य जलाशय वापिय कूप अनूप बने ।
फूल रहे जिनमें जल जातनु जात घने ।। [1]

मथुरा नगरी का बड़ा ही रमणीय वर्णन किया है । नगरी की पूरब दिशा में राजमहल है जिसको देखकर सबका मन मोहित हो जाता है ।

पुर पूर्व ओर नृप मन्दिर सोहे ।
अशोक लोकपति को मन मोहे ।।
अति धौल धाम नभ चुम्बन कीने ।
प्रति द्वार द्वार पट कंचन दीने ।।
मन रम्य खम्भ स्थापित कीने ।
बहु जाल रन्ध्र छवि चन्द्रकि छीने ।।
नवरंग अंग धर चित्र विराजे ।
वर कलश हेम मणि रत्नन राजे ।।
ध्वज श्वेत केतु वर वन्दन वारे ।
जनु काम केतु चित चंद सवारे ।।[2]

इसी प्रकार कवि ने द्वारकापुरी की भी शोभा का वर्णन किया है । शोभा में द्वारकापुरी चन्द्र नगरी से होड़ लेती हुयी प्रतीत होती है ।

पुरी सिन्धु में चन्द्रसी कुंज लावे ।
कि ज्यों सोमके व्योम में शोभ लावे ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-42, पृष्ठ-105.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-42, पृष्ठ-106.

किधौ दूसरे चन्दको सिन्धु जायो ।
बड़े मोद के गोद ले ताहि पायो ।।
कुआ नील के अंकको चन्द्र मण्डे ।
पुरी चन्द्र दोउ लिहुँ ताप खण्डे ।।
कहूँ चन्द्र के पास पर्जंक आवे ।
पुरी कोट वारी सदा शोभ पावे ।।
सबै भाँति सो चन्द निन्दाहि पाई ।
गयो भाग आकाश देखी बड़ाई ।।[1]

इस प्रकार ठाकुर रूपसिंह ने महाकाव्योचित नगर वर्णन किया है अत: हम कृष्ण चन्द्रिका को महाकाव्य कह सकते हैं ।

__प्रकृति वर्णन :-__

महाकाव्य में प्रकृति के भी चित्र रेखांकित किये जाते हैं । ठाकुर रूपसिंह ने भी अपने ग्रन्थ में स्थान स्थान पर प्रकृति का चित्रण किया है । बालक कृष्ण प्रकृति की गोद में ही बड़े होते हैं अत: प्रकृति का वर्णन स्वाभाविक हो जाता है । कवि ने प्राकृतिक पदार्थों का बड़ा सुखकारी वर्णन किया है । बसंत और वर्षा सभी ऋतुओं में श्रेष्ठ माने जाते हैं । कवि ने दोनों ऋतुओं का वर्णन किया है । बसन्त ऋतु का चित्र देखिये :-

मौरे रसाल फल पल्लव पुष्प पुंज ।
फूले मृणाल सर श्री मराल गुन्ज ।।
कूजे प्रपुंज अन राजत दोष छाँहि ।
छौने विशाल मद आलस छाँहि तौहि ।।
नाचे मयूर पिक कूजत सार कालि ।
सौगन्ध मन्द शीतल सिंधु पौन चाल ।।[2]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-33, पृष्ठ-144.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-20, पृष्ठ-59.

ग्रीष्म ऋतु का एक चित्र देखिये :-

आई प्रचण्ड ऋतु ग्रीष्म दुखद दान ।
दीनो समीर महि नीर अँगार सान ।।
धारे विकुण्ड मद आतप देत दण्ड ।
दीखे दिगन्त वर ग्रीष्मको अखण्ड ।।
सूखे तड़ाग सरिता सरहु रसाल ।
त्यागो विशेष नर सेवत शील माल ।।[1]

कितना वास्तविक चित्रण है ग्रीष्म में तड़ाग, सरिता, वृक्ष सभी सूख जाते हैं और तेज लू चलती है ।

उद्धव वृन्दावन जाते हैं वहाँ की प्राकृतिक शोभा देखकर चकित रह जाते हैं । कहीं मृग विचरण कर रहे हैं तो कहीं सघन कुंजों में भ्रमर विहार कर रहे हैं। शुक, सारिका,कोकिल सभी प्रसन्न हैं । विविध रंगों की गायें चर रही हैं ।

ढिग वृन्दावन पहुँचे प्रवीन, लख सघन विपिन जहँ मृग विहार ।
घन कुंजन पुंजन अलि गुँजार ।।
द्रुम सकल फूल बल्ली विराज ।
शुक सारिक कोकिल केकि भ्राज ।।
गन धेनु चरहिं बन विविध रंग ।
जनु उमग जलधि पुर नव तरंग ।।[2]

वर्षा ऋतु बड़ी सुहावनी लगती है, किन्तु जब प्रकृति अपना वर्षाकाल में ताँडव नृत्य करती है तब यही वर्षा भयानक हो जाती है । वर्षा के घोर भयानक रूप का चित्रण देखिये :-

घोर घोर अम्बुद घुमण्ड घन घुम घुम,
झुम झुम आय भूम चोल सी निशा भई ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-20, पृष्ठ-59.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-47, पृष्ठ-122.

गर गर गर गरात तर तरात तड़ित,
तड़ित जाल होत चकात उत्पात भीमे दई ।।
बार बार झंझा अखण्ड वारि मूसलाधार,
कोप पाकार किन बौछार चले ठई ।
पूर जल जाल थल जल जल मही,
तमके तमक कराक पैन ब्रज पर आगई ।।[1]

इस प्रकार कवि ने अपने ग्रन्थ में प्रकृति चित्रण को भी स्थान दिया है अतः यह ग्रन्थ अपने में महाकाव्योचित गरिमा को समाहित किये हुये है ।

युद्ध वर्णन :-

कृष्ण के वीर और योद्धा रूप का चित्रण ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण - चन्द्रिका में किया है । कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन अधर्म के नाश व धर्म की स्थापना के लिये उत्सर्ग हुआ । उन्होंने अपने युग की आसुरी प्रवृत्तियों को नष्ट करने का बीड़ा उठाया था अतः उन्हें इन आसुरी प्रवृत्ति वाले लोगों से अनेक युद्ध करने पड़े । इन समस्त युद्धों का चित्रण ठाकुर रूपसिंह ने किया है । युद्ध वर्णन में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है । कवि को रण भूमि का अच्छा ज्ञान था । कृष्ण के वीर रूप को उभारने के लिये कवि ने युद्धों का विशद् वर्णन किया है । भौमासुर व कृष्ण के घोर युद्ध का वर्णन देखिये :-

क्रुद्ध क्रुद्ध अस्त्र शस्त्र दैत्य चंड छंडियो ।
चक्रो प्रहार चक्र पान खंड खंडियो ।।
निकले निहार अस्त्रास्त्र धाम धायगो ।
भौ दत्त पुत्र ले प्रमत्त क्रुद्ध आयगो ।।
काल दंड ले कराल कृष्ण पै प्रहारि है ।
देव देव चक्र धार दंड खंड डार है ।।[2]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-26, पृष्ठ- 74.
2- ,, ,, अध्याय-62, पृष्ठ-178.

कवि ने युद्ध वर्णन बड़ी ओजस्वी शैली में किया है । शब्दों का चयन भी युद्ध वर्णन के अनुकूल है । कृष्ण पाण्डवों के सखा हैं । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ से पहले वे जरासन्ध को भीमसेन से मरवा देते हैं । भीमसेन व जरासंध के युद्ध का चित्रण देखिये :-

> धरे गदा महानसे अति ज्वाल जालसे
> फिरंत पैतरान कौ धात सन्ध कर्षहीं ।
> विरुद्ध युद्ध क्रुद्ध क्रुद्ध गज्जहीं,म्रोन्द्र से
> भिरंत अंक अंक अंक अंक अस्त्र वर्षहीं ।।
> करंत घोर घाव वीर भूम भूम पे परैं
> उठैं सम्हार मार शस्त्र कौ अस्त्र कर्षहीं ।।
> लरे विराध व्याल से कराल काल काल से
> लखैं अमान घाव घाव चित्त ते न हर्षहीं ।।[1]

युद्ध वर्णन भी महाकाव्योचित हैं अतः हम कृष्ण चन्द्रिका इस काव्य को महाकाव्य की कोटि में रख सकते हैं ।

महाकाव्य में किसी एक रस की प्रधानता रहती है । श्रीकृष्ण चन्द्रिका का प्रधान रस वीर रस है । इसमें वीर भावों का बड़ा सम्यक् चित्रण हुआ है । कृष्ण चन्द्रिका के रचयिता श्रीसत्यसिंहजी भक्त कवि हैं अतः इसमें शान्त रस का भी प्रयोग किया गया है ।

कृष्ण चन्द्रिका में कवि ने प्रत्येक अध्याय में अनेक छंदों को प्रयुक्त किया है । ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि छंदों की प्रदर्शनी कर रहा है । इससे कथा प्रवाह में बाधा पहुँची है । वैसे कृष्ण चन्द्रिका अपने अन्दर महाकाव्य की अनेक विशेषताओं को समाहित किये हुये है अतः इसे महाकाव्य जैसा विस्तार प्राप्त है । महाकाव्यत्व के कारण भी ग्रन्थ वृहदाकार हो गया है । कृष्ण चन्द्रिका काव्य में महाकाव्य के समस्त लक्षण हैं अतः महाकाव्य जैसा वर्णन होने के कारण ग्रन्थ का कलेवर विस्तृत हो गया है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर सत्यसिंह, अध्याय-73, पृष्ठ-228.

कृष्ण चन्द्रिका पर पूर्ववर्ती ग्रन्थों का प्रभाव

श्रीकृष्ण विषयक जितने भी महाकाव्य हैं उन सबका मूल स्रोत श्रीमद्-भागवत ही है व उनका विकास भी लगभग समान हुआ है, परन्तु कवियों ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं से उसे सर्वथा नवीन बनाने का प्रयास किया है। ठाकुर रूपसिंहकृत श्रीकृष्ण चन्द्रिका का आधार श्रीमद्भागवत का दशम् स्कन्ध है, परन्तु कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा ग्रन्थ को नवीन कलेवर प्रदान किया है। पूर्ववर्ती काव्यों से प्रभावित होने के उपरान्त भी रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका के महत्व को कम नहीं किया जा सकता है। सभी विद्वान जानते हैं कि पूर्व प्रचलित कथा को नया आयाम प्रदान करना कवि की महान् सफलता है। प्रो० प्रसाद ने कहा "कलाकार की श्रेष्ठता इसी में है कि वह अपने पूर्व से कुछ लेकर भविष्य के लिये कुछ दे जाय।" प्रायः सभी कवि अपने पूर्ववर्ती साहित्य से प्रभावित होते हैं और उसी के आधार पर अपने नव साहित्य का सृजन करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास भी अपने पूर्व साहित्य से प्रभावित है। यद्यपि रामचरित मानस की रचना उन्होंने स्वान्तः सुखाय की थी, परन्तु नाना पुराण व निगमागम की सहायता लेना वे भी नहीं भूले हैं।

कृष्णायन काव्य परम्परा के समानान्तर ही कृष्ण चन्द्रिका काव्य परम्परा का आविर्भाव हुआ। वास्तव में केशवकृत रामचन्द्रिका की शैली के अनुसरण में कृष्ण चन्द्रिका काव्य परम्परा का सूत्रपात हुआ। इस परम्परा का जन्म शिव गुमान की कृष्ण चन्द्रिका से होता है। इस परम्परा के दूसरे प्रमुख कवि मोहनदास मिश्र है जिन्होंने संवत् 1839 में कृष्ण चन्द्रिका की रचना की थी। मिश्र बन्धु विनोद में राधा कृष्ण चौबेकृत कृष्ण चन्द्रिका का उल्लेख है। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में कवि रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ का आरम्भ संवत् 1956 में हुआ। इस कृष्ण चन्द्रिका में 90 अध्याय हैं। पूर्वार्द्ध में कृष्ण द्वारा उद्धव को पाण्डवों की सुधि लेने के लिये भेजने की कथा वर्णित है। उत्तरार्द्ध में जरासंध की कथा से लेकर मसल विहार की कथा है। कथा का आयाम बहुत विस्तृत है। प्राचीनकाल में भक्त कवि

कविता के लिये कविता नहीं करते है अपितु अपनी धार्मिक भावनाओं की तुष्टि के लिये करते है। भक्ति भावना के वशीभूत होकर ठाकुर रूपसिंह ने श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध के आधार पर कृष्ण चरित्र की रचना की। ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका में श्रीमद्भागवत की कथा का ज्यों का त्यों चित्रण नहीं हुआ है अपितु उसकी कथा में पर्याप्त भिन्नता है। कृष्ण चन्द्रिका पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव तो है ही, साथ ही सूरसागर भी कवि के लिये प्रेरणा-दायी सिद्ध हुआ है। कृष्ण चन्द्रिका के अध्ययन से स्पष्ट बोध होता है कि कवि सूरसागर से प्रभावित है। कतिपय स्थानों पर कवि ने सूरसागर से भाव ग्रहण किये हैं। सूरदासजी ने भागवत से चीर हरण, रासलीला तथा भ्रमर गीत की कथायें लेकर उन्हें अत्यन्त मौलिक व स्वतन्त्र रूप प्रदान किया है। सूरसागर की कुछ लीलायें ऐसी भी हैं जो भागवत में नहीं मिलतीं, जैसे राधा कृष्ण की संयोग लीलायें, पनघट प्रस्ताव, दानलीला, मानलीला, वसंत हिंडोल और फाग आदि। कवि रूपसिंह ने चीरहरण, रासलीला व भ्रमरगीत को ही अपने काव्य में स्थान दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया है उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना कोना वे झाँक आए।" ठाकुर रूपसिंह ने भी वात्सल्य व श्रृंगार के चित्र प्रस्तुत किये हैं, परन्तु उनके चित्रों में वह रसात्मकता व प्रभावोत्पादकता नहीं है जितनी सूर के चित्रण में। सूर ने बाल्य जीवन का जितना विशद् व विस्तृत चित्रण किया है उतना ठाकुर रूपसिंह ने नहीं, फिर भी उनके काव्य पर सूरसागर का प्रभाव है, देखिये :-

> मैया मैं तो चंद खिलौना लैहौं
> जैहौं लोट धरनि पर अबहीं तेरी गोद न ऐहौं
> सुरभि को पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं

ठाकुर रूपसिंह का चित्रण देखिये —

> कन्हियाँ लय कानहि माय खिलावै।
> निज चंदहि लेकर सौ बु लावै।।

ढिंग आवहु मोहन लाल बुलावे ।
तुम्हरे कर पंकज टीकव भावे ।।
सुन बोल उठे यह काहि न आवे ।
गहि मो कर दे कत दूर दिखावे ।।[1]

* * * *

देरो आनि यंदा नीक माखन हू मिलारी,
ले देख भुआ लागी कित जाये न रहोगे ।।
यह जब भाजन को कोरे अकलाये,
कुपे आवे नहीं हाथ लाहि कैसे के गहोगों ।।[2]

माता यशोदा कृष्ण को माखन चुराने पर डाँटती हैं तो सूर के कृष्ण कहते हैं —

मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो
भोर भयो गैयन के पाछें मधुबन मोहि पठायो
चार पहर बंसीवट भटको साँझ परे घर आयो

जब माता कृष्ण से कहती हैं कि अगर तूने माखन खाया नहीं है तो तेरे मुख पर कैसे लग गया तो कृष्ण कहते हैं —

"ग्वाल बाल सब बैर पड़े हैं
बरबस मुख लपटायो"

ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका की बाल चेष्टाओं पर सूर का प्रभाव है, देखिये :-

इस ये जाय हरिहि घर लीने ।
मातहि देख भये प्रभु दीने ।।
कहि जसुधा तू मटकी फोरी ।
खायो है नव नीतक मोरो ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका, ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-10, पृष्ठ-24.
2- ,, ,, अध्याय-10, पृष्ठ-24.

माखन ले सब सखन खवायो ।
तक सर्व आगन कारायो ।।
आज देखहों ढिठाई तोरा ।
जांनी नहि अवलो दिन मोरी ।।
रोवहि कर हा हा कावारी ।
मैं नहीं मटक फोर दधि डारी ।।
देरी देन छोड़ मुहि माई ।
किलकत बलकती दिलाई ।।[1]

माता यशोदा श्रीकृष्ण को दुग्ध पान करा देती हैं फिर पालने में लिटा देती हैं । श्रीकृष्ण पैर का अँगूठा मुख से चूसते हैं, देखिये :-

पय पान कराय सब पहुआई ।
सुत गोद झुलावत गावत माई ।।
किलके पलके निज रंगन खेले ।
पग को अँगूठा मुख में सुख मेले ।।[2]

इसी से मिलता जुलता सूरदासजी का एक चित्र देखिये :-

कर पग गहि, अँगूठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरषि हरषि अपने रंग खेलत ।

एक दिन कृष्ण को एक गोपी ने मक्खन चुराने के लिये मटके में हाथ डालते हुये उसे घर में पकड़ लिया तो गोपी कहने लगी —

पाये आजु अकेले घर में दधि-भाजन में हाथ ।
अब तुम काको नाम लेउगे नाहिंन कोउ साथ ।।

इतना सुनते ही सूर के कृष्ण कितना तर्क व चतुरता पूर्ण उत्तर देते हैं —

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-11, पृष्ठ-38.
2- " " अध्याय-9, पृष्ठ-27.

वर्ष गाँठ साज आज नन्द राज श्याम की ।
बाजनी तमोल बाँट बोल ग्राम ग्राम की ।।
गोप का प्रमोद बाय गावहीं बधावनो ।
दान जाय कान नन्द वर्ष मेखलावनो ।।[1]

महात्मा सूरदासजी ने बाल मनोभावों, बुद्धि, चातुर्य, स्पर्द्धा, खीझ, प्रतिद्वन्द्विता, अपराध करके उसे छिपाने एवं उसके बारे में कुशलतापूर्वक सफाई देने की प्रवृत्ति आदि के भी बड़े ही हृदयहारी चित्र अंकित किये हैं । यद्यपि ये समस्त चित्र ठाकुर रूपसिंहजी ने भी चित्रित किये हैं, परन्तु उनके वर्णन में सूर जैसा माधुर्य, चुटीलापन व स्वाभाविकता नहीं है । सूर ने बालकों की स्वाभाविक चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं के साकार रूप इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं कि उन्हें पढ़कर सहसा हृदय में वात्सल्य भाव उमड़ने लगता है । श्रीकृष्ण की किलकारी भरी हँसी एवं मणि जटित आँगन में अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने के लिये दौड़ने समय का चित्र भी बड़ा हृदयग्राही है ।

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नंद के आँगन बिम्ब पकरिबे धावत ।[2]

इसी चित्रण से साम्य रखता हुआ ठाकुर रूपसिंह का चित्रण देखिये :-

किलके मुख तोतर बैन पुकारो ।
प्रतिबिम्ब निहार धरे सकिलाते ।।
कब रूप अनूपम सुन्दर ताई ।
जसुधा छवि देख लगे उर लाई ।।[3]

इस प्रकार ठाकुर रूपसिंह के चित्रण पर सूर का पर्याप्त प्रभाव है । ठाकुर रूपसिंह ने अपने ग्रन्थ में भ्रमर गीत की भी रचना की है । उनके भ्रमरगीत प्रसंग पर भी सूर का पर्याप्त प्रभाव है । यद्यपि उनका भ्रमरगीत प्रसंग अत्यन्त

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-10, पृष्ठ-32.
2- सूरसागर - सूरदासजी.
3- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-10, पृष्ठ-31.

विस्तृत व विशद नहीं है तथापि विरह की भावना से परिपूर्ण है । सूर का विप्रलंभ बहुत विस्तृत व व्यापक है । वियोग की जितनी अन्तर्दशायें हो सकती हैं वे सब उनके वियोग वर्णन में विद्यमान हैं । सूर के विरह वर्णन में कुब्जा का भी नाम आया है । इसके कारण कुब्जा की बड़ी कलापूर्ण व्यंजनायें दृष्टिगोचर होती हैं । ये कृष्ण जिन्होंने गोपिकाओं का हृदय चुराया, एक साधारण कुबड़ी दासी के प्रेम जाल में फंस जाते हैं । इस पर देखिये सूर की गोपियाँ कैसी मीठी चुटकी व कुतूहलपूर्ण कृत्रिम संतोष प्रकट करती हैं ।

बरु ये कुबजा भलो कियो ।
सुनि सुनि समाचार ऊधौ । मो कछुक सिरात हियो ।।
जाको गुन, गति, नाम, रूप हरि हारयो फिरि न दियो ।
तिन अपनो मन हरत न जान्यो, हँसि हँसि लोग जियो ।।1.

कुब्जा हृदय की कैसी भाव प्रेरित वचन रचना है । कैसी वाग्विदग्धता है । ठाकुर रूपसिंह की गोपिकायें भी कुब्जा प्रसंग आने पर कैसा सन्तोष व्यक्त करती हैं, देखिये :-

कुबजा कूत सब काम नाच नचावत गिरधरहि ।
खोटो अपनो दाम, ऊधौ दोष न ब्योहरिय ।।2.

सूरदासजी ने भ्रमरगीत में सगुणोपासना का मंडन किया है । ठाकुर रूपसिंह भी सगुणोपासना के पक्षधर हैं । जब ऊधव गोपियों को निराकार ब्रह्म की उपासना का संदेश देते हैं तो निर्गुणोपासना की अव्यवहारिकता, असम्भवता एवं दुर्बोधता की ओर गोपियाँ कैसी झुंझलाहट व्यक्त करती हैं, देखिये — सूरदासजी का चित्रण :-

याकी सीख सुनै ब्रज को, रे ।
जाकी रहनि, कहनि अनमिल अति, कहत समुझि अति थोरे ।।3.

1- भ्रमरगीत सार - पृष्ठ-50.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-48, पृष्ठ-126.
3- भ्रमरगीत सार - महात्मा सूरदास, पृष्ठ-33.

अब ठाकुर रूपसिंह का चित्रण देखिये :-

पुन गुन मन गोपी कोप बानी उचारौ ।
सुन अबरज आवे बात तेरी अनारी ।।
गन अजान आने जोग ध्याने सिखावे ।
मधि तब कत वामे ध्याम धामे बतावे ।।
तब कुन रूप क्यों अर्थ बताकै ।
मृग जल कत जोवे जान्हवी तीर जाकै ।।[1]

सूरदासजी के भ्रमरगीत में विरह की समस्त अन्तर्दशाओं का चित्रण हुआ है, किन्तु ठाकुर रूपसिंह जी के भ्रमरगीत में वियोग का केवल बाह्य रूप ही दृष्टिगोचर होता है । उनके विरह वर्णन में तीव्रता व वेदना नहीं है । उद्धव श्रीकृष्ण का पत्र पढ़ने के पश्चात् गोकुलवासियों के द्वारा पूजित किया जाते हैं । उन्हें नाना प्रकार के भोजनादि से तृप्त किया जाता है, फिर बाबा नन्द व माता यशोदा व गोप-गोपिकायें श्रीकृष्ण को अपना सन्देश प्रेषित करवाते हैं ।

कवि रूपसिंहजी ने भ्रमरगीत प्रसंग की अरी तरह को ही स्पर्श किया है, वे उसकी गहनता में नहीं गये हैं । उनका उद्देश्य श्रीकृष्ण के जीवन के बहु आयामी चित्र प्रस्तुत करना है, वैसा ही उन्होंने किया है । यदि वे केवल विरह वर्णन में ही लीन हो जाते तो श्रीकृष्ण जीवन के दूसरे पहलुओं का वर्णन उतनी कुशलता से नहीं कर पाते जितनी कुशलता से उन्होंने किया है । अतः उन्होंने भ्रमरगीत प्रसंग को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सब उन्होंने सूरदासजी से प्रभावित होकर किया है ।

ठाकुर रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका पर श्रीमोहनदास मिश्र कृत् कृष्ण - चन्द्रिका का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है । संवत् 1839 में श्रीमोहनदास मिश्र ने कृष्ण चन्द्रिका महाकाव्य का प्रणयन किया था । उनकी कृष्ण चन्द्रिका में

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-48, पृष्ठ-129.

59 प्रकाश व लगभग 3800 छंद हैं । इस महाकाव्य में भी ठाकुर रूपसिंह कृत श्रीकृष्ण चन्द्रिका के समान कृष्ण के विवाह से लेकर प्रभासतीर्थ गमन तक की कथा को संयोजित किया गया है । मोहनदासकृत् कृष्ण चन्द्रिका में श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण है । इस कृष्ण चंद्रिका का भी आधार स्तम्भ श्रीमद्-भागवत है । श्रीकृष्ण प्रब्रम्ह परमेश्वर हैं । वे कंस, जरासंध, शिशुपाल प्रभृति राक्षसों से पीड़ित पृथ्वी की मुक्ति हेतु इस पृथ्वी पर जन्म धारण करते हैं । मोहनदासजी के कृष्ण प्रब्रम्ह के साथ-साथ बाल गोपाल भी हैं वे जनसाधारण के कृष्ण हैं । सबके आत्मीय हैं । ठाकुर रूपसिंह ने भी कृष्ण का चित्रण सर्वप्रथम बालक के रूप में तत्पश्चात् महावीर, पराक्रमी, युगपुरुष, अलौकिक ब्रम्ह के रूप में किया है । मोहनदास मिश्र के कृष्ण बाल्यावस्था में ही पूतना-वध, शकट भंजन, बकासुर, अघासुर आदि राक्षसों का वध करते हैं व मुख में ब्रम्हाण्ड का दर्शन कराते हैं । इसके अतिरिक्त ब्रम्हा, देवतागण तथा कथा के अनेक पात्र समय-समय पर उनकी स्तुति करते हैं । ठाकुर रूपसिंह के कृष्ण के साथ भी लगभग यही घटित होता है । मोहनदासजी के कृष्ण माता यशोदा को बाल्यावस्था में वात्सल्य सुख प्रदान करते हैं । ठाकुर रूपसिंह के कृष्ण भी ।

मोहनदास मिश्र का वात्सल्य रस से परिपूर्ण एक चित्रण देखिये :-

भोजन कौं टेरत जबै, मात तात ढिंग आई ।
धाई कबहु दुई भग कौं, फनुसित पकरति धाई ।।[1]

ठाकुर रूपसिंह का भी इसी भाव से साम्य रखता हुआ चित्र देखिये :-

भोजन को नदराय बुलावे । नहि आवे जसुमा गहि लावे ।।
ग्रास उठाय नंद मुख नावे । सुख समुद्र पितु मात नहावे ।।[2]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मोहनदास कृत कृष्ण चन्द्रिका का ठाकुर रूपसिंह कृत् श्रीकृष्ण चन्द्रिका पर यथेष्ट प्रभाव है । कृष्ण के नटखटपन से क्रोधित हो माता यशोदा उन्हें ऊखल से बाँध देती हैं । मोहनदास मिश्र का एक चित्र देखिये:-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - मोहनदास मिश्र, छन्द 62-63, पृष्ठ-4.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-11, पृष्ठ-36.

करि आप कछ करत हैं, करिहैं कृति गहि गाथ ।
सकल मनोरथ दास के, पूरन श्री ब्रजनाथ ।।
व्याकुलता लखही हरो यशुदा की नन्द नन्द ।
बाधि आप जननी करन भक्त चित्त आनन्द ।।[1]

ठाकुर रूपसिंहजी के कृष्ण को भी माता यशोदा ऊखल से बांध देती हैं ।

बाँधि जसुमति मात ऊखल ।
लागी अब कारज आप तबी कल ।।
देखे कृष्ण भूख आप मन हरि ।
जमेल तने यमलार्जुन त्वे कर ।।[2]

हिन्दी साहित्य में कृष्ण चरित्र में श्रृंगारिकता का प्राधान्य है । वे रसिक सहृदय व प्रेमी हैं । उनका अनन्त सौन्दर्य ब्रज के गोप-गोपिकाओं या बाल-वृद्धों सभी को सम्मोहित करता है । उनकी सौन्दर्येच्छा की पूर्ति हेतु श्रीकृष्ण शरद् की ज्योत्सनामयी रजनी में गोपिकाओं के साथ रासक्रीड़ा करते हैं ।

मोहनदासजी के कृष्ण शरद् ऋतु में गोपिकाओं के साथ रास-क्रीड़ा करते हुये कितने सुन्दर प्रतीत होते हैं, देखिये :-

मोहन श्री मनमोहन जु रस मन्दिर सुन्दरि संग विहारैं ।
भूषन नारिन के बहु भेद कहै कवि कौं लगि पावहिं पारैं ।।
टूट परे सिर फूलन हैं मुक्ताफल सो उपमा मन धारैं ।
पीतम संगमनो रति-तारक वान पिया उर भू पर डारैं ।।[3]

ठाकुर रूपसिंह ने भी शरद् ऋतु की ज्योत्सनामयी रात्रि में कृष्ण की रास लीला का श्रृंगारिक चित्र प्रस्तुत किया है ।

1- कृष्ण चन्द्रिका - श्रीमोहनदास मिश्र, छन्द 23-24, पृष्ठ-5.
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका- ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-12, पृष्ठ-38.
3- कृष्ण चन्द्रिका - श्रीमोहनदास मिश्र, छन्द-15, पृष्ठ-25.

सिय वृन्द अनन्द श्रृंगार बनायो ।
लइ रूप अनूप सुरौं सिर नायो ।।
तब आय गई बन के वर बाला ।
विरच्यो जब मंडल मंच रसाला ।।
नवरास विलास अरंभहि कीनो ।
सिव मोहन जुग-जुग गोपिन लीन्हो ।।
तिय कंठ भुजा पिय के गल बाँही ।
विहरे रस बसंत अंत तहाँही ।।[1]

ठाकुर रूपसिंह कृत् रासलीला पर मोहनदास जी की कृष्ण चन्द्रिका का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

मोहनदास मिश्र कृत् कृष्ण चन्द्रिका के कृष्ण धीरोदात्त नायक भी हैं, क्योंकि वे कंस दलन हेतु अपने प्रिय भूमि ब्रज को भी त्याग देते हैं । सर्व-शक्तिमान ब्रह्म होते हुये भी वे विनयशील व कृपालु हैं । नरकासुर के बन्दी-गृह से 16 हजार राजकुमारियों को मुक्त कराकर उनसे विवाह विषय लोलुपता के कारण नहीं अपितु उन्हें समाज में स्थान दिलाने हेतु करते हैं । कृष्ण नर या देवता किसी का भी गर्व सहन नहीं कर सकते हैं । इन्द्र के अभिमान को नष्ट करने हेतु वे ब्रजवासियों से उसकी पूजा बन्द करवा देते हैं । कुपित इन्द्र निरन्तर वर्षा करता है, परन्तु अन्त में पराजित होकर श्रीकृष्ण की शरण में आता है । तब कृष्ण इन्द्र से कहते हैं —

सुन वासव होत है मन ठानी ।
नहिं चित्त सुहात हमैं अभिमानी ।।
तन गर्व धरैं सुर हौं नर कोई ।
वह दूर करौं फिर होय सु होई ।।[2]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-34, पृष्ठ-37.
2- कृष्ण चन्द्रिका - श्रीमोहनदास मिश्र, छन्द-43, पृष्ठ-19.

मोहनदास की कृष्ण चन्द्रिका के उक्त चित्रण से साम्य रखने वाले चित्र ठाकुर रूपसिंह ने भी चित्रित किये हैं। जब इन्द्र कृष्ण की शरण में आता है तब ठाकुर रूपसिंह के कृष्ण भी लगभग यही बात इन्द्र से कहते हैं।

भूल मन गर्व नहि देखाति धारिये ।
दीन हित साध विप्र गाय पूत पारिये ।।
काम धुक देव तब रीझ सुत पायके ।
इन्द्र पूत भाव नदनंद मुसक्याइके ।।[1]

मोहनदासकृत् कृष्ण चन्द्रिका के कथानक का ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण-चन्द्रिका के कथानक पर पर्याप्त प्रभाव है। जिन जिन घटनाओं का संयोजन मोहनदासजी ने किया है उन्हीं का ठाकुर रूपसिंह ने भी। मोहनदास मिश्र जी के कृष्ण गोपिकाओं के साथ रास क्रीड़ा करते हैं,परन्तु गर्व करने से वे गोपिकाओं से भी छिप जाते हैं। देखिये उदाहरण :-

हरि केवल रीत रमैं रमनी,
मिलि कौटिक भाकन मोद मय ।
व्रजबाल सराहत भाग सबै,
उर अंकुर गर्वहु के उदय ।
मन मान सबै हमरे सम नाहिं,
पिया अधरैं विधि रूप दय ।
यह गर्व निवारन कों व्रज वल्लभ,
तन छन अंतरध्यान भय ।।[2]

ठाकुर रूपसिंह के कृष्ण भी गोपिकाओं के गर्व करने पर अपनी प्रिया सहित अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। देखिये उदाहरण :-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-28, पृष्ठ-78.
2- कृष्ण चन्द्रिका - श्रीमोहनदास मिश्र, छन्द-74, पृष्ठ-21.

किधौं नर गोपिनके हरि माने ।
मन गर्व बढ़ो अपने जन जाने ।।
गोपिन के मनकी गति जान लिये,
अनुमान कियो बनवारी ।
मोहि गनो किधौं नर नारिन,
मोह मढ़ी मन मान बिसारी ।।
या हित होइ सुअन्तरध्यान लहै,
जिहि जानहि आतम धारी ।
याहिक बोध प्रिया लखै ।
छिन अन्तरध्यान भय गिरधारी ।।[1]

मोहनदास मिश्र ने भी कृष्ण के पराक्रमी रूप का चित्रण किया है, उसी प्रकार ठाकुर रूपसिंह ने भी । कुवलयापीड़, गज, चाणूर, मल्ल, कंस, जरासंध, बाणासुर आदि के साथ युद्ध में कृष्ण की अदम्य वीरता दोनों ही कवियों की कृतियों में परिलक्षित होती है ।

दोनों ही कवियों ने चित्रित किया है कि जरासंध की सेना के संहार में समर्थ होने के उपरान्त भी कृष्ण उसका संहार स्वयं न करके भीम से करवाते हैं । वे भीम को द्वन्द्व युद्ध में मारने की युक्ति बतलाकर छल से उसका वध करवाते हैं और स्वयं को एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं ।

श्रीकृष्ण का जन्म कंस-वध हेतु ही हुआ है । मोहनदास मिश्र कृत कृष्ण-चन्द्रिका में कंस की रावण जैसी लोक विध्वंसक कुप्रवृत्तियों का समावेश नहीं है । कवि ने कृष्ण चन्द्रिका में कंस के अत्याचारों का विशद् वर्णन नहीं किया है । इसी प्रकार ठाकुर रूपसिंह ने भी कंस के अत्याचारों का विशद् वर्णन नहीं किया है । मिश्रजी ने कंस का चरित्र चित्रण बड़े ही स्वाभाविक व मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है । वह अपनी बहिन से बहुत स्नेह करता है, परन्तु

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-30, पृष्ठ-84.

देवकी के आठवें पुत्र से अपनी मृत्यु की आकाशवाणी सुनकर उसका स्नेह आक्रोश में परिवर्तित हो जाता है । उसमें उदारता की भी कमी नहीं है । वसुदेव द्वारा देवकी की सन्तान उसे समर्पित करने का वचन देने पर वह देवकी के वध का विचार त्याग देता है । वह अपने दोषों को सहज रूप से स्वीकार करता है । जब यशोदा से उत्पन्न कन्या हाथ से छूटकर उसके काल-कर्ता के उत्पन्न होने की सूचना देती है तो कंस निरपराध देवकी वसुदेव के छःपुत्रों के वध का पश्चाताप करता है । वह अपने अपराध स्वीकार करता है व विनय-पूर्वक वसुदेव देवकी को बन्धन मुक्त कर देता है ।

मनमलिन कंस आयो उदास ।
वसुदेव देवकी के सुपास ।
कर जोर कहैं तुम परम साधु ।
अपराध भयो मोतें अगाधु ।
तुम पुत्र हनें किनहीं विचार ।
यह दोषु भयो हमहीं अपार ।
विधि के लिखें मेटै न कोई ।
बलवान कर्म गति सहज होई ।
बहु भाँति विनय कर पानि जोर ।
वसुदेव देवकी कौ छोर ।।[1]

लगभग ऐसा ही चित्रण ठाकुर रूपसिंह ने किया है । देखिये उदाहरण :-

यो सुन कंसहि पै दुख छायो,
सुत दम्पति समीप चल आयो ।
निगड़ काट दोउन के दीने,
गहि पद विनय भाँति बहु कीने ।।
मै अति पाप कीन सुत मोर,
पै अब छिमा करु ओर हमारे ।

1- कृष्ण चन्द्रिका - श्रीमोहनदास मिश्र, छन्द- 15-17; पृष्ठ-3.

देवनि मोहि प्रकट कहि आयो,
दुष्ट भाव वश कर्म करायो ।।
अष्टम गर्भकाल मम भाखी,
कन्या भई कहा कुछ राखी ।
कुंवरन गई स्वर्ग का तोई,
याने मम अपराध न कोई ।।
कर्म कहो जग जीवहि जानो ।
दुख सुख हान लाभ फल मानो ।
जियन मरन संयोग वियोगा,
कर्म प्रधान भोग जग भोगा ।।[1]

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि ठाकुर रूपसिंह ने मिश्रजी की कृष्ण चन्द्रिका से अनेक भाव ग्रहण किये हैं ।

मोहनदास मिश्र ने कंस का चित्रण एक बुद्धिहीन व्यक्ति के रूप में किया है । विपत्ति के समय उसका विवेक नष्ट हो जाता है और वह अपने कुबुद्धिपूर्ण मन्त्रियों की परामर्श पर निर्भर रहता है । वह अदम्य वीर भी नहीं है । कृष्ण वध हेतु अनेक राक्षसों को भेजता है । कहीं से भी वह कृष्ण की प्रतिद्वन्द्विता के लायक नहीं है । कवि ने कंस को साधारण मानव के रूप में ही चित्रित किया है । ठाकुर रूपसिंह ने भी कंस चरित्र का चित्रण उपर्युक्त रीति से ही किया है अतः ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण चन्द्रिका पर मिश्रजी की कृष्ण चन्द्रिका का स्पष्ट प्रभाव है ।

मिश्रजी कृत् कृष्ण चन्द्रिका में माता यशोदा का हृदय कृष्ण पर विभिन्न प्रकार की आपत्तियाँ देखकर विदीर्ण होने लगता है । उन विपत्तियों को दूर करने के लिये वे विभिन्न प्रकार के पूजा-पाठ व दान-पुण्य करती हैं व चिन्ता करती हैं । ठाकुर रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका में भी माता यशोदा कृष्ण की विभिन्न प्रकार से चिन्ता करती हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-6, पृष्ठ-20.

देखे मृदु मुख श्याम को माता मन पछिताय ।
कैसे मो वारो बचै कुटन के समुदाय ।।[1]

अक्रूर आते हैं, श्रीकृष्ण बलदेव को अपने साथ मथुरा ले जाते हैं, माता यशोदा दुखित हो जाती हैं । दोनों ही कवियों ने पुत्र जन्य-वियोग का संक्षिप्त वर्णन किया है ।

मोहनदास मिश्र जी की कृष्ण चन्द्रिका से साम्य रखता हुआ वर्णन ठाकुर रूपसिंह ने किया है अतः ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका पर मोहनदास जी की कृष्ण चन्द्रिका का पर्याप्त प्रभाव है ।

इस बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि ठाकुर रूपसिंह ने अपनी मौलिक प्रतिभा बिल्कुल प्रदर्शित नहीं की है । ठाकुर रूपसिंह ने स्थान-स्थान पर अपनी मौलिक प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है और उनका ग्रन्थ मिश्रजी के ग्रन्थ से अधिक विस्तृत व व्यापक है । उसमें श्रीकृष्ण भक्ति की परम मंदाकिनी आद्योपांत प्रवाहित की गयी है ।

भाषा सम्बन्धी समीक्षा

भाषा भाव व विचारों की वाहिनी है । काव्य में भाषा का अपना स्थान होता है । ठाकुर रूपसिंह ने अपनी रचना में हिन्दी भाषा के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया है । भाषा के सम्बन्ध में वे दुराग्रही नहीं हैं । कृष्ण चन्द्रिका में उन्होंने प्रमुखतः अवधी, बुन्देली, ब्रजभाषा व खड़ी बोली का प्रयोग किया है ।

ब्रज भाषा :-

ठाकुर रूपसिंह के समय काव्य में अधिकांशतः ब्रजभाषा का प्रयोग होता था अतः ठाकुर रूपसिंह भी ब्रजभाषा से प्रभावित थे । उन्होंने अपने ग्रन्थ में

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-9, पृष्ठ-28.

पुष्टि ब्रजभाषा को प्रयुक्त किया है । उनके काव्य में ब्रजभाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है । तिवारी, निहारो, तासों, याके, जोग, भयो, रीस, ओढ़ि, ठौर-ठौर, दौर-दौर, बारो आदि ।

ब्रजभाषा का एक प्रयोग देखिये :-

हम स्यामहि ढूंढ़त ठौर ठौर ।
जन पूछहि फिर बर दौर-दौर ।।
सब कृष्ण प्रेम मद मत्त बाल ।
बन भ्रमै भनें हरि गुन रसाल ।।[1]

बुन्देली :-

रूपसिंह बुन्देलखंड के निवासी है अतः उन पर बुन्देली भाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । बुन्देली जन जीवन की भाषा होने के कारण स्वाभाविक मधुरता से परिपूर्ण है अतः ठाकुर रूपसिंह ने इस भाषा का अपने ग्रन्थ में अत्यधिक प्रयोग किया है । कुछ शब्द देखिये — ठांड़, गाड़े, पछार, ओढें, उसींसना, काढ़न, टटत, सुरतहिं, अवार, बैन, नाय, आय, होत, आपन हाल, भयो, दाऊजू, कीन, पठाकन, तेरो, बिसराई, सिय, हमरो, कछु, जात भए, लोय ययो, मोठिंग, लाबहु, परे हैं, पालो, बालो, कुबरन, सोई, तुम्हरे, बिमन, बाजो, बालन, पाकन, सब लो, बोलन, ठोलन, कुआकन आदि ।

बुन्देली भाषा का एक उदाहरण देखिये :-

जब ठाड़े भये राम कृष्ण
तहाँ कोप बोलो महामल्ल मल्लाकलो ।
सल्ल तो मल्ल बान्हराह मुटको दीन,
बड़ा बिलौं है कुदटावनो ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-31, पृष्ठ-85.

धाय मारो पछारो भिकारो,
धरो केश टारो बूझो कुन्ट मो कुटते ।
यो सुने केर आप सबै ओर तें,
ताल्के शब्द ज्यों गाजकी वृष्टि तें ।।[1]

बुन्देली भाषा का कवि ने साधिकार प्रयोग किया है । भाषा उनके भावों की अनुगामिनी है । भाषा प्रयोग में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । भाषा सर्वत्र प्रवाहमय है । उन्होंने परिनिष्ठित साहित्यिक बुन्देली का प्रयोग किया है । यत्र तत्र तत्सम शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

रूपसिंह ने भावानुसार ही शब्दों का चयन किया है । भाषा में चित्रात्मकता, प्रवाहमयता तथा क्रियाशीलता का दिग्दर्शन होता है । भाषा की चित्रात्मकता का एक उदाहरण देखिये :-

गए गज दन्तन के बिच श्याम ।
धरो अति सुन्दर रूप ललाम ।।
करे गहिवे कज कुण्ड गयंद ।
बढ़ावत हैं निज गात गुविन्द ।।
महा कृमि शोभा महीतल ल्याय ।
दए धरनी कस दन्त धसनाय ।।
उठे सब देव सुरीं नर नारि ।
कहें अब काह करे करतार ।।
कही गज वदथ शोभा उठाय ।
तबो भवि कूद परे यदुराय ।।[2]

प्रसंगानुसार कोमल व कठोर वर्ण प्रयुक्त हुये हैं । युद्ध की भयंकरता तथा ओजस्विता लाने के लिये कठोर वर्ण ट ड की आवृत्ति की गयी है । विरह-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-44, पृष्ठ-111.
2- ,, ,, अध्याय-44, पृष्ठ-111.

युद्धों व मार्मिक स्थलों के वर्णन में कवि ने कोमल शब्दों को प्रयुक्त किया है ।

"ड" वर्ण की आवृत्ति का एक उदाहरण देखिये :-

> फिरे बिन मुन्डन काटेन रुन्ड ।
> जिये कट अंग करे रवि वंड ।।
> परे कट शुन्ड करी नभकुन्ड ।
> चिकारत भाजत वीरन झुन्ड ।।
> परे रन वीर भये तन खन्ड ।
> धरे जन वर्ष भरे जन कमन्ड ।।[1]

युद्ध वर्णन में सजीवता लाने हेतु व ओजस्विता के प्रदर्शन हेतु "ट" अक्षर की भी बहुत आवृत्ति हुयी है । ल तथा न अक्षर की भी आवृत्ति बहुतायत से हुई है ।

> उलह उताल ब्याल भाल न गुलाल गोन,
> मंडाकन भार अंग धार अटियत है ।
> उदध उठाहिवे को चाहे शीश जोन नाग लागे,
> वर्म तोन फन पिठोली वटियत है ।।
> रितन केमकरा पै कमला गिरे लोहू किस,
> जमुना जल जाल रंग लाल पटियत है ।
> केई- केई ताल गति अद्भुत उताल प्रत भाल,
> पग ताल नाच ब्रज नटियत है ।।[2]

कवि ने मार्मिक स्थलों के वर्णन में कोमल शब्दावली को प्रयुक्तकर करुण व वात्सल्य की धारा प्रवाहित की है ।

> सुनत विलंल जमुना कहि ताता ।
> ते मम सुत मैं तेरी माता ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-51, पृष्ठ-134.
2- ,, ,, अध्याय-17, पृष्ठ-54.

करहु कोउ जाँव बलिहारी ।

मुख मुन परी न गिरा तुम्हारी ।।[1]

कवि रूपसिंह की भाषा उद्दाम गति से प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है । कहीं कहीं तो भाषा इतनी सजीव व चित्रात्मक हो गयी है कि लगता है कवि भाषा का नहीं अपितु भाषा उसके भावों की अनुगामिनी है । भावों के वेग के समक्ष शब्द स्वयमेव उमड़ से पड़ते हैं ।

कवि की भाषा में ओज गुण की प्रधानता है । कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के ओजस्वी रूप का वर्णन हुआ है अतः भाषा में ओज गुण की प्रधानता है । "गाढ़ बन्धत्व ओजः" अर्थात् रचना की गाढ़ता या गाढ़ बंधत्व ओज कहलाता है । ओज से मन में उमंग, उत्साह आदि का संचार होता है । ओज प्रधान भाषा में "ट" की अधिकता होती है । "र" के संयोग से बने शब्द प्रयुक्त होते हैं । दीर्घ समासिक शब्दावली का प्रयोग होता है । ठ,ढ, ण,ब जैसे कठोर शब्दों का प्रयोग होता है । ओजगुण हेतु कवि ने गौड़ी रीति,परुषा वृत्ति का प्रयोग किया है । परुषा वृत्ति में ट वर्ग, द्वित्व वर्ण (क्क, ग्ग, च्च, ट्ट, ड्ड, प्प) आदि प्रयुक्त होते हैं । संयुक्त वर्ण जैसे - (र्क र्ग र्व, द्र तथा स्र) आदि से युक्त तथा श,ष आदि परुष कठोर वर्ण और लंबे समास युक्त शब्द आते हैं । कवि ने अपनी भाषा में उक्त समस्त कठोर वर्णों को प्रयुक्त किया है । क्क का प्रयोग देखिये :-

"भभक्कत ज्यों गिर निर्झर भूम"[2]

ट का प्रयोग--

"करे कुन कुट बली सुर देव"[3]

र के संयोग से बने शब्द का प्रयोग--

"गर्द गुब दुर्मत लोट बहारे"[4]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-11, पृष्ठ-37.
2- ,, ,, अध्याय-65, पृष्ठ-202.
3- ,, ,, अध्याय-65, पृष्ठ-202.
4- ,, ,, अध्याय-65, पृष्ठ-202.

स्थ का प्रयोग —

"गर्व अग बाँतिन लुटकन रैंच"[1]

ज्व का प्रयोग —

भव उठ कल सज्जल पुन पुन काज्जल[2]

इस प्रकार कवि ने भाषा में भी चमत्कार भर दिया है । उसकी भाषा को पढ़ते ही शिराओं के रक्त संचार में वृद्धि हो जाती है । कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है । कवि ने अपनी लेखनी से बुन्देली भाषा की श्रीवृद्धि की है । उसके भण्डार को भरा है । कवि की शब्द योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट व शब्दों की ध्वनि श्रेष्ठ है । कृष्ण चन्द्रिका में तालव्य "श" के स्थान पर दन्त "स" का अधिक प्रयोग हुआ है ।

जन मित्र बन्धु कुल कुटम नास ।
कुरु पंड वंश की सुमति वास ।।[3]

कवि ने व शब्द को भी बहुत प्रयुक्त किया है । देखिये उदाहरण —

"देव गेह सनेह पूत, करिय चित्त भुजान"[4]

ल के उच्चारण में र को प्रयुक्त किया है ।

तारी दे दे हंसहिं गुवाला
देहि विपुल बोवामहिं गारी ।[5]

ब्रजभाषा व बुन्देली के अतिरिक्त कवि ने अरबी भाषा का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-65, पृष्ठ-202

2- ,, ,, अध्याय-56, पृष्ठ-150

3- ,, ,, अध्याय-79, पृष्ठ-239

4- ,, ,, अध्याय-87, पृष्ठ-269

5- ,, ,, अध्याय-17, पृष्ठ-52.

अवधी :-

रूपसिंह जी ने राम काव्य परम्परा से प्रभावित होकर ग्रन्थ में अवधी भाषा का भी प्रयोग किया है । कृष्ण चन्द्रिका में अवधी भाषा के अनेक शब्द दिखायी पड़ते हैं जैसे - बैन, अवलोकहिं, जिन, तिन, जिन्हहुं, पायउ, कुलाउ, पुरवाई, कुलायउ, बहुर, करहिं, मोसो, दुखी, कह, तोरे, करहु, अरु, रखहु, भूरो, अधिकाई, कीनो, दीनो आदि । अवधी का एक प्रयोग देखिये :-

> "शिशु सब केहु मगन है रहेऊ
> आप टार जमुनहिं मे गयेऊ ।"[1]

तत्सम शब्दों का प्रयोग :-

कवि ने यत्र तत्र खड़ी बोली का भी प्रयोग किया है । तत्सम शब्दावली कुल, मृग, द्विज, वक, ग्राह्य, सर्वदा, कूल, भ्रम, दुग्ध, सुग्म, विराट, ~~ग्रन्थ~~ (ग्रंथित), निर्गुण, मृत्यु, पूर्वोक्त, निष्ठुर, वीर्य, चरण, शोभा, मूलक, निर्भय, विद्यमान, विग्रह, दुर्वचन, दिव्य दृष्टि, दुर्भय, कर्म, नृप, विषम, ज्वर आदि का भी प्रयोग किया है ।

संस्कृत के अर्ध तत्सम शब्द :-

कवि ने तत्सम शब्दावली का प्रयोग इस प्रकार किया है कि वे अर्ध तत्सम जैसे हो गये हैं । जैसे - कारन, सरवग्य, धारन, धर्म, कर्मन, दुष्कर्म, पूर्व, तादृश, कर्म, हिरनाकुस, उत्कृष्ट, वर्न, गुनग्राही, स्वगुन, आतम, परमान, व्यापिक, निर्वान, मरन, जोगिन आदि संस्कृत के अर्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-17, पृष्ठ-52.

लोकोक्तियों का प्रयोग :-

कवि ने भाषा को सजीवता प्रदान करने के लिये अनेकों युक्तिसंगत लोकोक्तियों का प्रयोग किया है । लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सुंदरता आ जाती है । बुन्देलखण्ड में कतिपय विशेष लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं,कवि ने उनका प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है । देखिये उदाहरण :-

"छोटो आनो दाम, उधो दोष न बोहरिय ।"[1]
" कूट कुन्दता तजत न काउ"[2]
होनहार विधि कर्म सजोगा ।
को कुछ मेट सकै यह रोगा ।।[3]

इस प्रकार कवि ने अपनी भाषा को जीवन्त बनाने का प्रयास किया है । भाषा चाहे अवधी हो या बुन्देली या ब्रजभाषा,भाव सौष्ठव में पूर्णतया उपयुक्त है । कवि ने उक्त तीनों ही भाषाओं के भंडार में अपना मनोयोगपूर्ण योगदान दिया है । इसके लिये कवि प्रशंसा का पात्र है ।

(ख) - काव्य सौष्ठव

कृष्ण चन्द्रिका में काव्य सौष्ठव :-

ठाकुर रूपसिंह जी में काव्य प्रतिभा नैसर्गिक थी, जो भक्ति के उद्रेक से खिल पड़ी थी । यही कारण है कि उनके काव्य में कृष्ण एवं तत्संबंधी वस्तुओं के प्रति आकर्षण में एक तल्लीनता है । उनकी कविता में ब्रजभाषा, बुन्देली और खड़ी बोली का प्रयोग अपने अकृत्रिम रूप में हुआ है तथा भावों का नियोजन भी सरल स्वाभाविक एवं सर्वथा मौलिक रूप में हुआ है । उनका वात्सल्य वर्णन,बाल-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-48, पृष्ठ-126
2- ,, ,, अध्याय-49, पृष्ठ-129
3- ,, ,, अध्याय-50, पृष्ठ-131

केटा वर्णन, युद्ध वर्णन, वियोग वर्णन, श्रृंगार वर्णन, प्रकृति चित्रण आदि सभी अलौकिक हैं। बीसियों पदों में उपर्युक्त वर्णन बड़े अच्छे ढंग से हुये हैं। श्रीकृष्ण चन्द्रिका का कथानक भागवत के दशम् स्कन्ध पर आधारित है। श्रीकृष्ण चंद्रिका में दार्शनिक विचारों का ही प्राधान्य नहीं है, अपितु उसमें भक्ति का भी समावेश है। इसमें ज्ञान व कर्म दोनों को पर्याप्त महत्व दिया गया है। भागवत के अनेकों प्रसंगों को कवि ने अपनी मौलिक कल्पना के आधार पर विकसित किया है,यथा गोचारण, यमलार्जुन-शापमुक्ति, कालियदमन, गोवर्धन लीला, कंस वध, रासलीला, उद्धव-गोपी संवाद, चीर हरण आदि। कृष्ण की बाल लीला का चित्रण करते हुये कवि ने वात्सल्य का जैसा निरूपण किया है वह अनुपमेय है। कवि ने श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का चित्रण किया है, यद्यपि यह सूर जैसा व्यापक नहीं, परन्तु उत्तम है। कवि ने कृष्ण को अवतारी पूर्ण परब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। कवि ने प्रकृति सौन्दर्य के भी मनोहारी चित्र खींचे हैं। कला की दृष्टि से रसों के चित्रण में माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुणों तथा परुषा एवं कोमल वृत्तियों की योजना बड़ी सुन्दर हुयी है। श्रीकृष्ण चन्द्रिका ग्रन्थ में माधुर्य, करुण, वीर, भयानक एवं ओजगुण की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुयी है। वस्तु वर्णन एवं रस व्यंजना के अतिरिक्त कृष्ण चन्द्रिका में अलंकारों की योजना भी बड़ी मनोहर है।

ठाकुर रूपसिंह एक भक्त कवि हैं, अतः उनके काव्य में भक्ति भावना का पूर्ण परिपाक हुआ है। वे एक सहृदय व भावुक व्यक्ति थे अतः उनका ग्रन्थ भाव पक्ष की ओर से भी अत्यधिक सफल है।

श्रीकृष्ण चन्द्रिका काव्य का भाव पक्ष :-

कवि हृदयग्राही स्थलों से परिचित है। कवि ने अपने काव्य में महत्वपूर्ण रसों का सुन्दर संयोजन किया है। उन्हें मानव जीवन की विविध दशाओं का ज्ञान था। आचार्य शुक्ल के अनुसार "जिस रचनाकार को मार्मिक स्थलों की जितनी गहरी पहचान होगी और उन्हें व्यक्त करने की जितनी समर्थ क्षमता होगी उसका काव्य उतना ही श्रेष्ठ और प्रभावशाली होगा।" कृष्ण चन्द्रिका में

हृदय को स्पर्श करने वाले अनेकों मार्मिक स्थलों की सृष्टि हुई है । इन मार्मिक प्रसंगों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है :-

कृष्ण चन्द्रिका में मार्मिक प्रसंग

पूतना प्रसंग :-

पूतना का कंस की आज्ञा से सुन्दर वेश धारणकर ब्रज जाना, कृष्ण को विषाक्त स्तन्य पिलाने की चेष्टा करना, कृष्ण द्वारा दूध के साथ उसके प्राणों का आकर्षण करना, उसकी चीत्कार का ब्रज से दो कोस दूर भयंकर रूप में सुनाई देना, उसकी भयंकर, कर्कश, आवाज सुन समस्त ग्वाल बालों का दौड़ना उसी समय कृष्ण की चिन्ता में माता यशोदा का मार्मिक विलाप करना लोगों के हृदय को प्रभावित करता है । कवि ने इसका बड़ा मार्मिक चित्र अंकित किया है ।

जसुधा अरु रोहिनि रोवत धाई ।
कहि मोहन मोहन आतुरताई ।।
जंह प्रान विहाय परी भयकारी ।
तिनके तिहके उर पै बनवारी ।।
हुल भाय उठायके कंठ लगाये ।
मुख चूम बलाय ले नैन जुड़ाये ।।
पुरके नरनार सुने सब धाये ।
गन बालक वृद्ध युवा जुर आये ।।
तिह देख कहैं सब लोग पुकारी ।
विधि रक्ष करी यह राक्षस नारी ।।
तबलौं नन्दराय तहाकन आये ।
मथुरापुर ते ब्रज गोप बुलाये ।।[1]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-8, पृष्ठ-23.

यशोदा का द्रुतगति से बालकृष्ण को उठाना, हृदय से लगाना, मुख चूमकर बलायें लेना, उनकी व्याकुलता के परिचायक हैं। माता को सदैव ही अपने पुत्र के हित की चिन्ता लगी रहती है। अपने बालक पर आपत्ति आयी जानकर वह अत्यन्त व्याकुल हो जाती है। उसके व्यथित हृदय के सुन्दर चित्र कवि ने अभिव्यक्त किये हैं।

कालियमर्दन प्रसंग :-

कालियमर्दन के प्रसंग में भी कवि ने मार्मिकता का परिचय दिया है। यशोदा, ग्वाल बाल सभी प्रलाप करते हैं। कंस द्वारा नन्द बाबा से कालियदह के कमल पुष्प माँगने पर नन्द बाबा के व्यथित व चिन्तित होने पर कृष्ण जान-बूझकर यमुना में गेंद फेंक देते हैं व उसे निकालने के बहाने यमुना में कूद पड़ते हैं। यह देख कुछ ग्वाल बाल तुरन्त नन्द यशोदा को बुलाने पहुँच जाते हैं। यशोदा माता सूचना प्राप्त करते ही नन्द बाबा व ग्वाल बालों के साथ यमुना-तट पहुँच जाती हैं व विलाप करती हैं। कृष्ण को जल में प्रविष्ट जान व कालीनाग की भयावहता एवं आशंकाओं से भयभीत ब्रज के नागरिक व्याकुल हो जाते हैं। कोई मूर्छित हो जाता है तो कोई चीत्कार करता है, तो कोई गुहार लगा रहा है। सभी की स्थिति बड़ी विचित्र है।

> अहि दहि हरि पैठे केश जागो गुहारो।
> कुल मुरिछ गिरी है कैन को प्रहारो ।।
> कुर पूर नर नारी घेर के तीर ठाड़े।
> अति विकल वियोगे नीर नैनाम बाढ़े ।।
> कुल विरह विरवादे मृत्यु मातामिलाषी।
> दहि गिरत विलोकी धाय गोपीन राखी ।।
> बल कर धर राखे नन्द को गोप सोई।
> हरि विरह अथाहे सिन्धु में मग्न होई ।।[1]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-17, पृष्ठ-55.

कृष्ण के वियोग में माता यशोदा की दशा अत्यन्त करुण हो जाती है, वे बारंबार कृष्ण-कृष्ण पुकारतो अचेत हो जाती हैं । इस स्थल पर कवि ने मातृ हृदय की समस्त करुणा, वात्सल्य, ममता तथा दया उड़ेल दी है । वात्सल्य रस का यह अति मार्मिक चित्रण है ।

रास प्रसंग :-

कृष्ण चन्द्रिका में रास प्रसंगों में गोपिकाओं की कृष्ण के प्रति मिलनोत्सुक व्याकुलता का हृदय स्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया गया है । चीर हरण के पश्चात् कृष्ण गोपियों को वचन देते हैं कि वे कार्तिक मास में उनके साथ रासलीला कर वांछित सुख प्रदान करेंगे । उसी दिन से गोपिकायें शरद् ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगती हैं ।

> तबते गोपी तन मन भोर ।
> दिन काटहि ज्यों त्यों मदन पोर ।।
> सब गौर मनावहिं जोर हाथ ।
> कब आई सुखद ऋतु शरद रात ।।[1]

ज्यों-ज्यों कार्तिक मास समीप आता है त्यों-त्यों गोपियों को दिन भारी लगने लगते हैं । उन्हें काम पीड़ा सताने लगती है । वे व्याकुल हो मनौती करती हैं कि कब कार्तिक आये और कब उन्हें अपने प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त हो । ठाकुर रूपसिंह ने गोपियों की मिलनोत्सुक विकलता का बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है ।

> संयोगिन को सुख देत भूर । कर विरही जनमन अगन पूर ।।
> दिस दसहुन ते अनुराग पूप । मनमनचित आगत समय भूप ।।[2]

विरह प्रसंग :-

विरह प्रसंगों में कवि ने अन्तर्जगत् के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं । कृष्ण चन्द्रिका में कवि ने दो स्थलों पर विरह प्रसंग वर्णित किये हैं, एक तो श्रीकृष्ण के रासलीला के मध्य अन्तर्ध्यान हो जाने पर, दूसरा मथुरागमन पर । ऐसा प्रतीत

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-30, पृष्ठ-81
2- ,, ,, अध्याय-30, पृष्ठ-81

होता है गोपियों के रुदन के रूप में कवि की अभिव्यक्ति प्रकट हुयी है। कृष्ण-प्रदत्त वचन के अनुसार गोपिकाओं के साथ कार्तिक मास में रासलीला करते हैं। गोपियों द्वारा गर्व करने पर वे अपनी प्रिया सहित अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। मदोन्मत्त गोपिकायें अपने बीच कृष्ण को न पाकर विक्षिप्त-सी यहाँ-वहाँ भटकने लगती हैं। वे व्याकुल हो वन में जड़जीव सभी से कृष्ण का ठिकाना पूछती हैं।

हम श्यामहि ढूँढत ठौर-ठौर।
बन पूछहि फिर फिर दौर-दौर।।
सब कृष्ण प्रेम मद मत्त बाल।
बन भ्रमें भ्रमें हरि गुन रसाल।।[1]

कृष्ण के चरणों के चिन्ह देखतीं वे इधर उधर भटकती हैं। कृष्ण के प्रिया सहित अन्तर्ध्यान हो जाने पर गोपियों के सौतिया डाह का चित्रण कवि ने मार्मिक दृष्टि लेकर किया है।

मग माहि कृष्ण पग चिन्ह देख। जग मगत पद्म धुज कुलिश रेख।
जिह रूप कूं खोजत सर्वकाल, तिहि देख हरखत कौन बाल।।[2]

सौतिया डाह का चित्र देखिये :-

जब जब जाकीकी पाद पद्म निहारे।
तब तब महिमाही भामिनी गर्व भावे।।
सई अति सुखदानी जान ताकी सभागी।
कहि धन-धन सोई पीय की सानुरागी।।
कछु मग का जो कंत पुरबे लतारी।
वक इन अब सोके साचरो वारनारी।।
मधि निकट बराउ सनि दृष्ट देखी।
तिह धर पूछे स्याम सोधे विशेखी।।[3]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-31, पृष्ठ-85
2- ,, ,, अध्याय-31, पृष्ठ-85
3- ,, ,, अध्याय-31, पृष्ठ-86

अन्त में गोपियों का शरीर विरहाग्नि में दग्ध होने लगता है तब कृष्ण गोपियों के प्रेम को देखकर पुनः प्रकट हो जाते हैं और गोपियाँ कृष्ण रूपी अमृत पान कर निहाल हो जाती हैं।

शरणागत मनकूल वचन जान ।
तिहि त्यागत कत करुणानिधान ।।
जन वत्सल वेदन विदित वान ।
कुछ नीचे दीखे दशा आन ।।
यह भाव हीन गति हीन होय ।
विरहाग जाग नहि धीर होय ।।
वहि वाल दशा तिहि काल जोय ।
यहको विरह अति अधिक होय ।।
पुन तासु वदन ते प्रकट श्याम ।
सब आई ढूंढत कुलीं श्याम ।।
मिल प्रियहिं परम आनन्द मान ।
जनु मिलो गई निधि अधुर बान ।।[1]

दूसरे स्थल पर कृष्ण मथुरा प्रस्थान करते हैं व समस्त गोपियों की विरह पीड़ा चरम सीमा पर पहुँच जाती है। वे अक्रूर के प्रति रोष प्रकट करती हुयी अपने प्रेम की सौगंध कृष्ण को देती हैं। विरह पीड़ा सहने की आशंका मात्र से वे भयभीत हो जाती हैं।

चितवहि दृग जोरें चन्द कौं ज्यों चकोरें ।
प्रभु बिन यह घोरें क्यों सहैं प्राण मोरें ।।
हम कुल अराधे आप लाधें बिसारो ।
पिय विरह अगाधें सिन्धु बाधे न आरो ।।
पल-पल कर प्रीते नेह नीते छुड़ावै ।
अब निठुर भए हो देत पीठे कन्हाई ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-31, पृष्ठ-86.

तुम बिन नन्दलाला सबाला अनाहे ।
बिन लखिहि जु साईं जीय पावें न हाईं ।।
कृत स्वनहि मारे बहु छूटे पनोर ।
कृत जनु तनु मारे आज होवे हमारे ।।[1]

रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका में गोपियाँ विक्षिप्तावस्था में बारम्बार प्रलाप करती हैं कि हे कृष्ण हमें भी अपने साथ मथुरा ले चलो अन्यथा हम विरहाग्नि में जलकर भस्म हो जायेंगी । कृष्ण के गमन करने के पश्चात् वे बावरी-सी पथ में खड़ी होकर उनके दिखायी पड़ने तक उन्हें निहारती रहती हैं । वास्तव में गोपियों की विरहदशा अत्यन्त करुणीय है ।

खड़ी बिहाल और बार ग्वाल भेक टारती ।
न नैन कोर मोर हीं करोरतीं निहारती ।।
हमें लिवाय साथ नाथ माथुरैं पधारिये ।
अधीन दीन मीन कौन नीर तें निकारिये ।।[2]

कृष्ण के मथुरा प्रस्थान के समय माता यशोदा अत्यन्त व्याकुल हो अपने प्यारे दुलारे कृष्ण को बार-बार गले से लगाती हैं और कहती हैं कि अब मैं किसे माखन खिलाऊँगी, इसी प्रकार नन्दबाबा व समस्त ग्वाल बाल स्वयं को कृष्ण के बिना अनाथ महसूस करते हैं । कवि रूपसिंह ने इस प्रसंग में बड़ा भावुकतापूर्ण चित्रण किया है ।

तहो सशोक माय ले कन्हाय अंकलाईयो ।
सनेह मेह कर्म भाव लाल आसु बाहयो ।।
बिलोक चोल बाको न लाल देख पायहौं ।
सिलोक चोल कौ सौंनि आयु मैं गमायहौं ।।[3]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- 40, पृष्ठ-102
2- " " अध्याय-40, पृष्ठ-102
3- " " अध्याय-40, पृष्ठ-102

माता पुत्र को कंस से बैर न करने का परामर्श देती हैं साथ ही राह के लिये कलेऊ भी बाँध देती हैं। माता को अपने पुत्र के हित की बड़ी चिन्ता है।

सुत कंस पुरोहित बैर न कीजो।
जननी सुत आतुर आय कुलीजो।।
जितने दिन वास करो पुर तेऊ।
तितने दिनको सुकलेऊ कलेऊ ।।
अब आज अनाथ भयो यह गाऊं।
तुम जात जहाँ धन है वह ठाऊं।।
फिरहै कब भाग दशा बिध मोरी।
दिखहौं जब नैन मनोहर जोरी।।
हम गोउ आसीस दई बहु भाँती।
दृग वारि बहै नहि तोष्न छाती।।
लख भाय दुखी दिग आय कन्हाई।
गहि पाँन भयो विधि बोध पठाई।।[1]*

उपर्युक्त वर्णन बड़ा ही मार्मिक, स्वाभाविक व हृदय को प्रभावित करने वाला है। वास्तव में रूपसिंह जी एक भावुक कलाकार हैं।

रुक्मिणी प्रसंग :-

कवि ने रुक्मिणी प्रसंग में प्रेमी हृदय की कातरता का हृदयग्राही चित्रण किया है। नारद मुनि के माध्यम से कृष्ण और रुक्मिणी में प्रेमोदय होता है, परन्तु रुक्मिणी के भ्राता रुक्म के द्वारा उसका विवाह राजा शिशुपाल से तय कर दिया जाता है। रुक्मिणी एक ब्राह्मण के द्वारा सन्देश भिजवाती है। निश्चित् तिथि को शिशुपाल बारात लेकर आ जाता है,परंतु कृष्ण का आगमन नहीं हो पाता। यह जानकर रुक्मिणी अत्यन्त व्याकुल हो जाती है।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-40, पृष्ठ-102

सोचै विचार उर व्याकुल होत भाय ।
आये न प्राणपति कौन भाय ।।
कीनी पुकार अबकी दुख दास पाय ।
राखी विशेष लखकी कृपा नाह गाय ।।
कीनी अबेर मन बेर विचार काय ।
कै छोड़ बैठ विरदावल बान आय ।।
आयो सुनो मगधराज मनै विचार ।
कै त्याग दीन पन आपुन नान हार ।।
कैसी करौं दई कौं सुध लेहु जाय ।
का होय मोय यह अवसर मैं सहाय ।।
देखै गयो उझक नैन चले निवार ।
झाँकि झरोख फिरि आवै पुल बार बार ।।[1]

रुक्मिणी अत्यन्त व्याकुलता के साथ कृष्ण की प्रतीक्षा करती है । वह शंकित है कि कहीं कृष्ण ने उसे भुला तो नहीं दिया । व्याकुलता के कारण वह बारंबार झरोखों से झाँक जाती है । रुक्मिणी सोचती है, यदि आज नाथ नहीं आये तो मेरे प्राण निकल जायेंगे ।

जो आज मोहि हरि देहिं न दर्श आय ।
तो प्रान प्रान पति प्रात प्रभात जाय ।।[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में रुक्मिणी की कृष्ण से मिलनोत्सुक व्याकुलता का उत्कृष्ट चित्रण किया है ।

रुक्मिणी की प्रेम परीक्षा के अवसर पर भी कवि ने रुक्मिणी की व्याकुलता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । कृष्ण रुक्मिणी से परिहास करते हैं कि अगर वे शिशुपाल जैसे बलवान राजा से विवाह करतीं तो अति उत्तम होता । कृष्ण के ऐसे वचन सुनते ही रुक्मिणी व्याकुल हो मूर्छितावस्था में पृथ्वी पर गिर पड़ती है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-56, पृष्ठ-146
2- ,, ,, अध्याय-56, पृष्ठ-146

ब्रजागमन प्रसंग :-

कृष्ण बलराम द्वारा कंसादिक राक्षसों का वध करने के पश्चात् कृष्ण नंद तथा ग्वाल बालों को वापस ब्रज जाने को कहते हैं, किन्तु नन्द तथा ग्वाल बाल नहीं मानते हैं तब कृष्ण उन्हें समझाते हैं कि ब्रज में माता यशोदा अकेला होंगी । मैं कुछ दिन यहाँ रहकर वापिस आ जाऊँगा । अतः आप सब अभी जायें । यह सुनते ही नन्द तथा ग्वाल बाल अचेत हो जाते हैं ।

> कृष्ण विरह अति भय अचेता ।
> नन्द गोप सब सखा समेता ।।
> देख दशा प्रभु अस अनुमाना ।
> मम वियोग नहिं राखहिं प्राना ।।[1*]

नन्द तथा गोपों की दशा देखी नहीं जाती किसी तरह समझाने - बुझाने पर नन्द गोपों सहित ब्रज लौट जाते हैं । इधर कृष्ण के न लौटने पर माता यशोदा का हृदय चीत्कार कर उठता है । वे बारंबार नन्द बाबा से पूछती हैं । मेरे लाल को कहाँ छोड़ आये ? कृष्ण बिना मेरे दिन कैसे व्यतीत होंगे ? नन्द के समझाने पर कि कृष्ण पुनः ब्रज वापस आयेंगे, माता यशोदा को सन्तोष नहीं होता है ।

> बिछुरत कठिन सुमति जब कान्हा ।
> सिथो सियो सत कुलिश समाना ।।
> बिन गुपाल कैसे दिन कटहीं ।
> बिन देखे बिन छाती फटहीं ।।[2*]

कामदेव द्वारा प्रदीपित गोपिकाओं की विरह पीड़ा और अधिक बढ़ जाती है । कृष्ण लीला में प्रबुद्ध कवि सूर ने सूरसागर में इसी प्रकार नन्दादि के ब्रजागमन पर ब्रजवासियों की मर्मस्पर्शी भावनाओं का संयोजन किया है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर स्वरसिंह, अध्याय-46, पृष्ठ-117

2- ,, ,, अध्याय-46, पृष्ठ-117

उपर्युक्त प्रसंगों से स्पष्ट हो जाता है कि रूपसिंह जी एक भावुक कवि थे उन्हें मर्मस्थलों की अच्छी पहचान थी । इन मार्मिक स्थलों की अच्छी पहचान के कारण रूपसिंह जी की यह कृति अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गयी है ।

बाल चेष्टाओं व क्रीड़ाओं का वर्णन

ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका काव्य में बाल चेष्टाओं एवं बाल-क्रीड़ाओं का बड़ा स्वाभाविक, सरल एवं मनोहारी चित्रण किया है । इन्होंने जो कुछ साधारण बालक के जीवन में देखा तथा जो नेत्रहीन सूर ने अपने सूरसागर में चित्रित किया, दोनों का अद्भुत सम्मिश्रण कृष्ण चन्द्रिका में प्राप्त होता है । अतः कृष्ण चन्द्रिका में नेत्रहीन सूर के अन्तर्दृष्टि तथा नयनधारी रूपसिंह की अनुभूति दोनों ने मिलकर काम किया है । कृष्ण की बाल सुलभ शरारतों की शिकायत एक गोपी माता यशोदा से करती है ।

लेहु उराहन आपुन लालहिं ।
कौन भाँ इन मोहर वालहि ।।
लेहु सखा दधि माखन खाफड़ ।
रोष सखे धरनी बगराफड़ ।।[1]

श्रीकृष्ण किसी गोपिका के घर में प्रवेश कर जाते हैं । सभी सखाओं को भी बुला लेते हैं । माखन खाकर मटकी तोड़ देते हैं ।

गोपी निकेत हरि कीन प्रवेश भोर ।
लीने सखान सा माखन खाय चोर ।।
दीनो बहाय कुछ गोरस माठ फोर ।
डारे भिगोय लरका कर घोर घोर ।।
दे हाँक द्वार भागे आई गुवाल ।
गाढ़ी भुजाहि गहि लीन्हि नंदलाल ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-13, पृष्ठ-42

देखी बखोर घर भीतर जाय हाल ।
फूटे मथान दधि तक विशाल वाल ।।[1]

शिकायत सुन माता यशोदा डाँटती फटकारती हैं तो श्रीकृष्ण अपनी गलती न मान बड़ा सुन्दर बहाना गढ़ते हैं ।

सुन बोल उठे तब मै दधि लायो । यह टेर कहीं मिस गेह बुलायो ।
दधि औटन से लरीक अघाई । सब बांध उतार उघार कराई ।।[2]

बेचारी गोपी अपना सा मुँह लेकर रह गयी ।

बालक जैसा बड़ों को देखते हैं वैसा ही करने की चेष्टा करते हैं । श्रीकृष्ण भी अन्य ग्वाल बालों को जब गोचारण के लिये जाते देखते हैं तो स्वयं भी हठ कर बैठते हैं ।

एक दिन कान मात ढिंग आई ।
बोले बचन मधुर तुतराई ।।
आज कहि बछरन को जैहों ।
दाउ की साथ घर ऐहों ।।
कहि जसुधा सुन प्राणन प्यारे ।
ग्रह बहु दास बरावन वारे ।।
बन अति दूर जाओ तुम बारो ।
खेलहु भवन भात बलवारी ।।
सुन बोले पठिवहि नहि जोई ।
भोजनपान करै नहीं कोई ।।
तब हठ जसुधा गोप बुलाये ।
खेलहि बछन की अनुरागे ।।[3]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-13, पृष्ठ-42
2- ,, ,, अध्याय-13, पृष्ठ-42
3- ,, ,, अध्याय-13, पृष्ठ-44

यद्यपि ये समस्त चित्र सूरदासजी के सूरसागर के चित्रों से मिलते-जुलते हैं तथापि कवि का प्रयास सराहनीय है । कवि ने सूरदासजी के समान बाल चेष्टाओं और बाल क्रीड़ाओं का विस्तृत चित्रण नहीं किया है,जो भी किया है उत्कृष्ट है ।

वात्सल्य रस का चित्रण :-

ठाकुर रूपसिंह ने मातृ-हृदय की आशा आकांक्षाओं आदि का उद्घाटन भी सफलतापूर्वक किया है । मातृ हृदय की गहराइयों को वे अच्छी तरह से समझते हैं । माता यशोदा अपने लाड़ले के लिये बड़ी चिन्तित रहती हैं,बारबार उनकी छवि को देखकर सुख पाती हैं उनकी बलैयाँ लेती हैं । उन्हें हमेशा अपने पुत्र के अनिष्ट की ही चिन्ता लगी रहती है । जब बाबा नन्द कृष्ण को मथुरा छोड़कर चले आते हैं तो माता यशोदा का हृदय विदीर्ण हो जाता है । जब कृष्ण कालियमर्दन हेतु कालीदह में प्रविष्ट होते हैं उस समय भी माता यशोदा का विलाप सबके हृदयों को रुला देता है । इन स्थलों पर वात्सल्य रस की मनोरम झाँकी हमें देखने को मिलती है । कवि ने वात्सल्य का जैसा चित्रण किया है वह अनुपमेय है । बालक कृष्ण का खेलना, रोना, तन्निमित्त आग्रह करना, तुतलाना, चापल्य दिखाना, युवावस्था में विविध चेष्टायें करना और इनको देख देखकर माता-पिता का हर्षित होना, बलि जाना, नजर के डर से टोने टकोने करना आदि बातें बड़ी मनमोहक हैं । ऐसे प्रसंगों को पढ़ते-पढ़ते वे चित्र नेत्रों के समक्ष नृत्य करते से प्रतीत होते हैं । देखिये माता की बालक कृष्ण के प्रति चिन्ता —

देखे मृदु मुख श्याम को माता मन पछिताय ।
कैसे मो वारो बचे दुष्टन के समुदाय ।।
दुष्टन के समुदाय कहो कागासुर आयो ।
सकटासुर कुसरात औ यह दैत्य उड़ायो ।।

सकटाते कुलरात भयो अर छेद ओछे ।
पिछले मात विलोक गयो दुख दलो देखे ।।[1]

इस कवि की विशेषता यह है कि बाल-वर्णन, वात्सल्य वर्णन की तुलना में कवि का मन कृष्ण के लोक रक्षक, दुष्टों के मर्दन करने वाले रूप के चित्रण में अधिक रमा है । कवि कृष्ण के योद्धा, महाबलशाली, पराक्रमी, दुष्ट-दलन, सज्जन हितचिन्तक रूप का वर्णन ही अधिक करता है । इस कवि ने अनेक स्थलों पर वात्सल्य रस का चित्रण किया है ।

श्रीकृष्ण गोचारण पश्चात् घर आते हैं तब माता निहाल हो जाती है । देखिये --

रज मंडित लखि हरि बदन, हिय अति हर्षित मात ।
धाय अंक भर चूम मुख, पोंछत अन्चल गात ।।[2]

एक दिवस माता यशोदा माखन बिलो रही थीं । कृष्ण ने उन्हें आवाज दी, किन्तु मथानी की आवाज के कारण वे कृष्ण की आवाज न सुन पायीं तो कृष्ण रुष्ट हो कहते हैं :-

भाखहौं कब को पुकारत दे ओऊ माय ।
तोह है प्रिय धाम कारज मोर सुख कछु काय ।।
जान जायो आपनी नहि देत तिय बिसराय ।।[3]

कृष्ण के रोष को सुनकर माता बड़ी ही हर्षित होती हैं ।

सुनत विहंस जसुमा कहि ताता ।
तै मम सुत मैं तेरी माता ।।
करहु कोऊ बांध बलिहारी ।
मुख सुत परी न गिरा तुम्हारी ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-8, पृष्ठ-28
2- " " अध्याय-35, पृष्ठ-94
3- " " अध्याय-11, पृष्ठ-37

मात बचन सुन कछुक बुझाने ।
ल्याई तब अनुपम पकवाने ।।
अंगनि ओट ख्यावहि लालहि ।
नजर बराकन हेत गुपालहि ।।[1]

कृष्ण माता यशोदा से चन्द्रमा लेने को जिद करते हैं तो माता उन्हें बहुभाँति मनाती हैं अपने पास सुलाती हैं, दुलराती हैं ।

बहु भाँतन मात प्रबोध दुलारे ।
कछु धीरज गहो तौ लेउहि प्यारे ।।
करतो हस्ये तन ठोक सुवावे ।
मधुरे सुर राग बिहागहि गावैं ।।[2]

इसी प्रकार वात्सल्य रस के अनेक चित्र कृष्ण चन्द्रिका में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं । कालिय मर्दन हेतु जब कृष्ण जल में प्रविष्ट हो जाते हैं तो माता मृत्यु की अभिलाषा करने लगती हैं ।

सुत विरह विषादे मृत्यु माताभिलाषी ।
दधि मिलत फिरोकी धाय गोपी न राखी ।।[3]

इस प्रकार माता यशोदा के असीम वात्सल्य का रस सम्पूर्ण कृष्ण चन्द्रिका में बिखरा पड़ा है ।

श्रृंगार वर्णन :-

कृष्ण और गोपियों के प्रेम वर्णन के रूप में कृष्ण भक्त कवियों ने पूर्ण स्वच्छन्दता से श्रृंगार रस का वर्णन किया है । कृष्ण और गोपियों का प्रेम-सौन्दर्यजन्य है जो धीरे-धीरे साहचर्य के द्वारा विकसित होता है । वृन्दावन

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-11, पृष्ठ-37
2- ,, ,, अध्याय-10, पृष्ठ-34
3- ,, ,, अध्याय-17, पृष्ठ-55

के सुन्दर मधुर प्राकृतिक वातावरण में उनको श्रृंगार भावना के उद्दीपन की पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो जाती है । प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में कृष्ण और गोपियों के बीच छेड़छाड़ चलती रहती है । यह प्रारम्भिक छेड़छाड़ आगे चलकर गंभीर प्रणय वेदना का रूप धारण कर लेती है । प्रेम की विकलता एवं तन्मयता का चित्रण कवि रूपसिंह ने सफलतापूर्वक किया है । कवि ने प्रेमानुभूतियों की व्यंजना सुन्दर रूप में की है । कृष्ण और गोपियों के प्रेम का अन्त निराशा में होता है अतः रूपसिंह जी के काव्य में विरहोद्गारों की अभिव्यक्ति को भी पर्याप्त क्षेत्र प्राप्त हुआ है । गोपियों की विरह वेदना की व्यंजना को भरपूर स्थान भ्रमरगीत प्रसंग में मिला है । कवि ने जिस मार्मिकता का परिचय दिया है वह अद्भुत है । इस प्रकार कवि रूपसिंह ने प्रेम की सभी अवस्थाओं एवं भाव दशाओं का सफलतापूर्वक वर्णन किया है । यद्यपि अन्त में नायकराज के निरपेक्ष रहने के कारण गोपियों के प्रणय की परिणति सफलतामें नहीं हो पाती, किन्तु रस दशा के विकास में इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता ।

ठाकुर रूपसिंह ने श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग व वियोग का चित्रण किया है । कृष्ण व उनकी प्रिया के सहज प्रेम की परिपुष्टि से संयोग श्रृंगार का श्रीगणेश हुआ । पुनः जलक्रीड़ा, कुंजविहार, रासलीला, दानलीला आदि प्रसंग इसी के अन्तर्गत हैं । कवि शुद्धाद्वैती है जो कृष्ण को गोपियों की दृष्टि से सदा युवा मानता है । यशोदा की दृष्टि से बालक । गोपियाँ वेद की ऋचायें हैं व कृष्ण परब्रह्म का अवतार । अतः वे कृष्ण के साथ विहार करती हैं । कवि ने श्रृंगार के वियोग पक्ष को भी बड़ी मार्मिकता से अंकित किया है । भ्रमरगीत में विरह विदग्ध गोपियों की अनेक दशाओं का वर्णन है । विरह वर्णन सूर के समान ही अनुभूति की स्थापनाई की है । अतः गोपियाँ कृष्ण को क्षणमात्र भी नहीं भुला पाती हैं ।

ठाकुर रूपसिंह ने रासलीला में संयोग श्रृंगार के चित्र प्रस्तुत किये हैं ।

कृष्ण चन्द मन आनन्द देखै,
प्रकाश चन्द मन्द-मन्द वाय सीत सरद यामिनी ।

काम बीज बरसात बोलत पुत नाम जाल,
प्रेम जाल परिजाल काम-कामिनी ।।
उलट पुलट पहिर चीर मदवान हृदय पोर,
धाई कुप अति अधीर हंस गामिनी ।
आई बन लखन लाल रमन रहस चित हुलास,
मुख निवास मनहु जनहि मिलत दामिनी ।।[1]

और देखिये :-

रस रास विलास रमो मन मेरे ।
सुन गोपिन ने मुख पाय घनेरे ।।
चित चारहु ते बन धावन धाई ।
घनश्यामहि ज्यों तड़िता घिर आई ।।
दृग जोर सबैं हरिको मुख देखे ।
जउ चोर चकोर मयंकहि पेखे ।।
मन मर्कत शैल प्रभा नहि थोरे ।
जनु कंचन बेल चढ़ी चहु ओरे ।।[2]

वियोग श्रृंगार में कवि ने गोपियों की विरह व्यथा का चित्रण किया है । कृष्ण चन्द्रिका में कवि ने दो स्थलों पर विरह का चित्रण किया है । जब कृष्ण रासलीला के मध्य अन्तर्ध्यान हो जाते हैं और दूसरे कृष्ण के मथुरागमन पर कृष्ण के मथुरागमन के समय विरह व्यथित गोपिकाओं का एक चित्र देखिये :-

ठाढ़ी रह जो कैसात जीवे धार आतुरकी,
विरह पयोध मग्न नारी वृन्द भयो है ।
चित्रमित देख भुर लीनी जनु,
जनु ठोर चोर क्रूर अक्रूर जीव मुर ले गयो है ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-30, पृष्ठ-81
2- ,, ,, अध्याय-30, पृष्ठ-83

भाजन सुमन के पतंग कौ भौन दीन,
पीतम वियोग जिन मरन माँग लयो है ।
हरिता दिखात रह कबहू दिखात नाहीं
धुर ना दिखात वाला दूर रह गयो है ।।[1]

जैसे ही रथ अदृश्य होने लगता है उनकी दशा और भी खराब होने लगती है ।

भई हैं निरास गिरीं सकल उदास मनो,
परी टूट टूट टूट दामिनी सकल ।
उठी हैं सम्हार लागी ढारें नैन वारि कने,
मगन धरन शोक सिन्धु में मगन ।।
भेटी हैं उसासें बैठीं मूरछा पुकारी,
पाय सदा त्रिलोक की लगी हैं आय लगन ।
राखे तन प्राण कान्ह आवन अवधि आस,
आईं घर धीर धीर भामिनी सकल ।।[2]

यद्यपि सुर के विप्रलम्भ श्रृंगार के सदृश ग्वालसिंह जी का वियोग श्रृंगार विस्तृत व विशद् नहीं है, परन्तु जो है वह उत्तम है ।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि भावुक हृदय है और वह मर्मस्थलों से भली भाँति परिचित है ।

— :0: —

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर ग्वालसिंह, अध्याय-40, पृष्ठ-103
2- ,, ,, अध्याय-40, पृष्ठ-103

श्री कृष्ण चन्द्रिका में रस योजना

श्रीकृष्ण चन्द्रिका में रसों का परिपाक सुन्दर ढंग से हुआ है । कृष्ण-चन्द्रिका में विभिन्न रसों की संयोजना की गयी है । इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से जिन रसों का परिपाक हुआ है वे निम्नलिखित हैं :-

शान्त रस :-

"संसार से अत्यन्त निर्वेद होने पर या तत्व ज्ञान द्वारा वैराग्य का उत्कर्ष होने पर शान्त रस की प्रतीति होती है ।"

स्थायी भाव - निर्वेद

आलम्बन - सांसारिक विषयों की निःसारता का ज्ञान
अथवा साक्षात् परमात्मा स्वरूप का ज्ञान ।

उद्दीपन :-

पवित्र आश्रम, भगवान की लीला, मुनियाँ, तीर्थ-स्थान, रम्यकानन, साधु-सन्तों का संग, दर्शन शास्त्र, पुराण का अध्ययन ।

अनुभाव :-

रोमांच, दुखी दुनियाँ को देखकर कातर होना, संकटों से घबराकर संसार त्याग की तत्परता ।

संचारी भाव :-

निर्वेद, हर्ष, स्मृति, बोध, दया, धृति मति, उद्वेग, ग्लानि, जड़ता, दैन्य आदि ।

कृष्ण चन्द्रिका में यत्र तत्र शान्त रस की व्यंजना हुयी है । कवि ने जहाँ कहीं भी भक्ति भावना प्रकट की है शान्त रस स्वतः ही उद्भूत हो गया है । शंकर, ब्रह्म, ऋषि-मुनियों द्वारा की गयी कृष्ण की स्तुति में शान्त रस का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । कृष्ण के सखा उद्धव के आगमन पर यशोदा को दिये

आने वाले अवसर में शांति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है ।

जन्म अनन्त गेह पलो पर
बाल विनोद कियो तुमरे ईरि ।
कौन कहे तिनकी महिमा वर
कौन वश्य किये तिनने हरि ।।[1]

<u>अद्भुत रस :-</u>

"विचित्र वस्तु के देखने या सुनने से जब आश्चर्य का परिपोष होता है तब अद्भुत रस की प्रतीति होती है ।"

"वाह वरज देखे सुने विस्मय बाढ़त चित्त ।
अद्भुत रस विस्मय कहे, अचल,सचकित निमित्त ।।[2]

विस्मय के परिपक्व होने पर अद्भुत रस उत्पन्न होता है । साहित्य दर्पण में विस्मय का लक्षण इस प्रकार दिया है :-

विविधेषु पदार्थेषु लोक सीमातिवर्तिषु ।
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृत: ।।[3]

अर्थात् विविध पदार्थों में लोकोत्तरता देखकर जो फैलाव होता है उसे विस्मय कहते हैं । विस्मय हर्षात्मक भाव है । नाट्य शास्त्र में कहा है - विस्मयो हर्ष सम्भव: ।

<u>स्थायी भाव</u> - विस्मय ।
<u>आलम्बन</u> - अद्भुत वस्तु तथा अलौकिक घटना ।
<u>उद्दीपन विभाव</u>- अलौकिक वस्तु का गुण,कीर्तन,आश्चर्यमय वस्तु की विलक्षणता, अलौकिक घटना की आकस्मिकता ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर लालसिंह, अध्याय-47, पृष्ठ-122
2- देवकृत शब्द रसायन [चतुर्थ प्रकाश पृष्ठ-45]
3- 3/179,180-

अनुभाव :- स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गद्गद् स्वर, संभ्रम, आँखे फाड़कर देखना, मुख पर उत्फुल्लता तथा घबराहट ।

संचारी भाव :- वितर्क, आवेग, संभ्रम, हर्ष, जड़ता, दैन्य, शंका, चिन्ता, चपलता आदि ।

बालकृष्ण द्वारा अनेक बड़े-बड़े राक्षसों के पछाड़े जाने के कारण पाठक के विस्मय की उत्पत्ति स्वाभाविक ही है । कवि ने अपने इष्टदेव के अनेक आश्चर्य-जनक कार्यों का वर्णन करके अद्भुत रस की सफल व्यंजना की है । कथा के आरम्भ में दूध के साथ पूतना के प्राण खींचे जाने पर उसका दो कोस दूर जाकर गिरना सचमुच आश्चर्य का कारण है ।

> वज्र लागे गिरत गिर त्यों गिरी दानवनार ।
> कोस है महिरोध अर कृष्ण चन्द विहार ।।[1]

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखाना भी सचमुच आश्चर्यजनक है ।

> वन मुरब भार अठारह बहुतक चौरासी भुवन ।
> जो देखौ सुनौ न काहु कहु सब हरिमुख अद्भुत रचना ।।[2]

वात्सल्य रस :-

प्राचीन आचार्यों ने वत्सल रस को रस की श्रेणी में नहीं रखा । सोमेश्वर के अनुसार स्नेह, भक्ति, वात्सल्य रति के ही विशेष रूप हैं । अनेक आचार्यों ने वत्सल रस को माना है और रसों में इसकी गणना की है । रुद्रट ने दसवें प्रेयस रस का सूत्रपात किया वह वत्सल रस ही है । भोज की रस गणना में वात्सल्य का नाम आया है । हरिपालदेव ने वत्सल रस को माना है । साहित्य दर्पण में इसकी पूर्ण व्याख्या हुई है । वत्स पुत्रादि के विषय में रति को वात्सल्य कहते हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-8, पृष्ठ-25
2- ,, ,, अध्याय-11, पृष्ठ-36

स्थायी भाव - स्नेह ।

आलम्बन - पुत्र, पुत्री आदि ।

उद्दीपन - बालक की चेष्टायें, बालक का खेलना, कौतुक करना, विद्या प्रेम, खिलौने, कपड़े, वीरता आदि ।

अनुभाव - बालक का आलिंगन, सिर सूंघना, उसकी ओर देखना, थपथपाना रोमांच आदि ।

संचारी भाव :-

अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व, आवेग आदि ।

रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में वात्सल्य रस की सृष्टि में सफलता प्राप्त की है ।

ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में वात्सल्य रस की सृष्टि में सफलता प्राप्त की है । माता यशोदा दही मथने में व्यस्त हैं, कृष्ण उनके पास जाकर उन्हें उलाहना देते हैं कि मैं तुम्हें कब से गोद लेने के लिये पुकार रहा हूँ, किन्तु तुम्हें मेरी सुध ही कहाँ है ? कृष्ण के ऐसे वचनों को सुनकर यशोदा उन्हें मनाती हुई कहती हैं :-

> सुनत विहंस अतुरा कवि ताता ।
> ते मम सुत मैं तेरी माता ।।
> करहु गोद जाव बलिहारी ।
> सुख सुन परीन गिरा तुम्हारी ।।[1]

पूतना वध प्रसंग में कवि ने यशोदा के वात्सल्य भाव का सुन्दर चित्रण किया है । बाल कृष्ण द्वारा पूतना के विषाक्त स्तन्य के साथ प्राण खींच लेने पर वह अपने असली रूप में प्रकट होकर भयंकर आवाज करती हुई ब्रज से छःकोस दूर जाकर गिरती है । माता यशोदा यह जानकर कृष्ण के अनिष्ट की आशंका से रुदन करती हुई कृष्ण को अंक में भर लेती हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-11, पृष्ठ-37.

पुत माय उठायके अंक लगाये ।
मुख चूम बलाय ले नैन जुड़ाये ।।[1]

माता यशोदा कृष्ण का मुख चूमकर उनकी बलायें लेती हैं । इस प्रकार कवि ने भाव परक प्रसंगों में वात्सल्य का सुन्दर चित्रण किया है ।

<u>रौद्र रस :-</u>

जहाँ विरोधी दल की छेड़खानी, अपमान, अपकार, गुरुजन निंदा तथा देश और धर्म के अपमान आदि से प्रतिशोध की भावना जग जाती है वहाँ रौद्र रस होता है ।

<u>स्थायी भाव</u> - क्रोध ।

<u>आलम्बन विभाव</u> - शत्रु का वर्ग, अपराध करने वाला व्यक्ति ।

<u>उद्दीपन</u> - शत्रु या विरोधी द्वारा किये गये अनिष्ट कार्य, अपकार, अपमान, कठोर वचन आदि ।

<u>अनुभाव</u> - मुख पर लाली, भौंहें चढ़ाना, आँखें तरेरना, दाँत-पीसना, होंठ चबाना, हथियार उठाना, गर्जन तर्जन, विरोधियों को ललकारना आदि ।

<u>संचारी भाव</u> - अमर्ष, उग्रता, चंचलता, उद्वेग, मद, आवेग, स्मृति, असूया, श्रम आदि ।

ब्रज में नित्यप्रति उत्पात के कारण कवि ने अनेक स्थानों पर कृष्ण चन्द्रिका में रौद्र रूप उपस्थित किये हैं ।

दिये अखर्व गर्व कंस रोष के भाषही ।
विरोध मोह बात कौन राम कृष्ण राखही ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-3, पृष्ठ-25.

संहार सेन यादवो अतोव भस्मि न्याय हौं ।
लवै लवै मुंडे मिले बहोर के विनाय हौं ।।[1]

कृष्ण चन्द्रिका में कंस के कृष्ण से बार-बार पराजित होने पर कंस कृष्णादिक पर क्रोध करता हुआ उपर्युक्त बात कहता है ।

भयानक रस :-

भयदायक वस्तु के देखने, सुनने अथवा प्रबल शत्रु के विद्रोह आदि करने से जब हृदय में वर्तमान भय स्थायी होकर परिपुष्ट हो जाता है तो भयानक रस उत्पन्न होता है ।

स्थायी भाव - भय ।

आलम्बन - भयानक जानवर, निर्जन स्थान, बलवान शत्रु,भूतप्रेत की आशंका आदि ।

उद्दीपन - भयानक जानवर की भयानक चेष्टा,शत्रु के भयोत्पादक व्यवहार, विस्मयोत्पादक ध्वनि आदि ।

अनुभाव - रोमांच, स्वेद कंप, वैवर्ण्य, चिल्लाना, रोना, करुणापूर्ण वाक्य ।

संचारी भाव - शंका, चिन्ता, ग्लानि, आवेग, मूर्छा, त्रास, दीनता आदि ।

ब्रज में नित्य प्रति के उत्पात के कारण कवि ने अनेक स्थानों पर कृष्ण चन्द्रिका में भयानक दृश्य उपस्थित किये हैं ।

घोर घोर झुण्ड झुण्ड बन धूम-धूम ।
धूम-धूम व्याप धूम घोल हो निशा भई ।।[2]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-56, पृष्ठ-151
2- ,, ,, अध्याय-26, पृष्ठ-74

करुण रस :-

इष्ट वस्तु की हानि, अनिष्ट वस्तु का लाभ, प्रेम पात्र का चिर-वियोग, अर्थ हानि आदि से जहाँ शोक भाव की परिपुष्टि होती है वहाँ करुण रस होता है ।

स्थायी भाव - शोक ।

आलम्बन - बन्धु विनाश, प्रिय वियोग, पराभव आदि ।

उद्दीपन - दाह कर्म, प्रिय वस्तु के प्रेम, यश या गुण का स्मरण, वस्त्र आभूषण, चित्र आदि का दर्शन ।

अनुभाव - भूमि पतन, रुदन, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, छाती पीटना, दैवी निन्दा, प्रलाप आदि ।

संचारी भाव - व्याधि, ग्लानि, मोह, स्मृति, दैन्य चिन्ता, विषाद, उन्माद, जड़ता आदि ।

कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की प्रेम-परीक्षा के लिये किये गये उपहास पर रुक्मिणी की व्याकुलता करुण है ।

> गिरी अचेत ह्वै भूमि छोड़ छोड़ गात की ।
> विहाय स्वर्ग कों परी मनो कि पारजात की ।।
> कि चंद कों निवार चारु चन्द्रिका धरापरी ।
> अनोख मेघ योघ कौं तड़ित्त सी गली गिरी ।।[1]

वीर रस :-

शत्रु का उत्कर्ष उसकी ललकार आदि से किसी व्यक्ति के हृदय में उसको मिटाने के लिये जो उत्साह उत्पन्न होता है उसी के द्वारा वीर रस की उत्पत्ति होती है । जिस विषय से उत्साह का संचार हो अर्थात् उत्साह भाव की परि-

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-62, पृष्ठ-182

दृष्टि हो वहाँ वीर रस होता है। कार्य करने में आदि से अन्त तक उत्तरोत्तर स्थिरता, दृढ़ता और प्रसन्नता का भाव रहता है उसे उत्साह कहते हैं। वीररस के चार भेद हैं -- (1) दानवीर, (2) धर्मवीर, (3) युद्धवीर, (4) दयावीर।

स्थायी भाव - उत्साह।

आलम्बन - शत्रु, दीन, याचक, तीर्थ पर्व आदि।

उद्दीपन विभाव- शत्रुकृत अत्याचार, याचक की दीनता।

अनुभाव - भुजाओं का फड़कना, रोमांच, गर्वोक्ति, वाणी, आदर-सत्कार, दया आदि।

संचारी भाव - धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांच, दया, असूया, शंका आदि।

वीररस कृष्ण चन्द्रिका का प्रमुख रस है जिसमें कृष्ण के जीवन के अनेक ओजस्वी प्रसंग प्रस्तुत किये हैं। कृष्ण ने कंस द्वारा भेजे गये बकासुर, वत्सासुर, तृणावर्त, शकटासुर आदि राक्षसों का संहार किया। कवि ने इसी पृष्ठ भूमि पर युद्ध, उत्साह, युद्ध कौशल के बेजोड़ चित्र उपस्थित किये हैं। कृष्ण कंस के कुवलिया राक्षस को किस प्रकार मारते हैं।

धरी पूछ गाढ़े करीयो भ्रमायो।
कि ज्यों बाल ले भिंड पाले फिरायो।।
पछारो धरे धीर धिक्कार कीनो।
तबी मार कुंजान सों बोझान छीनो।।[1]

जरासिंध, शिशुपाल तथा प्रलंबासुर आदि राक्षसों को वध प्रसंगों में वीररस का परिपाक हुआ है।

शृंगार रस :-

नव रसों में शृंगार रस की प्रधानता है। शृंगार रस को आदि रस भी कहते हैं और रसराज भी कहते हैं। रुद्रट का कथन है कि शृंगार रस आबाल-वृद्ध

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-44, पृष्ठ-111।

में व्याप्त है । श्रृं का अभिप्राय है कामाभिव्यक्ति का और श्रृंगार का अभिप्राय है उसका जो इस प्रकार के कामोद्भेद से संयुक्त हो । प्रेमियों के मन में संस्कार रूप से वर्तमान रति या प्रेम रसावस्था को पहुंचकर जब आस्वाद योग्यता को प्राप्त करता है तब उसे श्रृंगार रस कहते हैं ।

<u>स्थायी भाव</u> - रति ।

<u>आलम्बन विभाव</u>- नायक, नायिका ।

<u>उद्दीपन विभाव</u>- चन्द्र चन्द्रिका, चन्दनानुलेपन, कान्त ऋतु,शीतल-समीर, एकान्त स्थल, कमनीय केलि कुंज ।

<u>अनुभाव</u> - प्रेमपूर्ण आलाप, स्नेह स्निग्ध, परस्परावलोकन, आलिंगन, चुम्बन, रोमांच, नायिका के भ्रू भंग, स्वेद, कंप आदि ।

<u>संचारी भाव</u> - स्मृति, चिन्ता, उत्कण्ठा, लज्जा, उग्रता, जड़ता, हर्ष, मोह आदि । श्रृंगार के दो भेद हैं । संयोग-श्रृंगार और विप्रलम्भ श्रृंगार ।

<u>संयोग श्रृंगार :-</u>

जहाँ नायक नायिका की संयोगावस्था में जो पारस्परिक रति रहती है वहाँ संयोग श्रृंगार होता है । यहाँ संयोग का अर्थ संयोग सुख की प्राप्ति है, जहाँ पर नायिका की संयोगावस्था में पारस्परिक रति होती है, पर संयोग सुख प्राप्त नहीं होता वहाँ संयोग श्रृंगार होता है ।

<u>विप्रलम्भ श्रृंगार :-</u>

वियोगावस्था में भी जहाँ नायक-नायिका का पारस्परिक प्रेम हो वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार होता है । विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेद होते हैं । {1} पूर्व राग, {2} मान, {3} प्रवास, {4} करुणा । विप्रलम्भ में दस काम दशायें होती हैं - अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति ।

कृष्ण चन्द्रिका में संयोग शृंगार :-

कृष्ण का दूसरा नाम ही शृंगार है । अधिकांश शृंगारी कवियों ने राधा-कृष्ण के नाम की सहायता लेकर शृंगार की अजस्र धारा प्रवाहित की है, परन्तु कृष्ण चन्द्रिका में शृंगार रस की बहुलता नहीं है । कृष्ण चन्द्रिका में शृंगार रस की न्यूनता के कारण स्पष्ट हैं । इसमें कृष्ण की रति भावना के लिये कोई ठोस आधार नहीं है । वास्तविक आलम्बन तो राधा, रुक्मिणी बन सकती थीं, किन्तु कृष्ण चन्द्रिका में केवल गोपवधू या गोप कुमारियों को ही आलम्बन बनाया गया है । जिनका व्यक्तित्व व रति भावना भी अस्पष्ट है । ये नारियाँ आत्मा का प्रतीक तो हो सकती हैं, किन्तु सफल प्रेमिका नहीं । ये कृष्ण को देखकर प्रसन्न होती हैं, विरह में उदास होती हैं, परन्तु उनका प्रेम चरमसीमा तक नहीं पहुँच पाता है । यदि कवि की रुचि शृंगार वर्णन में होती तो वह शृंगार रस की उत्पत्ति को अवश्य स्थान देता ।

कवि ने ग्रन्थ में संयोग परक चित्र उपस्थित करने में रुचि नहीं दिखाई थोड़े-बहुत चित्र कवि ने शृंगार से सम्बन्धित लिये हैं उनमें वर्णन की ही प्रधानता है । रासलीला का शृंगारपरक चित्र देखिये :—

नवरस विलास करं नहिं कोनो
लिव मोहन जुग-जुग गोपिन लीन्हों
तिय कंठ भुजा पिउ के गल बांही
विहरै बन बीत बीत तारीं ।।[1]

विप्रलम्भ शृंगार :-

कृष्ण चन्द्रिका में दो स्थानों पर विरह वर्णन को प्रमुखता दी गई है । रास से कृष्ण के एकदम चले जाना तथा कंस वध हेतु मथुरा गमन दोनों अवसरों पर कवि लेखनी ने वियोग के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-34, पृष्ठ- 89-

गन गोपिन हरि तन मन अधीर ।
विरहा प्रचण्ड जारहिं शरीर ।।[1]

कृष्ण के मथुरागमन पर मथुरा से आये कृष्ण के सखा उद्धव से गोपियाँ विरह पीड़ा का वर्णन करती हैं ।

पक्षी सुक्षुमा कल हौन त्यागे,
उदा विलासे कुल पूर्व भारे ।
सर्वस्व ज्यों हम अर्प दीनो,
तदापि माधो न भये हमारे ।।[2]

कवि को संयोग श्रृंगार की अपेक्षा वियोग पक्ष में अधिक सफलता मिली है ।

भक्ति एवं दर्शन :-

कृष्ण चन्द्रिका का अध्ययन दर्शन शास्त्र के अनुसार करने पर उसका दर्शन पक्ष शुद्धाद्वैतवाद के निकट ठहरता है । शुद्धाद्वैत की स्थापना वल्लभाचार्य ने की है । इसमें ब्रह्म माया सम्बन्ध से रहित होने के कारण शुद्ध है, मायिक नहीं । माया रहित ब्रह्म ही एक अद्वैत तत्व है । सारा जगत प्रपंच उसकी लीला का विलास है । "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" सब कुछ ब्रह्म ही है, इस सिद्धान्त को इस मत में अक्षरशः माना जाता है । श्रुति और स्मृति से सिद्ध है कि सब कुछ ब्रह्म ही है इस सिद्धान्त को इस मत में अक्षरशः माना जाता है । श्रुति और स्मृति से सिद्ध है कि सब कुछ ब्रह्म ही है । वह एक अद्वितीय सत्य है । उपनिषदों ने उसको ब्रह्म कहा । गीता ने पुरुषोत्तम और भागवत ने परमात्मा या कृष्ण, कृष्ण ही ब्रह्म ईश्वर या परमात्मा है । वे सविशेष हैं । पर निर्विशेष भी हैं । सगुण हैं पर निर्गुण भी हैं । अणु हैं पर महान भी हैं । चल है पर कूटस्थ या अचल भी है । गम्य है पर अगम्य भी है । वे विरुद्ध धर्मों या गुणों के आश्रय हैं पर अगम्य भी हैं । वे विरुद्ध धर्मों या गुणों के आश्रय हैं । संसार की सत्ता

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-33, पृष्ठ-88
2- ,, ,, अध्याय-48, पृष्ठ-124

अविद्या के कारण हैं। ज्ञानोदय से संसार का नाश होता है पर जगत ब्रह्म रूप होने से सदा अविनाशी और नित्य रहता है। कृष्ण चन्द्रिका में शुद्धाद्वैतवाद के उपर्युक्त तत्व निहित हैं। सगुण् अनु एवं ब्रह्म के अनुसार कवि ने कृष्ण की अगम्यता व्यक्त करते हुये लिखा है --

> अद्भुत अकथ अनादि अज
>
> प्रकट परावर भूप।
>
> जग में विविध स्वरूप हरि
>
> देखे परम अनूप ।।

ब्रह्म सगुण है पर निर्गुण भी। इसी के अनुसार वसुदेव जी कृष्ण की अलौकिक लीलाओं को देखकर कृष्ण के सगुण व निर्गुण रूप की उपासना करते हैं।

> पर पूर आदह मध्य अंत अर्नत एक अनूप ।
>
> पूर लघ्धुधान परता निर्गुन सगुन ब्रह्म स्वरूप ।।
>
> सरवा तव अतीत अंश अखंड आतमसार ।
>
> जग दीन बन्धु दयालु शंभु स्वयम्भु के करतार ।।[1]

ब्रह्म के लिये सृष्टि रचना, संहार और लीला खेल की तरह है। जैसे-बालक खेलते समय इच्छा होने पर घरौंदा बना लेता है। और इच्छा होने पर उसे बिगाड़ देता है अर्थात् सृष्टि का जनक और हर्ता दोनों ब्रह्म ही है। कृष्ण चन्द्रिका में वसुदेव नारद मुनि से मोक्ष प्राप्ति का साधन पूछते हैं तब नारद मुनि कृष्ण के अवतार रूप का वर्णन करते हुये सृष्टि को ब्रह्म का खेल बताते हैं।

> अजादिक पालत करत नाश।
>
> भव त्रिगुन कर्म भृकुटी विलास ।।
>
> गव जीव देह अरु मृत्यु धर्म ।
>
> नहि रूपांतर यह कर्म धर्म ।।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-85, पृष्ठ-261

2- ,, ,, अध्याय-84, पृष्ठ-259

जगत की सत्ता अविद्या के कारण है । ज्ञानोदय से संसार का नाश होता है पर ब्रह्म रूप सदा अविनाशी और नित्य रहता है । कृष्ण चन्द्रिका में अक्रूर कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिये आते हैं । मार्ग में कृष्ण के ब्रह्मत्व पर शंका करते हैं तब कृष्ण उनकी शंका समाधान के लिये अपना चतुर्भुजी रूप जल और थल में दिखाते हैं तब अक्रूर कृष्ण की स्तुति करते हैं ।

अज अद्भुत रूप सदा तुम सोहौ।
जिन जीव सबै प्रभु मायहि मोहौं ।।
तुमहीं जग कारज कारन स्वामी ।
जग जीवन की गत अन्तर्यामी ।।[1]

मानस के अनुसार निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप तब धारण करता है जब संसार में अधर्म व अनीति का साम्राज्य होता है ।

जब जब होहिं धरम की हानि,
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
तब तब प्रभु धर विविध शरीरा,
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

ठाकुर रूपसिंह ने लिखा है —

जब दुष्ट होहिं कुल धर्म विनाशै ।
महि देव-देव हरिदास न गासैं ।।
अवतार धार भु भार उतारी ।
कुल धर्माश्रम जगजीत उधारी ।।[2]

भक्ति :-

ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है । भक्त ईश्वर के साथ कुछ विशिष्ट सम्बन्ध रखकर ही उसकी भक्ति करता है । भक्ति के पाँच रूप हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-41, पृष्ठ-104
2- ,, ,, अध्याय-33, पृष्ठ-262

माधुर्य भक्ति :- इसमें भक्त ईश्वर से प्रियतम का संबंध रखता है ।

सख्य भक्ति :- इसमें ईश्वर से सखा का संबंध रखता है ।

दास्य भक्ति :- इसमें ईश्वर से दास का सम्बन्ध रखा जाता है ।

वात्सल्य भक्ति:- इसमें भक्त ईश्वर को पुत्र रूप में मानता है ।

निर्गुण भक्ति :-

इसमें भक्त ईश्वर को निर्गुण ब्रह्म मानकर ज्ञान अथवा योग द्वारा उसकी भक्ति करता है । भक्ति के उपरोक्त स्वरूपों में से रूपसिंह ने कृष्ण - चन्द्रिका में सख्य एवं दास्य भक्ति का निरूपण किया है । सख्य भक्ति को कवि ने ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्यायों में वर्णन किया है । कृष्ण के बड़े होते ही राक्षसों के दमन के साथ ही कवि दास्य भक्ति पर उतर आया है । कवि रूपसिंह ने विभिन्न स्तुतियों के आधार पर कृष्ण के आराध्य अद्भुत सर्वकालिक रूप का प्रस्तुतीकरण किया है ।

हरि ईश्वर अद्भुत अद्वितीय ।
भव धर्म कर्म फल निर्दतीय ।।
सब मध्य लसै अरु रहत दूर ।
भव भ्रमत जीव सब प्रकृत भूर ।।[1]

रूपसिंह ने भक्ति के विभिन्न स्वरूपों को अपनाया है । ग्रन्थ के अन्तिम भाग में अर्जुन द्वारा कृष्ण के सगुण और निर्गुण स्वरूप की स्तुति वर्णित है ।

वासुदेव शिवात्मा, अज निर्गुण गुन धाम ।
स्वयं सत्य विहार, हरि कीनौ सर्व प्रणाम ।।[2]

वेद और पुराणों को बार-बार सुनने पर भी इतना पुण्य फल प्राप्त नहीं होता, जितना कृष्ण का नाम लेने से ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-34, पृष्ठ- 259
2- ,, ,, अध्याय-39, पृष्ठ-278

वेद पुराण सुने बहु बार,
मही पर ददाण लक्ष दियेते ।
कोट आयन पाय लौ फल,
जो यदुनन्दन नाम लिये ते ।।[1]"

अतः रूपसिंह ने कृष्ण की भक्ति सात्विक रूप से की है । ठाकुर रूपसिंह कृष्ण भक्त कवि हैं । उन्होंने अपने ग्रन्थ में भक्ति को विशेष स्थान दिया है । वे भक्त कवि हैं । ग्रन्थ के अन्त में उन्होंने लिखा है :-

कृष्ण चरित पावन अमित,
अभिमत फल दातार ।
गाय गाय नर सहज ही,
पावे भव निधि पार ।।

कृष्ण के पावन चरित्र का गायन करने से ही प्राणीमात्र इस भव रूपी सागर को पार कर लेता है ।

--- :0: ---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-90, पृष्ठ-282

श्रीकृष्ण चन्द्रिका में छंद योजना

बाबू गुलाबराय के अनुसार "भावमयी भाषा में जो स्वाभाविक गति आ जाती है छन्द उसी का बाहरी आकार है । छन्द में वर्ण नृत्य की भाँति ताल और लय के आश्रित रहते हैं । छन्द भाषा को भावानुकूल बनाकर पाठक में एक विशेष ग्राहकता उत्पन्न कर देते हैं । शब्दों की ध्वनि द्वारा ही थोड़ी-बहुत अर्थ व्यंजना हो जाती है । छन्दों द्वारा जो सौन्दर्य का उत्पादन होता है उसके मूल में भी अनेकता में एकता का सिद्धान्त है । छन्द में शब्दों और वर्णों के विभेद में स्वरों की या मात्राओं की गणना का (वर्णों के लघु गुरु क्रम होने में, जैसे वर्ण वृत्तों में होता है अथवा मात्राओं में समानता में, जैसे मात्रिक छन्दों में) साम्य रहता है । भेद में अभेद उच्चारण और श्रवण सम्बन्धी इन्द्रियों को भी सुखकर होता है । नियम लय का ही आकार है । मुक्तक छन्द में जो नियमों से परे होते हैं बंधे हुये आकार के बिना ही लय की साधना होती है । तुक का अब इतना मान नहीं जितना पहले था ।"

कवि या लेखक की विषय सामग्री कितनी ही उत्तम क्यों न हो उसके भाव, विचार व कल्पनायें कितनी ही परिपक्व क्यों न हों, यदि उनमें सौंदर्य की संयोजना नहीं होगी तो वह अपनी सामग्री में सौंदर्य उत्पन्न नहीं कर पायेगा । कवि जब अपनी विषय सामग्री में प्रबन्ध सौष्ठव व प्रभावोत्पादकता के सिद्धान्तों का समावेश कर लेता है तो उसकी कृति श्रेष्ठ काव्य श्रेणी में परिगणित की जाने लगती है । कुछ विद्वानों का मत है कि काव्य में बुद्धि तत्व, कल्पना तत्व तथा भावतत्व के अतिरिक्त एक और तत्व है जिसे चमत्कार कह सकते हैं । कवि काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिये बहुत से साधन अपनाते हैं । कुछ अलंकारों के विशेष प्रयोगों पर बल देते हैं तो कुछ छन्दों के । ठाकुर रूपसिंह ने श्रीकृष्ण चन्द्रिका में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है । छंद प्रयोग में वे केशव से प्रभावित प्रतीत होते हैं । उन्होंने एक ही अध्याय में

विभिन्न छन्दों का प्रयोगकर अपनी चमत्कार प्रियता का प्रदर्शन किया है ।

कवि रूपसिंह ने जिन छन्दों का प्रयोग किया है उनमें नाद और लय की विलक्षण सामर्थ्य है । यही कारण है कि छन्द मन को अधिक भावनाग्राही व संवेदनात्मक बना लेते हैं । भावानुकूल छन्द पाकर कवि की भावना अत्यन्त आकर्षणमयी हो गयी है । इस प्रकार की छन्दोमयता में ही काव्य का महत्व सन्निहित है । छन्द के दो भेद होते हैं ।

1- वार्णिक छन्द

2- मात्रिक छन्द

कवि रूपसिंह ने अपने काव्य में वार्णिक व मात्रिक दोनों ही छन्दों का प्रयोग किया है । विशिष्टता यह है कि कहीं भी भावधारा या प्रवाह अवरुद्ध नहीं होता । ठाकुर रूपसिंह भावानुकूल छन्द रचना में बहुत सफल हैं । जिस भाव के अनुरूप जो छन्द ध्यान में आया उसी का प्रयोग किया है । इस प्रकार कृष्ण-चन्द्रिका छन्द रूपी पुष्पों का उद्यान है । इसमें रंग-बिरंगे छन्द रूपी पुष्प पाठकों को प्राप्त होते हैं ।

प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के लिये एक ही छन्द की आज्ञा दी है और अन्त में छन्द परिवर्तन की । परन्तु रूपसिंह ने एक ही अध्याय में अनेक बार छन्द परिवर्तन किया है । कवि छंद जाल में फंस कर भी कथा वर्णन को विश्रृंखल नहीं कर पाया है, नहीं तो कृष्ण चन्द्रिका भी आचार्य केशव की रामचन्द्रिका का दूसरा रूप होती । कवि ने कृष्ण चन्द्रिका में लगभग 100 छंदों का प्रयोग किया है । कवि ने प्रत्येक अध्याय में अनेक नवीन छन्दों को प्रयुक्त किया है जो क्रमानुसार निम्नलिखित हैं :-

<u>प्रथम अध्याय :-</u>

कवि ने प्रथम अध्याय में निम्नलिखित छन्दों का प्रयोग किया है :-

<u>कवित्त</u> — इसके प्रत्येक पाद में केवल अक्षरों की संख्या का ही प्रमाण रहता है । कहीं-कहीं गुरु लघु का नियम होता है । इसके नौ भेद होते हैं । उदाहरण देखिये —

"गावें वेद बुध पुरान सिद्ध साधु गाढ,
पालें दास आलें सर्व काल के अकुल को ।"[1]

यह 31 वर्ण का होता है । 16 और 15 पर यति है । इसे घनाक्षरी, मनहर और मनहरण भी कहते हैं ।

दोहा — विषम चरण में 13 और सम चरण में (शिव) 11 मात्र होती हैं । पहले व तीसरे चरणों के आदि में जगण नहीं होना चाहिये, अन्त में लघु होता है ।

"वानी वीना पान धर, मो वानी करवास ।"[2]

चौपाई — सोलह मात्रायें हों, परन्तु अन्त में जगण अथवा तगण न पड़े अर्थात् (ऽ।) गुरु लघु न हों । अन्त में एक लघु न हो ।

"श्री गुरु पद पंकज रज अन्जन,
कृपन दोष भव रोग निर्अंजन ।"[3]

मनोरमा — यह नगण, रगण, जगण और गुरुवृत्त है । 64 पर यति है ।

"कलि वर्ण परो कुवर्ण अबै सुन,
अपराध क्षमो शरणागत को गुन ।"[4]

कर्णी :— 10, 8, 8 और 6 के विश्राम से 32 मात्रायें होती हैं । इसमें जगण का निषेध है । अन्त में गुरु होता है ।

बहुरो नर नायक धर अनुलायक,
अगिन धायक कनकि गये ।[5]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ- 1
2- ,, ,, पृष्ठ-1
3- ,, ,, पृष्ठ-1
4- ,, ,, पृष्ठ-3
5- ,, ,, पृष्ठ-3

मालिनी — इसमें दो नगण, मगण और दो यगण वृत्त हैं।

"रथ तब दर बाला रम्य आराम आई।"[1]

हरलीला — यह हरलीला अक्षर वृत्त है। इसमें 14 अक्षर हैं। अन्त में दो गुरु के स्थान पर गुरु लघु रखा है।

"है कौन नाम याको जग दुःख दाय।"[2]

द्वितीय अध्याय :-

द्वितीय अध्याय में जिन नवीन छन्दों को प्रयुक्त किया है वे निम्नांकित हैं —

चंचरी — इसे विबुधप्रिया भी कहते हैं। पदान्त में यति है।

"एक दिवस सक्रोध गो जह उग्रसेन नरेश हैं।"[3]

नील — इसे विशेषक और अश्वगति भी कहते हैं। यह पाँच भगण और एक गुरु का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"एक दिन नृप कंस लखो कमजोर महा।"[4]

ब्रह्मावर गीत—16 और 12 के विश्राम से 28 मात्रायें होती हैं। अन्त में लघु गुरु होते हैं।

"जय ब्रह्म अज अतीत निरगुन सगुन सद्गुन मन्दिर।"[5]

तृतीय अध्याय :-

उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त इस अध्याय में तोटक, दोधक व मोतीदाम आदि नवीन छन्द प्रयुक्त किये गये हैं।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ-7
2- ,, ,, पृष्ठ-8
3- ,, ,, पृष्ठ-9
4- ,, ,, पृष्ठ-10
5- ,, ,, पृष्ठ-10

सोरठा — दूसरे और चौथे चरणों में 13 और पहले व तीसरे चरणों में 11 मात्रा होती है ।

"श्री शुक मुन सुउ पाय । पारीछत नृप प्रत कहत ।"[1]

दोधक — यह तीन भगण और दो गुरु का वृत्त है ।

"दाऊज कंस कोप दयो है ।"[2]

मोतीदाम— यह चार जगण वृत्त है ।

" गये कलिदक कहू यह रीत ।"[3]

चतुर्थ अध्याय :-

चतुर्थ अध्याय में मदिरा, मोदक, हरिगीत, नराच, मल्लिका व मधुभार आदि नवीन छन्दों का प्रयोग किया है ।

मल्लिका — यह रगण, जगण और गुरु लघु का वृत्त है ।

"कृष्ण चन्द्र काल ताहि । कूट मेरि दिखाहि ।"[4]

मधुभार — इस छन्द के प्रत्येक चरण में 8 मात्रायें होती हैं । अन्त में लघु गुरु,लघु होते हैं ।

"प्रभु जन्म केर । समयो सुबेर ।।"[5]

अध्याय - 5 :-

इस अध्याय में मंगोदिक,देवकी सुत भक्त मातंगदण्डक व गीता आदि नवीन छन्द आये हैं ।

देवकी सुत भक्त मातंग दण्डक — दंडक छंद का ही नाम भेद है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर क्षत्रसिंह, पृष्ठ-11
2- ,, ,, पृष्ठ-12
3- ,, ,, पृष्ठ-13
4- ,, ,, पृष्ठ-15
5- ,, ,, पृष्ठ-16

"देखो अद्भुत छिद्रै देखो ओर के पानै बन्दे,
महानन्द के मन्द श्रीगांन लीला करे लोकसो । "[1]

<u>गीता</u> — भुवन 14 रवि 12 के विश्राम से इस छन्द में 26 मात्रा होती हैं । "नन्द" अन्त में गुरु लघु होते हैं ।

"मनभाग विलक्षणोभसो प्रभु वर्ण पंकज वेध ।"[2]

अध्याय - 6 :

इस अध्याय में दोहा व चौपाई छन्दों का ही प्रयोग किया गया है ।

अध्याय - 7 :

इस अध्याय में चामर व प्लवंगम आदि नवीन छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

<u>चामर</u> — यह रगण, जगण, रगण, जगण और रगण का वृत्त है ।

"नन्द पैन विप्र के सुने आनन्द पायके ।"[3]

<u>प्लवंगम</u> — इस छन्द में 21 मात्रायें होती हैं । आदि वर्ण गुरु होता है । अन्त में एक जगण व एक गुरु होता है । 8 और 13 मात्राओं पर यति होती है ।

"नांदी मुख शुभ श्राध कियो जब नन्द है ।"[4]

अध्याय - 8 :

अध्याय 8 में "तोटक" नामक नवीन छन्द का आगमन है ।

तोटक — यह चार सगण वृत्त है । पादान्त में यति है ।

"सुन श्रु पति विस्मय भूल रहे ।"[5]

अध्याय - 9 :

इस अध्याय में मरहठा नामक नवीन छंद प्रयुक्त हुआ है । अन्य छंद कुंडली, कवित्त, रूपमाला आदि पूर्व प्रयुक्त छंद ही हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ-17
2- ,, ,, पृष्ठ-18
3- ,, ,, पृष्ठ-22
4- ,, ,, पृष्ठ-23
5- ,, ,, पृष्ठ-26

मरहठा — 10, 8 और 11 मात्राओं के विश्राम से इसमें 29 मात्रायें होती हैं। अन्त में "ग्वाल" गुरु और लघु होते हैं।

"उर गर्व बढ़ायो कुष्ट सिखायो आयो जहं घनश्याम।"[1]

अध्याय - 10 :

पूर्व प्रयुक्त छन्दों के अतिरिक्त निशपालिका व जलहरन आदि नये छंद आये हैं। शिखरनी, त्रिभंगी व सुखभा छंद भी हैं।

निशपालिका—इसमें 4 रगण के अन्तिम गुरु के स्थान पर 2 लघु का प्रयोग किया जाता है।

"नन्द आनंद शिशु बोल द्रुत ही लए।"[2]

जलहरन — यह 32 वर्णों का जलहरण दण्डक है।

अध्याय - 11 :

अध्याय 11 में दोहा, चौपाई के अतिरिक्त इन्द्रवज्रा, चौपही, अतिगीता आदि नये छन्द हैं।

इन्द्रवज्रा — यह दो तगण, जगण और दो गुरु का वृत्त है।
"ब्रह्मांड देखे इमि मुख माँही।"[3]

चौपही — यह 16 मात्राओं का अखिल छंद होता है। इसके अन्त में 2 लघु अथवा एक नगण होता है।

"हरु ये जाय हरिहि धर लीने।"[4]

अध्याय - 12 :

पूर्व प्रयुक्त छन्दों के अतिरिक्त सुमाली व मोटनक नये छंद आये हैं।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ-27
2- ,, ,, पृष्ठ-29
3- ,, ,, पृष्ठ-37
4- ,, ,, पृष्ठ-37

<u>सुमाली</u> — 12 और 7 के विश्राम से 19 मात्रायें होती हैं । अन्त में लघु गुरु नहीं होते, परन्तु [illegible] कर्ण-प्रिय होता है ।

"बांधि [illegible] मात [illegible] ।"[1]

<u>मोटनक</u> — यह तगण दो जगण और लघु गुरु का वृत्त है । पादान्त में यति है ।

"बानी मुरली सुन [illegible] भये ।"[2]

<u>अध्याय - 13 :</u>

पूर्व छन्दों के अतिरिक्त पादाकुल, मृणाल व लक्ष्मीधर आदि नवीन छन्द हैं ।

<u>लक्ष्मीधर</u> — यह चार रगण का वृत्त है ।

"जोरहीलाल को ले चली है जहाँ ।"[3]

<u>अध्याय - 14 :</u>

इस अध्याय में दोहा, मरहठा, गीता, मोदक आदि प्राचीन छंद ही हैं ।

<u>अध्याय - 15 :</u>

पूर्व प्रयुक्त छन्दों के अतिरिक्त प्रमिताक्षिरा व मालगीत आदि नवीन छन्द हैं ।

<u>प्रमिताक्षिरा</u>— यह सगण, जगण और दो सगण का प्रमिताक्षिरा वृत्त हैं ।

"[illegible] हरि बांट दई ।"[4]

<u>मालगीत (झूलना)</u>—इसमें 7, 7, 7, और 5 मात्राओं के विश्राम से 26 मात्रायें होती हैं । अन्त में गुरु लघु होते हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर [illegible]सिंह, पृष्ठ-38
2- .. .. पृष्ठ-38
3- .. .. पृष्ठ-43
4- .. .. पृष्ठ-47

"ताकी लसै छाप हैं किमानी आय आसमान ।-1-"

<u>अध्याय - 16 :</u>

इस अध्याय में मत्तगयंद नामक नवीन छन्द आया है ।

<u>मत्तगयंद</u>-- सात भगण व दो गुरु का मत्तगयंद वृत्त है । इसे मालती व इन्दव भी कहते हैं ।

"ये शिशु वत्सजाय जिसने हर सोचत तम्बत् पद विताये ।-2-"

<u>अध्याय - 17, 18, 19 और 20 :</u>

इन अध्यायों में पूर्व प्रयुक्त छन्द ही प्रयुक्त किये गये हैं ।

<u>अध्याय - 21 :</u>

अध्याय 21 में पूर्व प्रयुक्त छंदों के अतिरिक्त तोमर व चन्द्रवदना आदि नवीन छंदों का प्रयोग हुआ है ।

<u>तोमर</u> -- इस छंद के प्रत्येक चरण में 12 मात्रायें होती हैं । अन्त में गुरु लघु होते हैं ।

"सुन केशवाद रसाल । सब धाय गोधन ग्वाल ।-3-"

<u>चन्द्रवदना</u>-- 12 व 7 के विश्राम से 19 मात्रायें होती हैं । अन्त में गुरु लघु नहीं होते ।

"बोई दिशा कृष्ण के वेनु लोवैं ।
ब्रजी मनो मेघ बोझे किशोरे ।।-4-"

<u>अध्याय - 22 :</u>

अध्याय 22 में लीला नामक नवीन छंद और प्रयुक्त हुआ है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ-47
2- ,, ,, पृष्ठ-49
3- ,, ,, पृष्ठ-60
4- ,, ,, पृष्ठ-60

<u>गीता</u> — 7, 7, 7 और 3 मात्राओं के विश्राम से इसमें 24 मात्रायें होती हैं। अन्त में "सो" क्रम होता है।

"आराम लई रानी वृन्दावन राव रानी।"[1]

<u>अध्याय- 23 :</u> इस अध्याय में वर्तिका नामक नवीन छंद आया है जो रोला छंद का ही दूसरा नाम है।

<u>अध्याय- 24 :</u> इस अध्याय में अन्य छंदों के अतिरिक्त रूप घनाक्षरी नामक नवीन छंद प्रयुक्त हुआ है।

<u>रूप घनाक्षरी</u>— सोलह सोलह वर्णों के विश्राम से 32 वर्ण होते हैं। इसके अन्त में गुरु लघु अवश्य होते हैं।

"कैधौं लाज संदा विराजो ऋतुराज
आज कैधौं मेघ बैठो मेर दामिनी तुषार धार।"[2]

<u>अध्याय- 25 :</u> अध्याय 25 में दोहा, मोतीदाम, पादाकुल, आभीर, प्रज्झटिका, निशिपालिका, मोदक, मनहंस आदि पूर्व प्रयुक्त छंद ही हैं।

<u>अध्याय- 26 :</u> इस अध्याय में शशिवदना, व दुर्मिला आदि नवीन छंद हैं।

<u>अध्याय- 27 :</u> इस अध्याय में दोहा, सोरठा, कुंडली, चौपाई आदि पुरातन छन्द ही हैं।

<u>अध्याय- 28 :</u> इस अध्याय में भी पूर्व प्रयुक्त छंद जैसे दोहा, रूपमाला, प्रज्झटिका आदि ही हैं।

<u>अध्याय- 29 :</u> इसमें कांतिलिक व तुरमा आदि नवीन छन्द हैं।

<u>कांतिलिक</u> - यह तगण, भगण व दो जगण का और दो गुरु का वृत्त है। पादान्त में यति होती है।

"देखे नहात निरा नदिह नीर मांही।"[3]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ- 62
2- ,, ,, पृष्ठ-65
3- ,, ,, पृष्ठ-79

<u>सुषमा</u> - यह तगण, यगण, भगण और गुरु का वृत्त है । 2, 8 पर यति है । इसे वामा भी कहते हैं ।

"वैकुण्ठ देव सुख आन पाय,
बोले सुकोप महि माह नाय ।"[1]

<u>अध्याय- 30 :</u> इस अध्याय में सवैया नामक नवीन छंद प्रयुक्त हुआ है ।

<u>सवैया</u> - यह 7 भगण और एक गुरु का वृत्त है । इसे मालिनी, उमा, दिवा और मदिरा भी कहते हैं ।

"श्रीहरि नाम प्रभाव अपार अहो जग कोटन केट उधारे ।"[2]

<u>अध्याय-31 से 39 :</u> तक सभी पूर्व प्रयुक्त पुरातन छंद ही हैं । किसी नवीन छंद का प्रयोग नहीं किया गया है ।

<u>अध्याय- 40 :</u> इस अध्याय में पुष्पकांक नामक नवीन छंद का प्रयोग है ।

<u>पुष्पकांक</u> - इस छंद के विषम पद में 12 और सम पद में 9 मात्रायें होती हैं।

"भई हैं निराश गिरीं अवन उदास मनो,
परी टूक टूक 2 दामिनी अवन ।"[3]

<u>अध्याय- 41 :</u> इस अध्याय में पूर्व प्रयुक्त दोहा, तारक, सुषमा आदि प्राचीन छन्द ही हैं ।

<u>अध्याय- 42 :</u> चूड़ामन व घनाक्षरी दो नवीन छंद प्रयुक्त हैं ।

<u>चूड़ामन</u> - विषम चरण में 13 और सम में 11 मात्रायें होती हैं । अन्त में लघु होता है ।

"काहू को दिन में दिपै काहू को निस होत ।"[4]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ-80
2- ,, ,, पृष्ठ-82
3- ,, ,, पृष्ठ-103
4- ,, ,, पृष्ठ-106

घनाक्षरी - यह 31 वर्ण का होता है । 16 और 15 पर यति होती है । इसे कवित्त,मनहर और मनहरण भी कहते हैं । इसमें अन्त का वर्ण गुरु होता है ।

"पचके बनाए जिय रचके दिखाई तिय,
मार्दव निकाई निय कीने ।"[1]

अध्याय- 43,44 व 45 : इन अध्यायों में सभी पूर्व प्रयुक्त छन्द हैं । किसी नवीन छन्द की रचना नहीं की गई है ।

अध्याय- 46 : इसमें चकोर नामक नवीन छन्द रचित है ।

चकोर - यह सात भगण और एक गुरु लघु का वृत्त है ।

"प्रीय न जानहु कान्हहि तात अहैं,ब्रज के रिझके पितुमात ।"[2]

अध्याय- 47 : इसमें तारक,चंचरी,मोदक व निशापालिका आदि पूर्व प्रयुक्त छंद हैं । किसी नवीन छंद का उद्गम नहीं हुआ है ।

अध्याय- 48 : इस अध्याय में द्रुतविलम्बित,दीपक,झूलना,दुमिला आदि नवीन छन्दों को प्रयुक्त किया गया है ।

द्रुतविलम्बित - यह नगण,दो भगण और रगण का वृत्त है । इसे सुन्दरी भी कहते हैं ।

"करि उद्धव ध्यान किशोरी । धरिहउ कौन वसन विहूने ।।"[3]

झूलना - इसमें 10, 10, 10 और 7 के विश्राम से 37 मात्रायें होती हैं । अन्त में यगण होता है ।

"ज्यों चन्द को चाहि चकोर भोरी चकोरी मुझे चन्दना नैक हेरो"[4]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रणसिंह ,पृष्ठ-106
2- " " पृष्ठ-118
3- " " पृष्ठ-124
4- " " पृष्ठ-124

<u>दुमला</u> - इसमें 16, 16 के विश्राम से 32 मात्रायें होती हैं। यह छन्द चौपाई का दूना होता है। इसको सवाई भी कहते हैं।

"उर उज्ज्वल प्रेम सराहि लखे नव नागर ले चित्र छेड़ गईं।"[1]

<u>अध्याय-49 और 50</u> : इन अध्यायों में दोहा एवं चौपाई नामक पूर्व प्रयुक्त छंद हैं। किसी नवीन छंद की रचना नहीं की गई है।

<u>अध्याय- 51</u> : अध्याय 51 में अनंग शेखर नामक नवीन छंद प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रभद्रक नामक नवीन छंद भी आया है।

<u>अनंगशेखर</u> - इसके प्रत्येक चरण में वर्ण संख्या समान होनी चाहिये। मनमाने लघु गुरु के न्यास को अनंग शेखर वृत्त कहते हैं। इसे छिनराचिका और महानाराच भी कहते हैं।

"प्रमत्त दैत्य युद्ध रत्त यत्र तत्र देख के
सरोष के प्रचण्ड चक्र कृष्ण चन्द्र छंड्यो।"[2]

<u>प्रभद्रक</u> - यह नगण, जगण, भगण, जगण और रगण का वृत्त है। पादान्त में यति है। इसे प्रभद्रिका और सुभेलक भी कहते हैं।

"तन घन श्याम कृष्ण सम दाम राम हैं।"[3]

<u>अध्याय- 52</u> : इस अध्याय में चित्रपदा व सिंहावलोकन नामक नूतन छन्द है।

<u>चित्रपदा</u> - यह दो भगण और दो गुरु का वृत्त है।

"भ्रम सुनी श्रुति बानी। संभ्रम चित्तय बानी।।"[4]

<u>सिंहावलोकन</u> - इसमें 16 मात्रायें होती हैं। अन्त में गुरु लघु नहीं होने चाहिये।

"जुग बंधु करे गनत्यों गिरको।"[5]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय- ,पृष्ठ-128
2- " " पृष्ठ-134
3- " " पृष्ठ-136
4- " " पृष्ठ-137
5- " " पृष्ठ-139

<u>अध्याय- 53</u> : अध्याय 53 में उपेन्द्रवज्रा व चौपैया आदि नूतन छन्द प्रयुक्त हुये हैं ।

<u>उपेन्द्रवज्रा</u> - यह जगण, तगण, जगण और दो गुरु का वृत्त है । पादान्त में यति है । इसे उपजाति भी कहते हैं ।

"नवेद दे भूर मुवाल बोले ।
गुनीकिते वाय बनाय टोले ।।"[1]

<u>अध्याय- 54</u> : इस अध्याय में अनेक नवीन छन्द प्रयुक्त हैं जैसे पद्मावती, मुक्तहरा, माधवी आदि ।

<u>पद्मावती</u> - इसमें 10, 8 और 14 के विश्राम से 32 मात्रायें होती हैं । अंत में दो गुरु होते हैं, परन्तु जगण नहीं होना चाहिये ।

"किन्नर सुकुमारी नारी निवारी पन्नग दुहिता वारी है ।"[2]

<u>मुक्तहरा</u> - यह आठ जगण का वृत्त है ।

"विहारत बाल विनोद सवाद भये गति ,
चोस कछु यह रीत ।"[3]

<u>माधवी</u> - यह सात जगण व एक भगण का सवैया वृत्त है । इसे वाम, मंजरी व मकरंद भी कहते हैं ।

"कब बन्धु अनेक मकुन्द मुनिन्दहि वन्दन वालन पूज सुधारे ।"[4]

<u>अरिल्ल</u> - इसके अन्त में दो लघु अथवा एक यगण होता है । इसमें जगण का निषेध है । इसमें 16 मात्रायें होती हैं ।

"बन्तहिपुर इक चोस भीलन भ्रात गयो ।"[5]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर अमरसिंह, पृष्ठ-140
2- ,, ,, पृष्ठ-141
3- ,, ,, पृष्ठ-141
4- ,, ,, पृष्ठ-142
5- ,, ,, पृष्ठ-142

<u>चितहंस</u> - 12 और 7 के विश्राम से 19 मात्रायें होती हैं। अन्त में गुरु लघु नहीं होते।

"कृष्ण चन्द्र मुनिंद सोधुन गामिन्द्र।"[1]

<u>बरसात</u> - यह सात भगण और एक रगण का वृत्त है।

"हैं सब भाँति अनूप रूप नहीं,
अपना अस को नर नारिका।"[2]

<u>अध्याय- 55</u> : इस अध्याय में तरलनयन, सुरछंद, भ्रमरावली, बरवै व मुकुल नये छंद प्रयुक्त हुये हैं।

<u>तरलनयन</u> - यह चार नगण का वृत्त है। 6,6 पर यति है।

"सदन सदन नगर रचन। भरहि कुसल अमल बिगन।।"[3]

<u>सुरछंद</u> - इस छंद में 11 मात्रायें होती हैं। इस छंद के अन्त में लघु गुरु लघु होते हैं।

"हे बन्धु देउ नैन। मे चित्त कौ चैन।।"[4]

<u>भ्रमरावली</u> - यह पाँच सगण का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"बहुधा विद्युत ज्वाल भरी महमे।"[5]

<u>बरवै</u> - पहले और तीसरे पद में 12 मात्रायें होती हैं। दूसरे व चौथे पदों मे 7 मात्रायें होती हैं। अन्त में जगण होता है। इसे ध्रुव और कुरंग भी कहते हैं।

"श्रीकृष्णदेव मुकुंदे जगनाथ सुनाय।"[6]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर ज्योतिसिंह, पृष्ठ- 144
2- ,, ,, पृष्ठ- 142
3- ,, ,, पृष्ठ-147
4- ,, ,, पृष्ठ-147
5- ,, ,, पृष्ठ-148
6- ,, ,, पृष्ठ-148

मुकुल - 20 और 17 मात्राओं के विश्राम से 37 मात्रायें होती हैं। अंत में यगण होता है।

"कृष्ण चन्द निज हस्त हस्त गृह नन्दनीव अर
रu8 भाव मन भाविना।" [1]

अध्याय- 56 : इस अध्याय में बहुसंख्या में नवीन छंदों का प्रयोग किया गया है, जो इस प्रकार हैं -

सारवती - यह तीन भगण व एक गुरु का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"यों सबके मुख मौन लियो। लज्जित ह्वै ग्रह गौन कियो।" [2]

कन्द छन्द - यह चार यगण और एक लघु का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"भले नन्द आयो मनो चन्द्रका चन्द।" [3]

हुल्लास - चौपाई के अन्त में एक त्रिभंगी रखकर कवियों ने हुल्लास नामक छंद माना है। चौपाई के अन्त पद को सिंहावलोकित रीति से त्रिभंगी के आदि में रखते हैं। इसके अन्त के चारों चरणों में जगण का निषेध है।

"बन्धु भ्रुप भट द्विजन समेत। बोल कीन भोजन सुचेत।।" [4]

पंकजवाटिका- यह भगण, नगण दो जगण और एक लघु का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"एक दिवस महिपाल सभासद। राजत विपुल प्रमोद सुनेवद।।" [5]

चंद्रवर्त्मा - यह रगण, नगण, भगण और सगण का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"मन मोदमहाव विहान के। नीलनात भुज भुज करके।" [6]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर अमरसिंह, पृष्ठ-149
2- " " पृष्ठ-151
3- " " पृष्ठ-153
4- " " पृष्ठ-153
5- " " पृष्ठ-153
6- " " पृष्ठ-153

तनकभरा - इस छंद में 9 और 8 के विश्राम से 17 मात्रायें होती हैं। अन्त में यगण होता है।

"अनेक मन्मथ मयंक वारिए। प्रभामनी मरकत कंज हारिए।"[1]

कुसमस्तबक - यह 9 सगण का होता है।

"कुल ही वर बोल बये द्विज वर्ग पठे कुल शोभित आसन दे।"[2]

अध्याय- 57 : 57वें अध्याय में चित्र छंद, गंड छंद व हीरक छंदों का प्रयोग है।

चित्रछंद - यह रगण, जगण, रगण, जगण, रगण और एक लघु का वृत्त है। पादान्त में यति है। क्रम से आठ बार गुरु लघु का वृत्त है। इसे चंचला भी कहते हैं।

"क्रुद्ध दोष क्रुद्ध रोष त्रिकंकिम कोन नाथ गात पात।"[3]

हीरक - इसमें 23 मात्रायें होती हैं। आदि वर्ण गुरु होता है। अन्त में रगण व 6+6 और 11 पर विश्राम होता है।

"सम्बर अरि अम्बर पर अम्बुज तरराज हो।"[4]

गंडछंद - 11 और 13 के विश्राम से 23 मात्रायें होती हैं।

"कला प्रवीन अंग के अनंग के अनेक भाय।"[5]

अध्याय- 58 : इस अध्याय में पूर्व प्रयुक्त दोहा, तारक, मोदक, तोटक, दोधक, रूपमाला, नराच आदि छन्द हैं।

अध्याय- 59 : इस अध्याय में हंसगत व हरप्रिया दो नवीन छन्द और प्रयुक्त किये गये हैं।

हंसगत - 11 और 9 के विश्राम से 20 मात्रायें होती हैं। इसकेतुकान्त में गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं है।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ- 153
2- " " पृष्ठ- 154
3- " " पृष्ठ- 156
4- " " पृष्ठ- 157
5- " " पृष्ठ- 156

"गन बाजत कल कूजन लगीं मन लोचन ।"[1]

<u>हरिप्रिया</u> - 12, 12, 12 और 10 मात्राओं के विश्राम से 46 मात्राओं का हरिप्रिया छंद होता है इसके पादान्त में गुरु होता है ।

"सुमन के पुंज अवे केश अङ्कुर ।"[2]

<u>अध्याय- 60 :</u> अध्याय साठ में दिगपाल, विजनाद, हरपद छन्द आदि नवीन छन्द हैं ।

<u>दिगपाल</u> - यह 12, 12 के विश्राम से 24 मात्राओं का छन्द होता है । 9वीं और 17वीं मात्रा हमेशा लघु रहती है ।

"लै धर्म नन्द कृष्णे संग भीम अर्जुन ।
कुरु अंध नंद माद्री गर्जे धने बने ।।"[3]

<u>विजनाद</u> - 16 और 10 के विश्राम से विजनाद में 26 मात्रायें होती हैं । अन्त में गुरु होता है ।

"मो सौ कही तात इक ओसर द्वापर अन्त परे ।"[4]

<u>हरपद छन्द</u> - पहले और तीसरे पद में 16 और दूसरे व चौथे पद में 11 मात्रायें होती हैं । अन्त में गुरु लघु होते हैं ।

"कही पंथ इम गाढ वरन द्विज तो लग भये मुरार ।"[5]

<u>अध्याय- 61 :</u> इस अध्याय में श्रग्विनी, गोरी, ललिता, मंजुभाषिनी, चौबोला, भुजंगी सवैया आदि नूतन छन्द आये हैं ।

<u>श्रग्विनी</u> - यह चार रगण का वृत्त है । पादान्त में यति है ।

"कूट कौं कष्ट को दुखदा जानके ।"[6]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ- 164
2- ,, ,, पृष्ठ- 167
3- ,, ,, पृष्ठ- 169
4- ,, ,, पृष्ठ- 169
5- ,, ,, पृष्ठ- 169
6- ,, ,, पृष्ठ- 175

गौरी - यह तगण दो जगण और यगण का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"भे कुंजन सों अलि कब देहौं। यौं छन पुरन्दर शोभा धरेहौं।"[1]

ललिता - यह तगण, भगण, जगण और रगण का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"चाहेत गौन मन की भामनी। देखे सुरेन्द्र हंसगामनी।।"[2]

मंजुभाषनी- यह सगण, जगण, सगण, जगण और एक गुरु का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"अग देख देख छवि व्योमबार है।
लख गौन पौन मन मान हार है।।"[3]

चौबोला - इस छंद में 8 और 7 मात्राओं पर विराम होता है। कुल 15 मात्रायें होती हैं। अन्त में लघु और गुरु आते हैं।

"मम्मति अधोखम आछित अति गति पाई जो मुनन लई।"[4]

भुजंगी सवैया- [भुजंगी सवैया] यह तीन यगण और लघु गुरु का वृत्त है। पादान्त में यति है।

"लसै वृन्द चंद्रानना दामिनी अंग नैनी सुवेसिंधुरा गामिना हैं।"[5]

अध्याय- 62 : इस अध्याय में मत्तमयूर व कुम्भा आदि नवीन छंद प्रयुक्त किये गये हैं।

मत्तमयूर- यह 3 मगण, तगण, यगण, सगण और एक गुरु का वृत्त है। इसे माया भी कहते हैं। 4, 9 पर यति है।

"देखी प्यारी हाल बिहा व्याकुल भारी।"[6]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ-175
2- ,, ,, पृष्ठ-176
3- ,, ,, पृष्ठ-176
4- ,, ,, पृष्ठ-179
5- ,, ,, पृष्ठ-181
6- ,, ,, पृष्ठ-182

<u>सुगा</u> - यह एक यगण और एक गुरु का वृत्त है । इसे क्रीड़ावृत्त कहते हैं ।

"सनी नहै सुधावानी सुने गोपाल तोषे है ।"[1]

<u>अध्याय- 63 :</u> इस अध्याय में ब्रह्म सम्पक नामक नवीन छन्द प्रयुक्त है ।

<u>ब्रह्म सम्पक</u> - इस छन्द के प्रत्येक चरण में 8 और 5 के योग से 13 मात्रायें होती हैं ।

"जन्म रुक्मिणी कुमार । कम यो सुने विचार ।।"[2]

<u>अध्याय- 64 :</u> इस अध्याय में जलधरमाला, शार्दूल विक्रीड़ित व मेघविस्फूर्जित छन्द का प्रयोग हुआ है ।

<u>जलधरमाला</u>- यह मगण, भगण, सगण और मगण का वृत्त है । 4, 8 पर यति है ।

"बैठी ताके कौ पर पर्यंकाला । देखी जोती जगमग होती लाला ।"[3]

<u>शार्दूलविक्रीड़ित</u>- यह मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु का वृत्त है । 12, 7 पर यति है ।

"जाने तु किहि भांति भेदतनया भीता न धीता कना ।"[4]

<u>मेघविस्फूर्जित</u> - यह यगण, मगण, नगण, सगण, रगण, रगण और एक गुरु का वृत्त है । 6, 6 और 7 पर यति है ।

"सुनी पिय वानी विपुल महिमा नम उमा अरानी ।"[5]

<u>अध्याय- 65 :</u> अध्याय पैंसठ में पद्धरी, रोलनारी, लक्ष्मी, क्मानका व मालती आदि नवीन छन्द हैं ।

<u>पद्धरी</u> - यह 16 मात्रा का होता है । अन्त में जगण (लघु, गुरु, लघु) होता है । पादान्त में यति है ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ- 183
2- ,, ,, पृष्ठ- 184
3- ,, ,, पृष्ठ- 191
4- ,, ,, पृष्ठ- 193
5- ,, ,, पृष्ठ- 193

"नरकवहि परसर बैठ भौन । शिशु को हर ले गयो देव कौन ।"[1]

<u>शेषनारी</u> - यह दो यगण का वृत्त है ।

"सुनी बानि बानी । नवी राजधानी ।।"[2]

<u>लक्ष्मी</u> - यह दो रगण और गुरु लघु का वृत्त है ।

"वेद पावे न जा अन्त । जाहि ध्यावे चिदानन्द ।।"[3]

<u>समानिका</u>- यह रगण, जगण और एक गुरु का वृत्त है ।

"शम्भु कौं समान हैं । धान्यमान मानहैं ।।"[4]

<u>मानिनी</u> - यह सात जगण और लघु गुरु का वृत्त है ।

"दये बहु दान दुलारिन बोल, अवाचक जाचक कौन रहे ।"[5]

<u>अध्याय- 66 :</u> इस अध्याय में दोहा व चौपाई छन्द हैं ।

<u>अध्याय- 67 :</u> इस अध्याय में स्रग्धरा नामक नवीन छन्द आया है ।

<u>स्रग्धरा</u> - यह मगण, रगण, भगण, नगण और 3 यगण का वृत्त है । 7, 7 और 7 पर यति होती है ।

"नाचे गावे बजावे विविध गति सबै लाल की बाल जोही ।"[6]

<u>अध्याय- 68 :</u> इस अध्याय में लक्ष्मी नामक नवीन छंद और प्रयुक्त हुआ है ।

<u>लक्ष्मी सवैया</u>- यह आठ रगण का वृत्त है ।

"हूल दोनो बदिलो सबै पाँव्ने भावतों किमो आवती बोधने ।"[7]

<u>अध्याय- 69 :</u> अध्याय उनहत्तर में हरगोला, प्रज्झटिका, नराच, चंचला आदि पूर्व प्रयुक्त छन्द हैं ।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, पृष्ठ-198
2- ,, ,, पृष्ठ-199
3- ,, ,, पृष्ठ-203
4- ,, ,, पृष्ठ-205
5- ,, ,, पृष्ठ-205
6- ,, ,, पृष्ठ-212
7- ,, ,, पृष्ठ-214

<u>अध्याय- 70 :</u> इस अध्याय में सुगीत नामक नवीन छन्द आया है ।

<u>सुगीत</u> - 15 और 10 के विश्राम से सुगीत में 25 मात्रायें होती हैं । आदि में लघु और अन्त में गुरु लघु होते हैं ।

"कहै बहु कटुबैन हुलस बैन दुर्योधन गयो ।"[1]

<u>अध्याय- 71 :</u> इस अध्याय में निसा, शुभगीत व कोकिल छन्द आदि नवीन छन्द और प्रयुक्त हुये हैं ।

<u>निसा</u> - यह भगण, जगण, सगण, नगण और रगण का त्रिविभाग वृत्त है । पादान्त में यति है ।

"बोध यह भांत मत भानवा भौनको ।"[2]

<u>शुभगीत</u> - 15 और 12 के विश्राम से 27 मात्राओं का छन्द होता है । अन्त में रगण होता है ।

"त्रिलोक मुन पुन कृष्ण त्रिहाइ धाम धामन ते कढे ।"[3]

<u>कोकिल</u> - यह न ज भ ज ज और लघु गुरु का वृत्त है । पादान्त में यति है ।

"बहु छक कृष्ण देख सुन मान क्रोध भरो ।"[4]

<u>अध्याय- 72 :</u> इस अध्याय में वर्ण झूलना नवीन छन्द प्रयुक्त हुआ है ।

<u>वर्णझूलना</u> - यह 24 वर्ण का सगण और जगण छन्द है । अन्त में गुरु का प्रमाण है । 14 और 10 पर यति है ।

"पंड क्यों महर्षेन्द्र क्यों हरे केता अंत की मूते नर्क गेरे ।"[5]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रामसिंह, पृष्ठ-220
2- ,, ,, पृष्ठ-222
3- ,, ,, पृष्ठ-223
4- ,, ,, पृष्ठ-223
5- ,, ,, पृष्ठ-225

अध्याय- 73 से 90 तक :

अध्याय 73 से 90 तक प्रायः पूर्व प्रयुक्त छन्दों का ही प्रयोग किया गया है । ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका के नब्बे अध्यायों में प्रत्येक अध्याय का आरम्भ और अन्त दोहा छन्द से किया है । उन्होंने दोहा और चौपाई छन्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक किया है । प्रत्येक अध्याय में कम से कम 5 और अधिक से अधिक 20 छन्दों को प्रयुक्त किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि एक छन्द का उदाहरण गढ़ने के पश्चात् दूसरे छन्द की चिन्ता करने लगता है । यदि यह प्रयास भाव पक्ष की ओर किया जाता तो कवि प्रतिभा में चार चाँद लग जाते ।

आचार्य शुक्ल का कथन है कि "छन्द का बंधन स्वीकार करने से विशेषतः शब्दों की रूढ़ि जड़ित परम्परा को काव्य पर आधिपत्य करने देने से कविता की भाव व्यंजना में अनेक बार बाधायें उपस्थित होती हैं ।" शुक्लजी का यह कथन बहुत सीमा तक कृष्ण चन्द्रिका के सन्दर्भ में उपयुक्त प्रतीत होता है । अनेक छन्दों के प्रयोग से कथा-विकास में बाधा उपस्थित हुई है । कवि रूपसिंह ने भाव परिवर्तन के आधार पर ही छन्द परिवर्तन किया है । इसलिये कथा निर्वाह में अत्यधिक बाधा नहीं आई है । कैसे छंदों का सफलतापूर्वक प्रयोग ठाकुर रूपसिंह की अपूर्व उपलब्धि है ।

— :0: —

श्रीकृष्ण चन्द्रिका में अलंकार विवेचन

बाबू गुलाबराय के अनुसार, "अलंकार शोभा को अलं अर्थात् पूर्ण व पर्याप्त करने के कारण अलंकार कहलाते हैं । अलंकरण की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक है । इसके द्वारा उसके आत्मभाव और गौरव की वृद्धि होती है । यद्यपि अलंकार बाहरी साधन होते हैं तथापि उनके पीछे अलंकृतिकार की आत्मा का उत्साह और ओज छिपा रहता है । बाहरी होने के कारण अलंकारों पर ही पहले दृष्टि जाती है । इसीलिये अलंकार शास्त्र के इतिहास के प्रारम्भिक काल में अलंकारों का कुछ अधिक महत्व रहा है ।"

जिस प्रकार मानव शरीर की सौन्दर्य अभिवृद्धि के लिये अलंकार आवश्यक होते हैं उसी प्रकार काव्य सौष्ठव में वृद्धि के लिये काव्यालंकार आवश्यक होते हैं । यह सत्य है कि अंतरंग सौन्दर्य का बाह्य सौन्दर्य से अधिक महत्व है, परन्तु सौन्दर्य की प्रतीति बहिरंग व अंतरंग दोनों ही सौन्दर्यों से होती है । दण्डी ने अलंकारों को शोभा का कारण बतलाया है ।

"काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते" [1]

चन्द्रालोककार जयदेव पीयूषवर्ष के अनुसार -

"अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।।" [2]

भामह ने कहा है -

"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्" [3]

1- काव्यादर्श [2/1]

2- चन्द्रालोक [1/8]

3- काव्यालंकार [1/13]

आचार्य केशवदास के अनुसार -

> "जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
> भूषण बिन न विराजई, कविता वनिता मित्त ।।"[1]

अर्थात् सुन्दर होते हुये भी आभूषणों के बिना वनिता का मुख शोभा नहीं देता । अतः काव्य सौन्दर्य को उभारने में अलंकारों का विशेष महत्व होता है ।

रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका में अलंकारों का प्रयोग सहज व स्वाभाविक ढंग से हुआ है । उनके ग्रन्थ में अलंकारों का प्रयोग वस्तु के आकार, भावों की तीव्रता तथा संवेदनात्मक अभिव्यक्ति के लिये किया गया है । उनके काव्य में जो महत्वपूर्ण अलंकार प्रयुक्त हुये हैं वे इस प्रकार हैं :-

<u>अनुप्रास :-</u>

पंडित रामबहोरी शुक्ल के अनुसार, "जब वाक्य के शब्दों में एक या कई व्यंजन एक से अधिक बार एक ही क्रम से आवें तब अनुप्रास होता है ।"

ठाकुर रूपसिंह ने संवादी स्वरों की एकरूपता तथा सुरोत्पन्न के आभास और काव्य की संगीतात्मकता एवं सौष्ठव वृद्धि के लिये अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया है । स्थान-स्थान पर उन्होंने अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग किया है । एक बार नारद के मन में सन्देह हुआ कि कृष्ण आठ पटरानियों और सोलह हजार रानियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं ? इस सन्देह के निवारणार्थ वे द्वारकापुरी आये । कवि ने द्वारकापुरी की शोभा व द्वारकावासियों के क्रिया-कलापों के वर्णन में अनुप्रास की छटा बिखेरी है ।

> नर नारि सबै सुख साथ स्याने
> अखिल सुभोगन भाग मराने ।
> मिलि कुल माधव को अवलोकी
> रहि कावर केम सोच अलोकी ।।[2]

1- कविप्रिया - (कविता - अलंकार वर्णन-1)
2- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-61, पृष्ठ-178.

इसी प्रकार एक और उदाहरण द्रष्टव्य है ।

> खण्ड कर्यो धार धाव धाको धरा धसे ।
> काल से कराल देख देव मानवागसे ।।[1]

भौमासुर युद्ध का सजीव वर्णन करने हेतु अनुप्रास अलंकार की सहायता ली है ।

> "चले दैत्य देव सैन भाग भूम पै पुकार ।
> क्रोध धार धनु सर्व धारनो मुरै संहार ।।[2]

उत्प्रेक्षा :-

पण्डित रामबहोरी शुक्ल के अनुसार, "जब उपमेय में उपमान से भिन्नता जानते हुये भी उसकी (उपमान की) सम्भावना की जाती है, तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है ।"

कवि रूपसिंह ने उत्प्रेक्षा अलंकार का यत्र तत्र प्रयोग किया है । रुक्मिणी हरण प्रसंग में कृष्ण के कुण्डनपुर आने पर सभी नगरवासी कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं ।

> पुर के नर नारि सबै जुर आये
> जुग अंकुर चंदन के जुग पाये ।
> पुन रूप अनूप विलोकन लागे
> जनु चंद चकोर चिते अनुरागे ।।[3]

गोपिकाओं को श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान होने के बाद मिलते हैं व उनके साथ रास रचाते हैं उस समय का सौन्दर्य वर्णन देखिये --

> हरि मण्डल रास समागम आयउ ।
> जनु चन्द चकोर विलोकि सिधायउ ।।[4]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-61, पृष्ठ-178
2- ,, ,, अध्याय-61, पृष्ठ-177
3- ,, ,, अध्याय-36, पृष्ठ-147
4- ,, ,, अध्याय-33, पृष्ठ-88

श्रीकृष्ण व गोपिकाओं की रास लीला में सौन्दर्य वर्णन देखिये —

> तन अंग उमंग कुतूहल बाढ़ी । जनु देव वधू तन स्फटिक ठाढ़ी ।।[1]

सौन्दर्य वर्णन में प्रभावोत्पादकता लाने के लिये उन्होंने उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग किया है ।

<u>पुनरुक्ति प्रकाश :-</u>

पण्डित रामबहोरी शुक्ल के अनुसार, "जहाँ एक ही शब्द दो या अधिक बार आता है, और इस प्रकार प्रयुक्त होकर अर्थ की रुचिरता बढ़ाता है वहाँ पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार होता है ।

जब इन्द्र कृष्ण से कुपित हो जाता है और मूसलाधार वृष्टि करता है उस समय का चित्रण देखिये —

> घोर घोर घुमड़ घुमण्ड घन घूम घूम
> झूम झूम आए झूम चोल ही निशा भई ।
> गर गर गर गरात तर तरात तड़ित
> तड़ित वात होत पवात उत्पात नीके दई ।।[2]

यहाँ वर्षा की प्रचंडता को दर्शाने के लिये कवि ने एक ही शब्द का उल्लेख कई बार किया है इसलिये यहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है ।

दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा के स्वयंवर में उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर श्रीकृष्ण पुत्र साम्ब जब उसे रथ पर बैठाकर ले जाते हैं तब दुर्योधन आदि कौरव कुपित हो उसे मारने की सोचते हैं, देखिये उदाहरण —

> सज्ज सज्ज ले भटन्हत कर्ण कर्ण युत क्रोध ।
> जान न पावहिं चोर यह मारहु यदुकुल सोध ।।[3]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-34, पृष्ठ-89

2- ,, ,, अध्याय-26, पृष्ठ-74

3- ,, ,, अध्याय-70, पृष्ठ-218

इसी प्रकार द्वारकापुरी की शोभा देखिये —

जाय द्वारिकाय देख नग्र सबै भौन भौन ।
राज साज बाज साज यत्र तत्र गौन गौन ।।[1]

अपनी बात को सुन्दर ढंग से कहने के लिये व अर्थ को सुन्दरता हेतु ठाकुर रूपसिंह ने पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का प्रयोग किया है ।

उदाहरण अलंकार :-

श्रीरामबहोरी शुक्ल के अनुसार, "जिन दो वाक्यों का साधारण धर्म भिन्न है उनमें वाचक शब्द के द्वारा समता दिखायी जाय तो उदाहरण अलंकार माना जाता है ।"

ठाकुर रूपसिंह ने अपने ग्रन्थ में उदाहरण अलंकार का भी प्रयोग किया है । देखिये —

जैसे शिखी न अघोर सुनी सुहाय ।
जैसे पपीह जल स्वाति पियें अघाय ।।
जैसे चकोर लख चंद अनन्द पाय ।
त्यों श्री प्रमोद सुन कृष्ण विदर्भि जाय ।।[2]

उपमा अलंकार :-

श्रीरामबहोरे शुक्ल के अनुसार, "साम्यमूलक अलंकारों में उपमा सबसे प्रधान है । जब हम किसी वस्तु का वर्णन करके उससे अधिक प्रसिद्ध किसी वस्तु से उसकी समानता करते हैं तब उपमा अलंकार होता है ।"

"रूप रंग गुन काहु को काहु के अनुसार ।
ताको उपमा कहते हैं जे सुबुद्धि आगार ।।[3]

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-64, पृष्ठ-193

2- ,, ,, अध्याय-56, पृष्ठ-146

3- अलंकार मंजूषा ।

कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग बड़ी कुशलता व सुबह से किया है। रूपसिंह द्वारा प्रयुक्त उपमा अलंकारों की एक विशेषता यह है कि इनके माध्यम से कवि चित्रात्मकता ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु अपने काव्य के भावों से पाठक का तादात्म्य भी स्थापित करा देता है।

मृगलोचन चंदमुखी पिकबैन प्रभातन कुन्दन कुन्दकली।
गजगामिनि दामिनिसी दरसे बरसे परसे कमलोत भली ।।[1]

उक्त पद में कवि रुक्मिणी के सौन्दर्य की तुलना विभिन्न उपमेयों से करता है। अब श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन देखिये --

तन घनश्याम सुख धाम छवि ग्राम मन मर्कत तमाल,
लाल कंजद्युति मन्दकी।
नैन रसिनारे कज नारे अनियारे भारे भ्रुकुट कुवण्ड,
मैन फल गुन छन्दकी ।।[2]

कुण्डलों, कानों, अधरों, कपोलों आदि के सौन्दर्य को कवि विभिन्न उपमेयों द्वारा प्रस्तुत करता है। देखिये उदाहरण --

श्रवन इकन सोम कुण्डिल मकर छोभ
केस अलि वृन्द निंद ध्रान शुक नन्दकी।
अधर कपोल लोल मधुर अमोल बोल
बदन मनोज कोट तरनिक चन्दकी ।।[3]

कवि ने उपमा अलंकार का अत्यधिक प्रयोग किया है। सौन्दर्य वर्णन में तो उसने उपमाओं की बाढ़ ला दी है।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-56, पृष्ठ-148
2- „ „ अध्याय-30, पृष्ठ-82
3- „ „ अध्याय-30, पृष्ठ-82

विरोधाभास अलंकार :-

पण्डित रामबहोरे शुक्ल के अनुसार, "जब दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ दिखाया जाता है, अथवा जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया के द्वारा उनके संयोग से परस्पर विरोधी भास होता है, तब विरोधाभास अलंकार होता है।"

ठाकुर रूपसिंह ने यत्र तत्र विरोधाभास अलंकार का भी प्रयोग किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है —

"पून निरख अछूरे होय के क्रोध भूरे
कहि यह जन झूरे नाम लोने अछूरे।"[1]

रूपक अलंकार :-

पण्डित रामबहोरे शुक्ल के अनुसार, "जब उपमेय को उपमान के रूप में दिखाया जाता है तब रूपक अलंकार होता है। "उपमा" में उपमेय और उपमान का भेद बना रहता है। उन दोनों का अस्तित्व अलग-अलग होता है, परन्तु जब उनमें इतनी समता बढ़ जाती है कि दोनों एक से जान पड़ने लगते हैं तब रूपक कहलाता है।"

ठाकुर रूपसिंह ने सौन्दर्य वर्णन में रूपक अलंकार का प्रयोग किया है। उन्होंने सौन्दर्य के विभिन्न पक्षों को विभिन्न रूपकों के माध्यम से प्रकट किया है। देखिये उदाहरण —

छिन छांपि तीर ठाढ़े हरि सुन्दरी निहार।
मुख चंद कंज नैना गजराज चालचार ।।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में कालिन्दी के सौन्दर्य को विभिन्न रूपकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। उसके मुख पर चन्द्रमा का आरोप एवं उसकी चाल पर गजगामिनी मतवाली चाल का आरोप किया गया है। अतः यहाँ रूपक अलंकार है।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-40, पृष्ठ-102
2- ,, ,, अध्याय-60, पृष्ठ-169

सन्देह अलंकार :-

पण्डित रामबहोरी शुक्ल के अनुसार, "जब उपमेय और उपमान में समता देख कर यह निश्चय नहीं हो पाता कि उपमान वास्तव में उपमेय है या नहीं, दुविधा बनी ही रहती है, तब सन्देह अलंकार होता है ।"

ठाकुर रूपसिंह ने सन्देह अलंकार का भी प्रयोग किया है ।

> पुरी सिंधु में बंदली छबि राजै
> कि ज्यों सोमलों व्योम में शोभ साजै ।
> किधौं दूसरे चंद को बिंब जायो
> बड़े मोद के मोद लै ताहि पायो ।।[1]

द्वारकापुरी सिन्धु में चन्द्र लोक सी लगती है और यह पता भी नहीं लगता कि वह चन्द्रलोक है या द्वारका ।

उल्लेख अलंकार :-

पण्डित रामबहोरी शुक्ल के अनुसार, "जब किसी वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय तब उल्लेख अलंकार होता है ।"

ठाकुर रूपसिंह ने भी उल्लेख अलंकार का यत्र तत्र प्रयोग किया है । उदाहरण देखिये —

> जै रूपं विराट सगुन जोत जग्य रूप ।
> आदि मध्य न अन्त है तब ही जस अनूप ।।
> दार अन्तर अग्नि है प्रत्यक्ष एक दिखाय ।
> ब्रह्म निर्गुन रूप सगुन सर्व अलख आय ।।[2]

इन अलंकारों के अतिरिक्त कवि ने दीपक, दृष्टान्त, भ्रान्तिमान आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है । कवि ने शब्दालंकार व अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग सहज रूप से किया है । अलंकार प्रयोग से कवि की भाव व्यंजना व अर्थ-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-33, पृष्ठ-144
2- ,, ,, अध्याय-87, पृष्ठ-269

व्यक्ति में चमत्कार उत्पन्न हुआ है। अधिकांश अलंकारों का प्रयोग रसोत्कर्ष के लिये ही हुआ है। कतिपय स्थानों पर तो अलंकार अलंकार नहीं लगते, अपितु अभिव्यक्ति का अभिन्न अंग बन गये हैं। अलंकार प्रयोग में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

—— :0: ——

——— :o: ———

षष्ठ अध्याय

——— :o: ———

षष्ठ – अध्याय

श्रीकृष्ण चन्द्रिका की बुन्देलखण्ड के अन्य कृष्ण चरित्र सम्बन्धी प्रबन्ध-काव्यों से तुलना :-

भारतीय जनमानस मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा योगेश्वर श्रीकृष्ण से अत्यन्त प्रभावित है । भारतीय साहित्य में मुख्य रूप से इन्हीं दो महापुरुषों की जीवनगाथा का गायन व्यापक रूप से हुआ है । आदि कवि बाल्मीकि ने सर्वप्रथम संस्कृत में श्रीराम के चरित्र का वर्णन किया तो महात्मा वेदव्यास ने महाभारत और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं का गायन किया है । हिन्दी के कवियों ने चरित्गान की परम्परा संस्कृत साहित्य से ग्रहण की है ।

हिन्दी के कुछ कवियों ने बाल्मीकि रामायण, महाभारत व श्रीमद्-भागवत का अनुवाद भी समय-समय पर प्रस्तुत किया है । भक्तिकालीन कुछ प्रमुख कवियों ने स्वतन्त्र रूप से लीलागान किया, जिनमें अष्टछाप के कवि अग्रगण्य हैं । तुलसीकृत् रामचरितमानस की रचना के लगभग दो सौ वर्ष उपरान्त कृष्णभक्त कवियों ने रामचरितमानस के अनुकरण पर अपने आराध्य श्रीकृष्ण का चरित्र लिखना प्रारम्भ किया व उसे कृष्णायन की संज्ञा से विभूषित किया । संवत् 1836 विक्रमी में बुन्देलखण्डवासी भक्ति द्विज ने रामायण के ठीक अनुकरण पर कृष्णायन की रचना की । संभव है, भक्ति द्विज से पूर्व किसी कवि ने कृष्णायन नाम से कृष्ण चरित्र का वर्णन किया हो, किन्तु अभीतक भक्ति से पूर्व का लिखा गया कोई कृष्णायन प्राप्त नहीं हो सका है । भक्ति द्विज के बाद कृष्णायन लिखने की

परम्परा चल पड़ी और आधुनिक युग में आकर यह परम्परा पूर्ण विकास को प्राप्त हुयी ।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना की शोध विवरणिकाओं के आधार पर अब तक पन्द्रह कृष्णायन समय-समय पर विभिन्न कवियों के द्वारा रचे गये और प्रत्येक की अलग-अलग विशेषतायें हैं । कुछ प्रमुख कृष्णायन ग्रन्थ इस प्रकार हैं :--

1- कृष्णायन - मंचित कवि - रचनाकाल संवत् 1836 वि०
2- कृष्णायन - सुजान कवि - रचनाकाल संवत् 1838 वि०
3- कृष्णायन - जगन्नाथदास- रचनाकाल संवत् 1845 वि०
4- कृष्णायन - कर्ण महाराज-प्रकाशन काल संवत् 1942 वि०
5- कृष्णायन - विसाहूराम साहू - प्रकाशनकाल संवत् 1960 वि०
6- कृष्णायन - रामजी शरण कवि किंकर - प्रकाशनकाल संवत् 2005 वि०
7- कृष्णायन - राधेश्याम कथावाचक - प्रकाशनकाल अज्ञात ।
8- कृष्णायन - पण्डित रामस्वरूप विशारद् -प्रकाशन काल संवत् 2018 वि०
9- कृष्णायन - पण्डित द्वारका प्रसाद मिश्र - प्रकाशनकाल संवत् 2001 वि०

कृष्णायन की परम्परा अपने ढंग की एक निराली परम्परा है । शतक, सतसई, हजारा की परम्परा से यह बढ़कर है । सतसई और हजारा मुक्तक काव्य ग्रन्थ हैं,जबकि कृष्णायन प्रबन्ध काव्य है । बुन्देलखण्ड की धरती से जिस कृष्णायन ग्रन्थ के लिखने की परम्परा का श्रीगणेश हुआ वह पूरे दो सौ वर्षों में चरम विकास को प्राप्त हुयी । कवियों ने समय-समय पर श्रीकृष्ण के चरित्र को अपनी कुशल लेखनी से चित्रित कर उसे सर्वजन सुलभ बनाया ।

कृष्णायन की परम्परा बुन्देलखण्ड में सर्वप्रथम मंचित द्विज ने आरम्भ की । उनके पश्चात् अनेक कवियों ने कृष्णायन लिखने की परम्परा प्रवाहित रखी । मंचित द्विज के बाद पण्डित शिवदास ने संवत् 1845 में कृष्णायन की रचना की । 19वीं शती में बिहारीदास शुक्ल ने कृष्णायन का प्रणयन किया । इनका रचनाकाल संवत् 1928 है ।

कृष्णायन परम्परा के समानान्तर बुन्देलखण्ड में कृष्ण चन्द्रिका परम्परा भी प्रवाहित रही । इस परम्परा का श्रीगणेश केशवकृत रामचन्द्रिका की शैली के अनुकरण पर द्विज गुमान ने किया । गुमानकृत कृष्ण चन्द्रिका का रचनाकाल संवत् 1838 है । ये महोबा के थे । कृष्ण चन्द्रिका परम्परा के दूसरे कवि श्री मोहनलाल मिश्र हैं जिन्होंने 1839 में कृष्ण चन्द्रिका की रचना की । संवत्-1847 में श्री हजारीराम ने गोविन्द चन्द्रिका की रचना की । मिश्र बन्धु विनोद में राधाकृष्ण चौबे कृत कृष्ण चन्द्रिका का उल्लेख है, किन्तु यह कृति उपलब्ध नहीं हुयी है ।

सेंवढ़ा के कवि बाबूराम कृत कृष्ण चन्द्रिका का उल्लेख हरिमोहन श्रीवास्तव ने अपने निबन्ध दतिया जिले के अज्ञात कवियों में किया है, परन्तु यह कृति अनुपलब्ध है । एक अन्य कृष्ण चन्द्रिका का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज-विवरण में मिलता है जिसके लेखक बलिदेवदास हैं । इनकी कृति भी अप्राप्त है । संवत् 1956 में ठाकुर रूपसिंहजी ने कृष्ण चन्द्रिका की रचना की ।

कृष्ण चरित सम्बन्धी अन्य प्रबन्ध काव्यों में श्रीगोविन्ददास व्यास विनीत कृत कृष्ण-कथामृत का भी अपना विशेष स्थान है । ये तालबेहट (झाँसी) के थे । इस प्रकार कृष्ण चरित्र सम्बन्धी प्रबन्ध काव्यों की रचना सतत् रूप से बुन्देलखण्ड में होती रही ।

बुन्देलखण्ड की कृष्णायन काव्य परम्परा के प्रवर्तक गुमान थे । इनके सम्बन्ध में यह प्रतिश्रुति है कि महोबा के गुमान व खुमान दो कवि बन्धुओं में परस्पर यह प्रतिश्रुति थी कि एक कृष्णायन को रचेगा तो दूसरा कृष्ण चन्द्रिका को । वस्तुतः कृष्णायन पहले रचा गया, क्योंकि गुमानकृत कृष्ण चन्द्रिका से उस पर कुछ प्रकाश पड़ता है ।

यह भरोस चित मंह करि धीरज मनहिं बंधाई ।
प्रभु गुन बरनन है भलो जान न लगै उपाई ।।

इस दोहे से जनश्रुति सिद्ध होती है कि छन्द मंत्र का अर्थ दो या दो से अधिक कवियों के बीच परम्परागत परस्पर परामर्श के द्वारा दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा करने से ही है ।

"छत्रप्रकाश" में भी मंत्र शब्द का अर्थ यही ग्रहण किया गया है । कृष्ण-चन्द्रिका में कविवर कुमान व कृष्णायन का उल्लेख इस प्रकार है :-

सबहिन के पद बंदि कैं, सबको करो प्रनाम ।
कछुक वंश बरनन करौं, नाम संग्राम कुमानि ।।
नगर महोबा बसत हैं विप्र मिश्रा०ो वाम ।
तिन में कुल गोपाल मनि प्रभुता में सम्मान ।।

* * * * *

तिन लघुनाम कुमान को दीन दास फिर नाम ।
श्री कृष्णायन जिन रचो, सज्जन मन विश्राम ।।
तिन लघुनाम, कुमान को उपदेस्यो आनन्द ।
कृष्ण चन्द्र की चन्द्रिका रचई सुमति स्वछंद ।।
वसु गुनवसु मति टीक दे यह संवत निरधार ।
मधु माधव सित पक्ष को ज्योदशी गुरुवार ।।
ताही दिन नदनन्द पद वंदन ही आनन्द ।
कृष्ण चंद की चन्द्रिका रची सुमति बहुछन्द ।।

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि कृष्णायन की रचना कवि गुमान ने ही की थी ।

गुमान कृत कृष्णायन :

कविवर गुमान ने कृष्णायन की रचना की । ये कृष्ण चन्द्रिका के रचयिता कुमान कवि के अग्रज हैं । कवि गुमान ने कृष्णायन के प्रथम प्रकाश में ही कृष्णायन रचने की सूचना दे दी है । इस प्रकार कृष्णायन का रचनाकाल संवत् 1838 से पहले सिद्ध होता है । अतः गुमान कवि ने कृष्णायन की रचना संवत् 1830-35 के

महत्व की होगी । कुछ विद्वान् मंचित कवि कृत् कृष्णायन को प्रथम रचना स्वीकार करते हैं, परन्तु इस परम्परा के प्रथम कवि गुमान ही रहे होंगे । यदि उनका ग्रन्थ प्राप्त होता तो इस तथ्य की पुष्टि प्रामाणिक रूप से की जा सकती थी ।

मंचित द्विज कृत् कृष्णायन :

मंचितद्विज गुमान कवि के समकालीन थे । ये मऊ [बुन्देलखण्ड] के रहनेवाले ब्राह्मण थे और संवत् 1836 में विद्यमान थे । इन्होंने दो पुस्तकों की रचना की- सुरभि दानलीला व कृष्णायन ।

सुरभी दानलीला में श्रीकृष्ण की बाल लीला, यमलार्जुन पतन और दान-लीला का विस्तृत वर्णन सार छन्द में किया है । इसमें श्रीकृष्ण का नख-शिख भी बहुत अच्छा कहा गया है ।

कृष्णायन व ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण चन्द्रिका :

मंचितद्विज ने कृष्णायन की रचना गोस्वामी तुलसीदासकृत् रामचरित-मानस के अनुकरण पर लिखी है । यह रचना दोहों, चौपाईयों में की गयी है । इन्होंने गोस्वामीजी की पदावली का अनुसरण किया है । स्थान-स्थान पर भाषा अनुप्रासयुक्त व संस्कृत गर्भित है । कृष्णायन की भाषा ब्रज है ।

ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण चन्द्रिका की रचना आचार्य केशवकृत् रामचंद्रिका के अनुकरण पर हुई है । इन्होंने अपनी रचना में दोहा, चौपाईयों के अतिरिक्त विभिन्न छन्दों का भी प्रयोग किया है । इनकी रचना पर गोस्वामी तुलसीदास जी का भी प्रभाव है । इनकी भाषा परिनिष्ठित बुन्देली है । इन्होंने अपने ग्रन्थ में ब्रजभाषा व अवधी का भी प्रयोग किया है ।

कवि मंचितद्विज का कृष्णायन एक महाकाव्य है । इसमें कवि कथानक का निर्वाह पूर्णतया नहीं कर पाया है । ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण चन्द्रिका में कथा-कौशल का जो स्वाभाविक प्रवाह है वह मंचितद्विज के कृष्णायन में नहीं मिलता है । मंचितद्विज ने कृष्णायन में संस्कृत पदावली का सफल प्रयोग किया है जिससे

कहीं-कहीं पद रचना सुन्दर बन पड़ी है । मंचित कवि रीतिकालीन कवि है अत: रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ उनके काव्य में दृष्टिगोचर होती हैं । उनके काव्य में स्वच्छन्द प्रेम व श्रृंगार की भावना के साथ-साथ भक्ति भावना की भी प्रधानता है ।

ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण चन्द्रिका पर भी रीतिकालीन प्रभाव है । उनका काव्य ग्रन्थ भी प्रेम, श्रृंगार व भक्तिरस से पूर्ण है । मंचित कवि ने भी कृष्णायन में कृष्ण के वीर रूप का दिग्दर्शन कराया है उसी प्रकार ठाकुर रूपसिंह ने भी कृष्ण का चित्रण एक वीर, पराक्रमी, अवतारी पुरुष के रूप में किया है । दोनों ही कवियों के काव्य ग्रन्थ भक्ति भावना से पूर्ण हैं । दोनों कवि सम्प्रदायमुक्त होने के कारण अपनी रचना में काव्य सौष्ठव से पूर्ण अभिव्यंजना करने में सफल हुये हैं । कृष्णायन की कथा प्रमुख है व शैली वस्तु परक है । कथा में चमत्कारी घटनायें भी बहुत हैं । इसमें वात्सल्य, श्रृंगार आदि का प्राधान्य है । ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण-चन्द्रिका की कथा वीर रस से परिपूर्ण है । यद्यपि उसमें श्रृंगार व वात्सल्य के भी अपूर्व वर्णन हैं, परन्तु कवि का ध्येय श्रीकृष्ण के वीर व पराक्रमी स्वरूप का वर्णन रहा है । मंचित कवि का कृष्णायन भक्तिकालीन अनुभूति व रीतिकालीन अभि-व्यक्ति का सुन्दर संगम है । इसमें जीवन के सुन्दर पक्ष की प्रधानता है । ठाकुर रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका महाकाव्य अधिक, व्यापक, विस्तृत है । इसमें जीवन के सम्पूर्ण आयामों का विस्तृत चित्रण है । इनका काव्य एक युग पुरुष के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है साथ ही साथ उसमें तत्कालीन जन-जीवन व राजसी वैभव का चित्रण व्यापक रूप से हुआ है अत: ठाकुर रूपसिंह का ग्रन्थ अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता है ।

महोबा के प्रवासी कवि शिवदास (कान्यकुब्ज) ने संवत् 1847 विक्रमी में कृष्णायन ग्रन्थ की रचना की । इस कृति को नागरी प्रचारिणी सभा के खोज-विवरण में कान्यकुब्ज तिवारियाकृत् बताया गया है । पण्डित शिवदास ने अपने कृष्णायन की रचना छतरपुर में की थी ।

कवि शिवदास (जगन्नाथदास रिछारिया) कृत कृष्णायन व ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका:

कवि जगन्नाथदास ने भागवत् के दशम् स्कन्ध की कथा का आधार लिया है । ठाकुर रूपसिंह ने भी भागवत् के दशम् स्कन्ध की कथा को आधार बनाया है । कवि शिवदास ने अपने ग्रन्थ की रचना रामायण की शैली के आधार पर की है । इनकी कृति में मौलिकता का अभाव है । ठाकुर रूपसिंह की कृति यद्यपि भागवत् पर आधारित है,परन्तु उसमें स्थान-स्थान पर अनेक मौलिक उद्भावनायें हैं । कवि शिवदास की कृति इसलिये भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इनकी रचना से बुन्देली भाषा की समृद्धि हुई है । शिवदासजी की रचना ठाकुर रूपसिंह के समक्ष कहीं भी नहीं ठहरती है । ठाकुर रूपसिंह की रचना मौलिकता,सरसता, व्यापकता से परिपूर्ण है ।

इस प्रकार कुमान और मंचितदिव ने 18वीं शती के अन्त में जिस प्रबन्ध-काव्य परम्परा का प्रवर्तन किया वह आगे चलकर 20वीं शती तक विद्यमान रही । 19वीं शती में बिहारीलाल शुक्ल ने कृष्णायन की रचना की । इसका रचनाकाल संवत् 1928 है । यह ग्रन्थ श्रीमद्भागवत्, हरिवंश पुराण व अन्य ग्रन्थों पर आधारित है । कवि की शैली इतिवृत्तात्मक है । भाषा सरल व अलंकरण प्रधान है । बुन्देलखण्ड के बाहर इस परम्परा को विकसित करने का श्रेय बिसाहूराम साहू (संवत् 1930) बसंत महाराज (संवत् 1970), राधेश्याम कथावाचक (संवत् 1987), पण्डित रामस्वरूप मिश्र, पण्डित द्वारका प्रसाद मिश्र आदि हैं । श्री दुलीकेश चतुर्वेदी ने भी श्रीराम कृष्णायन लिखा है । यह यमक-श्लेष-मय काव्य है । इस पुस्तक के प्रत्येक पद के (यमक-श्लेष) द्वारा दो अर्थ निकलते हैं । एक श्रीराम का पक्ष तथा दूसरा कृष्णपक्ष का । प्रत्येक पद अपने दोनों अर्थों से दोनों ही पक्ष की कथाओं का पूर्वापर सम्बन्ध बनाये रखता है, किसी भी पक्ष की घटना का ऐतिहासिक क्रम टूटने नहीं पाता । ऐसी कवितायें संस्कृत में मिलती हैं । हिन्दी में यह प्रथम व सफल प्रयास है ।

कृष्णायन परम्परा के समानान्तर बुन्देलखण्ड में कृष्ण चन्द्रिका परम्परा भी प्रवाहित रही जिसके प्रवर्तक द्विज गुमान हैं। द्विज गुमान ने कृष्ण चन्द्रिका में अपना परिचय स्वयं दिया है। ये महोबे के रहने वाले थे। इनकी कृष्ण - चन्द्रिका का काल संवत् 1818 है।

<u>द्विज गुमान कृत् कृष्ण चन्द्रिका व ठाकुर रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका :</u>

द्विज गुमान ने श्रीमद्भागवत् के दशम् स्कन्ध की कथा के पूर्वार्द्ध को 27 प्रकाशों में विभाजित किया है। प्रत्येक प्रकाश की कथा को दूसरे प्रकाश की कथा से सम्बद्ध करने के लिये कवि ने प्रकाशों के अन्त व प्रारम्भ में कथा-सूचक दोहे रखे हैं। इन कारणों से कथा प्रवाह शिथिल नहीं हुआ है। ठाकुर रूपसिंह ने अपने ग्रन्थ को अध्यायों में विभाजित किया है व प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में कथा सूचक दोहे रखे हैं। द्विज गुमान कृत् कृष्ण चन्द्रिका की कथा योजना राम-चन्द्रिका की तुलना में अधिक अन्विति पूर्ण, प्रवाहमय व सरल है। उसमें पात्र-चित्रण की विविधता मनोवैज्ञानिकता व मौलिकता नहीं है। इनकी कृष्ण चंद्रिका में कृष्ण के सौन्दर्य पक्ष को उभारा गया है पर शील के शक्तिपरक पक्ष को नहीं। इनके ग्रन्थ में कृष्ण का व्यक्तित्व एकांगी रह गया है। ठाकुर रूपसिंह की कथा योजना भी अन्विति पूर्ण,प्रवाहमय व सरस है। उसमें पात्र चित्रण की विविधता व मौलिकता भी है। इनकी कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के सौन्दर्य व वीर दोनों ही पक्षों को उभारा गया है। कृष्ण का चरित्र भी बहु आयामी है।

द्विज गुमानकृत् कृष्ण चन्द्रिका रसात्मकता में ठाकुर रूपसिंह की कृष्ण-चन्द्रिका से अधिक श्रेष्ठ है। इसका अंगीरस भक्ति है। श्रृंगार तथा वात्सल्य प्रमुख रूप में, भक्ति व्यापक रूप में व अन्य रस गौण रूप में आये हैं। गुमानकृत् कृष्ण चन्द्रिका भक्तिकाल की अनुभूति व रीतिकालीन अभिव्यक्ति का सुन्दर संगम है। उसमें जीवन के सुन्दर पक्ष की प्रधानता है। ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण - चन्द्रिका का प्रमुख रस वीर रस है। श्रृंगार व वात्सल्य रस गौण रूप में आये हैं।

इस परम्परा के दूसरे कवि श्री मोहनदास मिश्र हैं जिन्होंने कृष्ण - चन्द्रिका की रचना संवत् 1839 में की थी । इसमें 59 प्रकाश व 3800 छन्द हैं ।

श्रीमोहनदास मिश्र कृत कृष्ण चन्द्रिका व ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका :

श्रीमोहनदास मिश्र ने अपनी कृष्ण चन्द्रिका में श्रीकृष्ण के विवाह से लेकर उनके प्रभासतीर्थ गमन की कथा को संयोजित किया है । उन्होंने कृष्ण का सम्पूर्ण व्यक्तित्व चित्रित किया है । इनके ग्रन्थ में जहाँ एक ओर श्रृंगार व वात्सल्य का माधुर्य है तो दूसरी ओर वीररस के परिपाक में ओजपूर्ण दीप्ति विद्यमान है । श्रीमोहनदास मिश्र ने कृष्ण को ईश्वर का अवतार घोषित किया है । वे अनेकों राक्षसों शकट भंजन, बकासुर, अघासुर आदि राक्षसों का प्रयासहीन वध करते हैं । ठाकुर रूपसिंह ने भी कृष्ण को युग अवतारी ब्रह्म पुरुष के रूप में चित्रित किया है । बाल्यावस्था में जहाँ वे साधारण बाल-लीलाओं से ब्रज जनों का विनोद करते हैं वहाँ असुर वधादि अलौकिक कृत्यों से उन्हें चकित करते हुये मानवता की कोटि से ऊपर उठ जाते हैं । मोहनदास मिश्र ने वात्सल्य रस के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं । ठाकुर रूपसिंह ने भी वात्सल्य रस को अपने काव्य में स्थान दिया है । दोनों ही कवियों के चित्रण में समानता है । कृष्ण के नटखटपन से क्रोधित हो माता यशोदा उन्हें ऊखल से बाँध देती हैं । देखिये श्रीमोहनदासजी का चित्रण :-

> करि वाए अब करत हैं, करिहैं कुलिसहि माथ ।
> सकल मनोरथ दास के, पूरन श्री ब्रजनाथ ।।
> व्याकुलता तब ही हरी यशुमति की नन्द नन्द ।
> बाँधि आप जननी करन भक्त विवश ब्रजचन्द ।।[1]

अब ठाकुर रूपसिंह जी का उक्त वर्णन देखिये —

1- कृष्ण चन्द्रिका - श्रीमोहनदास मिश्र, छन्द- 23-24, पृष्ठ-5

बाधि अनयासहि मात उलूखल ।
लागी ग्रह कारज आप तबी जब ।।
देखे जुग भ्रूव शाप मय हरि ।
जमोल तले यमलार्जुन ह्वे कर ।।[1]

श्रीमोहनदास मिश्र कृत् कृष्ण चन्द्रिका में श्रृंगार रस का प्राधान्य है । कृष्ण के चरित्र में श्रृंगारिकता अधिक है । वे रसिक, सहृदय व प्रेमी हैं । ठाकुर रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका के कृष्ण वीर व पराक्रमी अधिक हैं । श्रृंगारिक वर्णन में कवि की अधिक रुचि नहीं है । श्रीमोहनदास मिश्र कृत् कृष्ण चन्द्रिका की तुलना में ठाकुर रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका अधिक विस्तृत व विशाल है । उसमें कृष्ण के सांगोपांग जीवन का चित्रण हुआ है । अनेक पात्रों का चरित्र विकसित हुआ है । मोहनदास कृत् कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण, कंस आदि के अतिरिक्त अन्य पात्रों के चरित्र का अधिक विकास नहीं हुआ है । वैसे रस,भाव व्यंजना के दृष्टिकोण से उसमें व्यापकता है । इसे महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है । ठाकुर रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका में भी भावों की व्यंजना उत्तम ढंग से हुई है । इनकी कृति को भी महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है । दोनों ही कवियों ने अपना कथानक भागवत् के दशम् स्कन्ध से ग्रहण किया है । श्रीमोहन-दास कृत् कृष्ण चन्द्रिका व ठाकुर रूपसिंह कृत् कृष्ण चन्द्रिका में अन्तर यह है कि मोहनदासजी जहाँ कृष्ण-विवाह से कथा आरम्भ करते हैं वहाँ ठाकुर रूपसिंह विभिन्न देवी-देवताओं की वंदना के पश्चात् राजा परीक्षित द्वारा आचार्य शुकदेव से कृष्ण-कथा सुनाने का आग्रह करने से कथारंभ करते हैं । दोनों ही कवियों का काव्य श्रीकृष्ण की भक्ति से पूर्ण है व दोनों ने कृष्ण का चित्रण लोक-उपकारी पुरुषोत्तम परब्रह्म के रूप में किया है । मोहनदास मिश्र जहाँ कृष्ण को साधारण चित्रित करते हैं वहाँ वे उनके देवोपम रूप का भी चित्रण करते हैं । इसी प्रकार ठाकुर रूपसिंह भी कृष्ण को पहले साधारण बाल-ग्वाल का चित्रित करते हैं, थोड़ी ही देर में उनको ब्रह्म के रूप में चित्रित कर देते हैं । दोनों ही कवियों के

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-12, पृष्ठ-38.

कृष्ण सम्पूर्ण लोकोपचारों को पूर्ण करके दैवीय स्वरूप को प्राप्त करते हुये प्रतीत होते हैं । ठाकुर रूपसिंह के कृष्ण अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहकर असुर-संहार में निमग्न रहते हैं । ठाकुर रूपसिंह अपने ग्रन्थ में मार्मिक स्थलों को भली भाँति प्रकाशित नहीं कर पाये हैं ।

गोविन्ददास व्यास "विनीत" कृत कृष्ण-कथामृत व ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्णचन्द्रिका :

कृष्ण प्रबन्ध काव्य परम्परा में झाँसी के प्रतिभाशाली साहित्यकार श्रीगोविन्ददास व्यास विनीत जी का भी महत्वपूर्ण स्थान है । इन्होंने कृष्ण-कथामृत को रचकर कृष्ण काव्य प्रबन्ध परम्परा को प्रवाहित करने में अपना सक्रिय योगदान दिया है । इनकी पुस्तक कृष्ण-कथामृत का प्रथम संस्करण 1953 ई० में प्राप्त हुआ । इन्होंने अपने ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण किया है । इनका ग्रन्थ धार्मिक तथा श्रद्धा-भक्ति से ओतप्रोत है । यह श्रद्धालु भावुकभक्तों को पूर्णरूपेण सन्तुष्ट करने में समर्थ है । ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका में भी भक्ति की पूर्णता है । उनका ग्रन्थ भी भक्त हृदय की पुकार है । गोविन्ददास व्यास जी के कृष्ण कथामृत पर तुलसीकृत रामचरित मानस का स्पष्ट प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है । कतिपय स्थानों पर तो इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी के ही भावों को ग्रहण किया है ।

ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका पर गोस्वामी तुलसीदासजी का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है,साथ ही अन्यान्य कवियों का भी । कृष्ण-कथामृत दोहा-चौपाई,छन्दों में रचित है, जबकि ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका में लगभग 100 छन्दों का प्रयोग किया है । कृष्ण-कथामृत में कवि ने अत्यन्त लम्बी-लम्बी स्तुतियाँ लिखी हैं जिससे कथा-प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है । पाठक में भी अरुचि उत्पन्न हो जाती है । ठाकुर रूपसिंह ने भी दीर्घ स्तुतियों की रचना की है । कृष्ण-कथामृत में गोविन्ददासजी ने नीतिपरक दोहों की रचना की है । ठाकुर रूपसिंह ने भी कृष्ण-चन्द्रिका में नीतिपरक दोहे लिखे हैं । कृष्ण-कथामृत तुलसीकृत रामायण की शैली के आधार पर रचित है । ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका

कवि केशव कृत रामचन्द्रिका के आधार पर रचित है । कृष्ण-कथामृत की भाषा-विशुद्ध बुन्देली व खड़ी बोली है । ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका की भाषा ब्रज, बुन्देली व खड़ी बोली तीनों ही हैं । गोविन्ददास व्यास कृष्ण को ठाकुर रूपसिंह के समान ही अवतारी ब्रह्म के रूप में वर्णित करते हैं । व्यासजी के काव्य में सरलता, सरसता, शब्द व्यंजना, भाव व्यंजना, चमत्कार, प्रसाद माधुर्य, गांभीर्य आदि समस्त गुण हैं । ये सभी गुण ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका में भी दृष्टि-गोचर होते हैं । व्यासजी ने गोपी-विरह का चित्रण विशद रूप से किया है । ठाकुर रूपसिंह के काव्य में कृष्ण के वीर व देवतुल्य स्वरूप का वर्णन अधिक हुआ है, जबकि कृष्ण-कथामृत में कृष्ण के भगवद् स्वरूप का ही अत्यधिक वर्णन हुआ है । कृष्ण चन्द्रिका की तुलना में कृष्ण-कथामृत अधिक विस्तृत नहीं है ।

बुन्देलखण्ड में जितने भी कृष्ण चरित्र सम्बन्धी प्रबन्ध काव्य लिखे गये, सभी की कथाओं का मूलाधार श्रीमद्भागवत का दशम् स्कन्ध ही रहा । प्रत्येक कवि ने मूल कथा को अपनी-अपनी रुचि व भावनाओं के साथ प्रस्तुत किया है । सभी ने अनेक स्थानों पर मौलिक उद्भावनायें प्रस्तुत की हैं । अधिकतर कवियों ने कृष्ण की भक्ति भावना का अपने प्रबन्ध काव्य में उचित दिग्दर्शन कराया है । ठाकुर रूपसिंह ने कृष्ण चन्द्रिका काव्य की रचना अपनी भक्ति-भावना को व्यक्त करने के लिये की है । आप समथर के निवासी थे, जहाँ राधा-कृष्ण की भक्ति अधिक होती है । अतः प्रतीत होता है, आपने अपने काव्य का आधार कृष्ण-भक्ति को बनाया है ।

इस प्रकार कृष्ण चरित्र सम्बन्धी प्रबन्ध काव्य बुन्देलखण्ड में ही अधिक रचे गये ।

- :0: -

ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका का स्थान और उसकी उपलब्धियाँ :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास की गहनता से खोज की जाय तो ज्ञात होगा कि बुन्देलखण्ड की वीर भूमि में कृष्ण भक्ति का विकास अत्यन्त प्राचीन काल से होता रहा है । बुन्देलखण्ड को महाभारतकाल में चेदि और दशार्ण जनपदों के नाम से जाना जाता था । चेदि राजा यदुवंशी थे और उनके काल में प्रमुख रूप से गोवर्धन और गोचारण का व्यवसाय होता था अतः यहाँ कृष्ण जैसे गोप की पूजा स्वाभाविक थी, परन्तु यहाँ कृष्ण की पूजा का निषेध भी मिलता है । कतिपय उदाहरणों से ज्ञात होता है कि चेदि नरेश शिशुपाल में कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना नहीं थी । ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना का उदय शिशुपाल-वध के पश्चात् ही हुआ होगा । कुछ उदाहरणों से प्रतीत होता है कि यहाँ भागवत धर्म का उत्थान शुंगकाल में ईसापूर्व दूसरी शती में हो चुका था । बुन्देलखण्ड में गुप्त काल में भागवत् धर्म के प्रचार के साक्ष्य मिलते हैं । गुप्त युग (300 - 600 ईस्वी) में कृष्ण की भक्ति-भावना की एक प्रामाणिक जानकारी भी मिलती है । पवाया में गुप्तकालीन स्तम्भों के नीचे जो आधार हैं उनमें कृष्ण - लीला विषयक विविध पौराणिक दृश्य अंकित हैं । इससे ज्ञात होता है कि गुप्त काल में बुन्देलखण्ड में कृष्ण और उनकी लीलाओं को कला में भारी स्थान प्राप्त होने लगा था । पुराणकाल में बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत् विदिशा, दशार्ण, निषध तथा त्रिपुर का कुछ भाग आता है । अतः यह सिद्ध है कि पुराणकाल से ही यहाँ कृष्ण भक्ति का विकास होता रहा है ।

साहित्य में कृष्ण भक्ति का उद्भव यहाँ 12-13वीं शती से माना जाता है । इस आधार पर इस कृष्ण काव्य परम्परा का प्रारम्भ 1435 ई0 से होता है । बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य परम्परा के प्रवर्तक कवियों में सर्वप्रथम विष्णुदास आते हैं । इनका रचनाकाल 1435-43 ईस्वी माना गया है । इन्होंने कृष्ण लीला का गायन स्नेह लीला नामक ग्रन्थ में किया है । डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने विष्णुदास को ब्रजभाषा का संस्थापक कवि कहा है और उनकी भाषा को 15वीं शताब्दी की

ब्रजभाषा का आदर्श रूप माना है। इस प्रकार कृष्ण काव्य की कथापरक प्रबन्ध काव्यधारा बुन्देलखण्ड में बहुत प्राचीन है। 1435 ई0 में विष्णुदास द्वारा इस काव्य धारा का प्रवर्तन हुआ व 19वीं शती के अन्त तक इस धारा में अनेक प्रबन्ध रचे गये। इस क्षेत्र के प्रबन्धकार तुलसी और केशव की शैलियों से अत्यन्त प्रभावित रहे अतः उनमें कृष्णायन व कृष्ण चन्द्रिका रचने की प्रतिस्पर्धा-सी रही।

कुछ विद्वान् इस क्षेत्र के कृष्ण काव्य का उद्भव साम्प्रदायिकता से मानते हैं, परन्तु यह तथ्य भ्रमात्मक है। बुन्देलखण्ड की कृष्ण काव्य धारा में पहले कृष्ण का ऐश्वर्यपरक रूप अंकित हुआ, तत्पश्चात् माधुर्य परक। इसका कारण यहाँ के राजाओं का ऐश्वर्य पूर्ण व संघर्षमय जीवन था। बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य के उद्भव काल में ही संगीत के उत्कर्ष के कारण रागबद्ध पदों की सृष्टि हुयी और उसीका प्रभाव सूरदास पर पड़ा जिससे हिन्दी की कृष्णगीत काव्य धारा संगीत प्रधान हो गयी। बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य धारा का शुभारम्भ विष्णुदास की रुक्मिणी मंगल व स्वर्गारोहण कृतियों से हुआ। बुन्देलखण्ड में कृष्ण विषयक अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे गये अतः यहाँ का कृष्ण काव्य एक पृथक महत्व का अधिकारी है। इस क्षेत्र के कृष्ण काव्य के विकास में कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों का उतना योगदान नहीं है, जितना कि इस क्षेत्र की संस्कृति, कला, राजनीति और विशिष्ट परिस्थितियों का है।

आगे चलकर बुन्देलखण्ड का कृष्ण काव्य सम्प्रदायबद्ध व सम्प्रदायमुक्त दो-भागों में विभाजित हो गया। सम्प्रदायबद्ध कृष्ण काव्य पर राधावल्लभ और सखी सम्प्रदायों का अधिक प्रभाव है। सम्प्रदायबद्ध परम्परा के कवियों में वल्लभ सम्प्रदाय के गोविन्द स्वामी, और राजा आसकरन {1548-1605 ई0} हैं। गोविन्द स्वामी की भक्ति सखा भाव की थी। वे भक्त और कवि होने के साथ-साथ संगीतकार भी है। राजा आसकरन ने रागबद्ध पदों की रचना की। राधा-वल्लभ सम्प्रदाय के प्रथम कवि श्री हरीराम व्यास {1533-1603 ई0} हैं। इनका प्रमुख ग्रन्थ व्यास वाणी है। इस सम्प्रदाय के अन्य कवि दामोदरदास सेवक {1540-53 ई0} हैं। इनके मानस गुरु श्री हित हरिवंश जी थे। सन् 1550-1629ई0

में भी चतुर्भुजदास मुरलीधर ने मुरलीधर नाम से द्वादश यश नामक ग्रन्थ की रचना की । इसके अतिरिक्त नेहि नागरीदास [1560-1640 ई०] और चन्द्रसखी प्रसिद्ध हुये हैं । चन्द्रसखी ओरछा निवासी थे व [1643-1701 ई०] भजनकार के रूप में लोकप्रिय है ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में ओरछा निवासी श्रीरसिकदास ने [1686-1696 ई० तक] 22 ग्रन्थों की रचना की । कवि रामकृष्ण चौबे, छबी हित और गरीबदास गोस्वामी आदि भी राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्य कवि हैं । इनके काव्य का वर्ण्य विषय युगल किशोर के प्रति प्रेम ध्यान था ।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त दीवान पृथ्वीसिंह, श्रीमती चन्द्रकला और श्रीमती राजकुंवरि हैं ।

बुन्देलखण्ड में सखी सम्प्रदाय के भी अनेक कवि हुये हैं । जिनमें कवि नरहरिदास, स्वामी रसिकदास, ललित मोहनीदास, आदि प्रमुख कवि हैं ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अभी तक सम्प्रदाय मुक्त कृष्ण काव्य को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना सम्प्रदायबद्ध को । सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्य को त्याज्य ही समझा गया । बुन्देलखण्ड के कृष्ण काव्य का यदि समुचित प्रकाशन किया गया होता तो निश्चय ही साहित्यिक दृष्टि से सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्य का स्थान निर्धारित हो चुका होता । इसी काव्यधारा ने कृष्ण काव्य में जो संकुचन की सीमित प्रवृत्ति फैली थी उसे दूर करने और कृष्ण काव्य को व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया । भक्तिप्रधान होने के कारण उसमें अनुभूति की प्रधानता है । और सम्प्रदायमुक्त होने के कारण सौष्ठवपूर्ण अभिव्यंजना की सबलता भी है । इस धारा के प्रमुख कवि श्रीविष्णुदास हैं, जिनकी प्रमुख कृतियाँ महाभारत कथा, स्वर्गारोहण, रुक्मिणी-मंगल और स्नेह लीला हैं ।

बुन्देलखण्ड में महाशिव काव्य परम्परा का भी प्रवाह जारी रहा । इस परम्परा का प्रवर्तन 16वीं शती में ओरछा के कवि कल्याण मिश्र ने किया । बुन्देलखण्ड में कृष्ण काव्य की प्रबन्ध धारा इतनी समृद्ध रही है कि उससे कृष्ण काव्य के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ता है । इस परम्परा में कृष्ण चन्द्रिका और कृष्णायन रचने की होड़-सी रही । मध्यकालीन भक्तिमूलक प्रबन्धों में कृष्ण-भक्ति-परक प्रबन्ध ही अधिक मिलते हैं । इनमें स्वच्छन्द प्रेम व शृंगार के लिये पर्याप्त अवसर हैं । भक्ति और रीति परक चित्तवृत्तियों के लिये कृष्ण काव्य की प्रबन्ध धारा उपयुक्त रही है । अतः इस प्रबन्ध धारा का प्रवाह 19वीं शती तक रहा ।

बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्णायन रचने का संकल्प तुलसीकृत रामायण की लोकप्रियता से आकृष्ट होकर किया । बुन्देलखण्ड में कृष्णायन परम्परा का श्रीगणेश गुमान कृत कृष्णायन से होता है । गुमान कवि ने कृष्णायन की रचना संवत् 1830-35 के मध्य की होगी । गुमान कवि के समकालीन इस परम्परा के द्वितीय कवि मंचित द्विज है । मिश्र बन्धुओं के अनुसार वे मऊ महेवा आजकल छतरपुर के निवासी थे । कृष्णायन परम्परा के एक अन्य कवि पण्डित शिवदास है । इन्होंने अपने कृष्णायन का प्रणयन संवत् 1845 (1788 ई०) में किया था । कृष्णायन काव्य परम्परा 20वीं शती तक विद्यमान रही । 19वीं शती में विहारीदास शुक्ल ने संवत् 1928 में कृष्णायन की रचना की । बुन्देलखण्ड के बाहर इस परम्परा को विकसित करने का श्रेय विश्राहराम साहू (संवत् 1950) कवि महाराज (संवत् 1970) राधेश्याम कथावाचक (संवत् 1987), पण्डित रामस्वरूप मिश्र, पण्डित द्वारका प्रसाद मिश्र आदि कवियों को है । कृष्णायन काव्य परम्परा प्रमुख रूप से बुन्देलखण्ड की देन है ।

कविवर केशव की रामचन्द्रिका से प्रभावित होकर बुन्देलखण्ड के कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्णायन के साथ-साथ कृष्ण चन्द्रिका प्रबन्ध काव्य का प्रणयन किया । इस परम्परा का प्रवर्तन द्विज गुमान की कृष्ण चन्द्रिका से होता है । इस परम्परा के दूसरे कवि श्री मोहनदास मिश्र हैं, इनकी कृष्ण चन्द्रिका का रचनाकाल संवत् - 1839 है । संवत् 1847 में श्री बख्शीराम ने गोविन्द चन्द्रिका की रचना की ।

जिसकी हस्तलिखित प्रति खोज में प्राप्त हुयी । मिश्र बन्धु विनोद में राधा-कृष्ण चौबे कृत कृष्ण चन्द्रिका का उल्लेख है । सेंवढ़ा (दतिया) के कवि बाबूराम कृत कृष्ण चन्द्रिका का उल्लेख हरिमोहनलाल श्रीवास्तव के निबन्ध दतिया जिले के अज्ञात कवियों में हुआ है, परन्तु यह कृति अनुपलब्ध है । बलदेवदास कृत कृष्ण - चन्द्रिका का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरण में मिलता है । कवि रूपसिंह ठाकुर कृत कृष्ण चन्द्रिका की रचना संवत् 1956 ई० में की गयी । यह एक वृहदाकार ग्रन्थ है ।

कृष्णायन व कृष्ण चन्द्रिका काव्य परम्परा के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में अनेक कृष्ण चरित्र प्रधान खण्ड काव्य भी रचे गये ।

रघुराम कायस्थ कृत कृष्णमोहिका एक खण्ड काव्य है । ओरछा के दिग्गज कवि ने भारत विलास नामक प्रबन्ध की रचना संवत् 1766 में की, किन्तु यह प्रति अप्राप्य है । इसके अतिरिक्त कुंवर मेदिनी जू का कृष्ण प्रकाश भी प्रमुख है । वीर बाजपेयी कृत प्रेम-प्रदीपिका जिसका प्रणयनकाल संवत् 1818 है, एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है । 1760 ई० में कविवर मानदास ने भागवत् के दशम् स्कन्ध की रचना को छन्दोबद्ध किया है । चरखारी नरेश विक्रमाजीत ने 1782-1829 ई० में हरिभक्ति विलास की रचना की । छतरपुर निवासी बख्शीराम कायस्थ ने "द्रौपदी विजय" नामक ग्रन्थ की रचना 1843 ई० में की । इसमें चीर-हरण की कथा वर्णित है । इस प्रकार बुन्देलखण्ड की कृष्ण काव्य धारा बहुत सशक्त है ।

ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका के मूल्यांकन से पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनकी समसामयिक परिस्थितियों, साहित्य चेतना व उनके व्यक्तित्व का आंकलन समुचित रीति से कर लिया जाय । उनके ग्रन्थ श्रीकृष्ण-चन्द्रिका का रचना-काल संवत् 1956 है । बुन्देलखण्ड उस काल में एक पिछड़ा क्षेत्र था और उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में जब हिन्दी में भारतेन्दु युग की परिधि में आधुनिकता का उत्थान प्रारम्भ हो गया था तब बुन्देलखण्ड में आधुनिकता की स्थितियों को पनपने के लिये सहायक उपकरण विद्यमान नहीं है । सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पिछड़ेपन के कारण प्रगति की नवीन दिशायें न खुल सकीं । अतः साहित्य में भी

नवीन उत्थान आना सम्भव न था । इस दृष्टि से ठाकुर रूपसिंह ने जो कुछ भी नवीनता दी है यह कवि की महान उपलब्धि है । तत्कालीन चाटुकारिता से पूर्ण वातावरण में भी कवि रूपसिंह ने चमत्कार की पतनशीलता से ऊपर उठकर नवीन अनुभूतियाँ दी हैं जो कवि की सामर्थ्य की साक्षी है ।

हिन्दी साहित्य का यह दुर्भाग्य है कि ठाकुर रूपसिंह के इतने सामर्थ्यवान होने के बाद भी वे ~~[illegible]~~ प्रकाशित हुये । हिन्दी साहित्य के वृहद् इतिहास या अन्य कृष्ण काव्य परम्परा सम्बन्धी ग्रन्थों में कहीं भी उनका नामोल्लेख नहीं है । ऐसे ही न जाने कितने समर्थ साहित्यकारों की कृतियाँ अज्ञान अन्धकार में पड़ी हैं ।

ठाकुर रूपसिंह के हृदय कमल में कृष्ण की मूर्ति विराजमान थी । उन्होंने उसे साकार करने के लिये कृष्ण चन्द्रिका की रचना की । कृष्ण के प्रति गहन भक्ति भावना ने ही उन्हें कृष्ण चन्द्रिका रचने के लिये बाध्य किया । कवि ने पावन कथा में शब्द चित्र उपस्थितकर रस का अजस्र स्रोत प्रवाहित किया है । कथा को सुन्दर भाषा व अलंकारों के वस्त्राभूषणों से सुसज्जितकर अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है । इस ग्रन्थ रचना का उद्देश्य धर्म,अर्थ, काम, मोक्ष चतुष्फल की प्राप्ति है जिसमें धर्म प्रधान है । कृष्ण चरित्र का गायन अमित फलदायक है । कवि के शब्दों में --

> कृष्ण चरित पावन अमित, अभिमत फलदातार ।
> गाय गाय नर सहज ही, पावै भव निधि पार ।।[1]

भक्ति-भावना से प्रेरित होने के कारण कृष्ण चन्द्रिका के कृष्ण मानव होने के साथ-साथ प्रभु भी हैं । कवि उनकी महानता का दिग्दर्शन अनेक स्थानों पर कराता है । मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट भाव प्रेम भाव है जो मानव व ईश्वर दोनों ही के प्रति हो सकता है । सभी रसों में प्रेम सात्विक भाव है । ठाकुर रूपसिंह ने उसी प्रेम का स्रोत बहाया है । कंस द्वारा प्रेषित राक्षसों का वध करने के उपरान्त कंस का वध करना व उसके आतंक से प्रजा की रक्षा, प्रेमाधिक क्रीड़ाओं से गोपियों को

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-10, पृष्ठ-283

मोहाकित करना, नन्द-यशोदा को बाल क्रीड़ाओं से सम्मोहित करना आदि कृष्ण के विभिन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन ग्रन्थ में है ।

ठाकुर रूपसिंह ने अपने ग्रन्थ में भाव और कलापक्ष दोनों का उचित संयोजनकर काव्य को एक गरिमा प्रदान की है । कृष्ण चन्द्रिका की मौलिक उद्भावनायें कवि की कल्पनाशीलता का दिग्दर्शन करती हैं । ठाकुर रूपसिंह का काव्य निर्विवाद रूप से हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है । उन्होंने वात्सल्य, भक्ति व वीर रस की जो मंदाकिनी कृष्ण-चन्द्रिका में प्रवाहित की है वह उसको प्रतिष्ठा दिलवाती है । भावाभिव्यक्ति के अनुसार कृष्ण चन्द्रिका एक प्रौढ़ रचना सिद्ध होती है । कला पक्ष की दृष्टि से भी उसमें अलंकारों व छन्दों के विविध प्रयोग तथा भावानुकूल भाषा की संयोजना देखी जा सकती है । छन्द भावों एवं शब्दों की तीव्र गतिमयता के उदाहरण है । काव्य शैली की दृष्टि से यह ग्रन्थ भक्तिकालीन रचना प्रतीत होता है । ठाकुर रूपसिंह ने कुशाचारी, युग प्रवर्तक, कर्मठ, कर्मयोगी, धर्मपरायण, लोकरक्षक कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है ।

कृष्णायन व कृष्ण चन्द्रिका और अन्य कृष्ण कथापरक प्रबन्ध काव्य में ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका का भी महत्वपूर्ण स्थान है ।

शिव गुलाम ने अपनी कृष्ण चन्द्रिका में कथाधार श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध को बनाया है उसमें पात्र-चित्रण की विविधता, मनोवैज्ञानिकता, मौलिकता का अभाव है, किन्तु कथा योजना अन्वितिपूर्ण, प्रवाहमय व सरल है । ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका में पात्र-चित्रण की विविधता है । कृष्ण के बहुमुखी चरित्र को उभारा गया है । सभी पात्रों का चरित्र चित्रण उचित है । यद्यपि रूपसिंहजी ने भी श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध को कथाधार बनाया है, परन्तु स्थान-स्थान पर मौलिक उद्भावनायें भी की हैं । कथा-प्रवाह उचित है । ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका भी एक महत्वपूर्ण रचना है ।

कृष्ण चन्द्रिका परम्परा के दूसरे कवि मोहनदास मिश्र हैं। उन्होंने अपने काव्य में शृंगार, वात्सल्य व वीर रस की त्रिवेणी प्रवाहित की है। उनका ग्रन्थ वसुदेव के विवाह से लेकर कृष्ण के प्रभास तीर्थ गमन तक की कथा को संयोजित किये है। इसी प्रकार ठाकुर रूपसिंह की कृष्ण चन्द्रिका भी कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है।

बुन्देलखण्ड में तुलसीकृत रामायण से प्रभावित होकर कृष्णायन भी रचे गये। इस परम्परा का प्रवर्तन मंचित द्विज ने किया इनके अतिरिक्त पण्डित-शिवदास व कुमार कवि आते हैं। इन्होंने अपने कृष्णायन का कथाधार श्रीमद्-भागवत का दशम् स्कन्ध ही रखा है। इनके कृष्णायन तुलसीकृत रामायण शैली में हैं। मौलिकता का अभाव है। कहीं-कहीं तो प्रतीत होता है कि काव्य में तुलसीदासजी के काव्य के भाव ग्रहण किये हैं। ठाकुर रूपसिंह कृत कृष्ण चन्द्रिका किसी भी दृष्टि से बुन्देलखण्ड के अन्य कृष्ण कथापरक प्रबन्ध काव्यों से हेय नहीं है। उसमें भी अनेक विशेषतायें हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के आधार पर अन्य कृष्ण कथापरक प्रबन्ध काव्यों में निःसंदेह उसका महत्वपूर्ण स्थान है। ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका की कथा का आयाम बहुत विस्तृत है। कवि ने मार्मिक स्थलों की बाहुल्यता को प्रस्तुत किया है, परन्तु उनका विस्तृत वर्णन नहीं किया है। उनके ग्रन्थ में कृष्ण सम्पूर्ण लोकोपचारों को पूर्णकर दैवीय व मानवीय प्रवृत्तियों से संयुक्त हैं। ब्रजवासीकृत ब्रजविलास में कृष्ण गोपियों और राधा के साथ प्रेम-क्रीड़ा में ही निमग्न रहते हैं, जबकि रूपसिंहजी के कृष्ण अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक व असुर संहार में निमग्न रहते हैं। ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्णचन्द्रिका बुन्देलखण्ड की कृष्ण काव्य परम्परा को और अधिक पुष्ट करती है। कवि ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर अपनी कुशल प्रतिभा का परिचय दे अपने ग्रन्थ को महत्व-पूर्ण स्थान दिलवाया है। निःसन्देह रूपसिंह जी की कृष्ण चन्द्रिका का स्थान कृष्ण काव्य परम्परा में कम महत्वपूर्ण नहीं है।

ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका की उपलब्धियाँ :-

कृष्ण विषयक जितने भी प्रबन्ध काव्य हैं उनका मूल स्रोत श्रीमद्भागवत ही है । कृष्ण विषयक प्रबन्ध काव्यों का विकास भी लगभग एक जैसा हुआ है, किन्तु कवियों ने अपने भाव-विचारों व मौलिक उद्भावनाओं से उसे नवीन बनाने का प्रयास किया है । रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका का कथाधार भी श्रीमद्भागवत का दशम् स्कन्ध है, परन्तु कवि ने मौलिक उद्भावनाओं द्वारा ग्रन्थ को नवीन कलेवर पहनाया है । पूर्व प्रचलित कथा को नया आयाम प्रदान करना कवि की एक महान उपलब्धि है । प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य महान है । इसमें धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष में से धर्म की प्राप्ति को सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित किया है । कथानायक कृष्ण अधर्म के नाश हेतु इस धरा पर अवतीर्ण होते हैं । पाप के बोझ से दबी पृथ्वी की मुक्ति हेतु अधार्मिक असुरों का संहार करते हैं । दुष्टों के दमन हेतु वे सदैव प्रयत्न-शील रहते हैं । कवि के शब्दों में --

हने दुष्ट निज पान प्रभु बहु भीमार्जुन हाथ ।
वेद धर्म थापित कियो, कीने दास सनाथ ।।[1]

कृष्ण के माध्यम से देश व जाति के गौरव का वर्णन भी कृष्ण चन्द्रिका की एक महान् उपलब्धि है । जाति व देश का गौरव उसके सदस्यों व निवासियों पर निर्भर रहता है । कृष्ण केवल क्षीर सागर में निवास करने वाले भगवान नहीं हैं, अपितु भारत के निवासी,देवकी-वसुदेव के पुत्र, नन्द-यशोदा द्वारा पोषित वीर हिन्दू जाति के रक्षक हैं । भारत भूमि वीर प्रसूता है, कृष्ण वीर हैं । कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण की पाप संहारक शक्ति का दिग्दर्शन कराया है । कृष्ण के लोकरंजक व लोक मंगलकारी रूप का चित्रण किया गया है ।

ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका में तत्कालीन संस्कृति व लोकजीवन का चित्रण हुआ है । कवि अपने समाज से अत्यन्त प्रभावित होता है । समाज की जो परम्परायें व संस्कृति होती है उसका अनायास चित्रण स्वमेव हो जाता है । कृष्ण-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-89, पृष्ठ-278.

चन्द्रिका में भी तत्कालीन सामाजिक परिवेश का सम्यक् चित्रण हुआ है । बुन्देलखण्ड में पुत्र प्राप्ति के अवसर पर उसका जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है । द्वार पर बन्धनवार व सातियाँ रखे जाते हैं । महिलायें सोहर गाती हैं । मिष्ठान वितरण होता है । भोज दिया जाता है । इन समस्त क्रिया-कलापों का चित्रण कृष्ण चन्द्रिका में है । देखिये उदाहरण —

द्वार बन्धनवार बाँधि सातियाँ धरवाय ।
केल तोरन हु पताकन रचौं मन्दिर छाय ।।[1]

कृष्ण की छठी पूजा का चित्रण देखिये —

गावत सोहरे बाज बधाई । मंगल मूल छठी तिथि आई ।।
नन्द सबै कुल बन्धु बुलाये । दान दिये पुन पूज जिवाये ।।
मित्र सभृत्य कुटुम्बिन जोरे । भोजन कौन विनोद न थोरे ।।
भूषन वस्त्र दिये मन भाये । आशिष दे सब ग्रेहन आये ।।[2]

सामाजिक रीति-रिवाजों व प्रथाओं का चित्रण कुशलता से किया है । कवि की सामाजिक निरीक्षण की दृष्टि अत्यन्त पैनी थी । देखिये उदाहरण । बुन्देलखण्ड में कोई भी शुभ काम होता है तो नाइन के द्वारा बायना बँटवाया जाता है ।

बायनो तमोल बाँट बोल वाम ग्राम की ।।
गोपिका प्रमोद आय गावहीं बधावनों ।।[3]

कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण का ऐश्वर्यात्मक रूप तत्कालीन राजसी वैभव की उपज था । उस समय चाटुकारिता, ऐश्वर्य व वैभव प्रदर्शन अच्छा समझा जाता था । तत्कालीन राजे-महाराजे अपने पुत्र-पुत्री के विवाह में अपने वैभव का प्रदर्शन करते है व दहेज इत्यादि भी देते है । अनेक रानियाँ व दासियाँ रखते है । कृष्ण

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका, ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-7, पृष्ठ-23
2- ,, ,, अध्याय-7, पृष्ठ-23
3- ,, ,, अध्याय-10, पृष्ठ-32

के विभिन्न विवाहों के माध्यम से कवि ने तत्कालीन दहेज की कुप्रथा व विवाह के समय होने वाले अनावश्यक प्रदर्शनों का वर्णन किया है। नृप नग्नजीत की कन्या के विवाह का वर्णन देखिये —

> नृप नग्नजीत आनन्द मान। नरनारि करहि हरि कीर्ति गान ।।
> हुत भूमलोन दुहिता कुंवार। कर वेद भेद भांवर अवार ।।
> दस सहस गाय दीनी मढ़ाय। नव सहस दए दन्ती सजाय ।।
> पुन दीन दिव्य दस लक्ष वाज। रथ दए तिहत्तर सहस साज ।।
> पट भूषन दीने विविध रंग। दिय दास दासिका विपुल संग ।।
> बहु दायज दीनों भूप केत। नहि गनै हरि सत्या समेत ।।[1]

तत्कालीन सामाजिक चित्रण ठाकुर रूपसिंह की एक अन्य उपलब्धि है।

तत्कालीन राजा-महाराजा युद्धों में लीन रहते थे। उन्हें अपने राज्य की रक्षा के लिये अनेक संघर्ष करने पड़ते थे। कृष्ण चन्द्रिका में कृष्ण के विभिन्न युद्धों का वर्णन तत्कालीन राजाओं के संघर्षों का ही प्रतिबिम्ब है।

बुन्देलखण्ड में सम्प्रदायमुक्त कृष्ण काव्यों की रचना अधिक हुयी अतःपहले कृष्ण के लौकिक रूप का विकास हुआ तत्पश्चात् अवतारी रूप का। एक ओर कृष्ण का चित्रण कर्मयोगी और नीतिज्ञ रूप में किया गया तो दूसरी ओर कृष्ण के अवतारी रूप का। ठाकुर रूपसिंहकृत् कृष्ण चन्द्रिका का काव्य वस्तु और शिल्प की दृष्टि से लोक तत्वों से संबद्ध है। कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण लोक सहज अनुभूतियों से परिपूर्ण है। कृष्ण चन्द्रिका में लोक काव्यात्मकता के विभिन्न रूपों का चित्रण है। यह कवि की महान उपलब्धि है।

कृष्ण चन्द्रिका में ठाकुर रूपसिंह ने लोक व्यवहार से सम्बन्धित अनेक दोहे लिखे हैं। ठाकुर रूपसिंह एक भक्त कवि हैं अतः ग्रन्थ में भक्ति रस की धारा प्रवाहित है। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से पाठक के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति-

---

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-60, पृष्ठ-173

भावना जागृत हो जाती है। कवि का उद्देश्य श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रचार व प्रसार है, साथ ही कृष्ण चरित के गायन से प्राणी इस संसार सागर से पार हो जाता है।

> कृष्ण चरित पावन अमित,
> अभिमत फल दातार।
> गाय गाय नर सहज ही,
> पावे भव निधि पार ॥[1]

कवि ने भगवान कृष्ण की भक्ति को अपने काव्य के माध्यम से व्यक्त किया है। यही कवि की महान उपलब्धि है। अपनी इन्हीं विशिष्टताओं के कारण ठाकुर रूपसिंहकृत कृष्ण चन्द्रिका का बुन्देलखण्ड की कृष्ण काव्य परम्परा में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। कवि रूपसिंह ने अपनी सूक्ष्म प्रतिभा से ग्रन्थ को समृद्धकर कृष्ण काव्य को और अधिक व्यापक किया है। ठाकुर रूपसिंह ने अपने ग्रन्थ में विभिन्न छन्दों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। उन्होंने लगभग 100 प्रकार के छन्दों को प्रयुक्त किया है। प्रत्येक अध्याय में कई प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुये हैं। अत्यधिक छन्दों के प्रयोग से कथा-प्रवाह में बाधा पहुँचती है, किन्तु विभिन्न छन्दों के प्रयोग के पश्चात् भी कृष्ण चन्द्रिका का कथा-प्रवाह बना रहता है, यह कवि की महान उपलब्धि है। कवि को छन्दों का सूक्ष्म ज्ञान था। कविता के भावों के अनुरूप ही उसने छन्द प्रयुक्त किये हैं। कवि को रस, छन्द व अलंकारों के प्रयोग में भी सफलता प्राप्त हुयी है। अलंकारों का सहज व सुन्दर प्रयोग है। काव्य में रसों का परिपाक उत्तम रूप से हुआ है। कहने का तात्पर्य है, काव्य कला में कवि पूर्ण पारंगत है। ग्रन्थ की कथा, सरल, सुबोध, रोचक है। ग्रन्थ को पढ़ते ही हृदय भक्ति सागर में अवगाहन करने लगता है। अन्त में कवि विद्वान, मनीषी, प्रतिभाशाली, भावुक हृदय, भाषा का कुशल चितेरा व कला पारखी है।

1- श्रीकृष्ण चन्द्रिका - ठाकुर रूपसिंह, अध्याय-90, पृष्ठ- 283

वह बुन्देलखण्ड का एक ऐसा अजस्र देदीप्यमान नक्षत्र है जिसके काव्य की प्रकाश से बुन्देली साहित्य सदैव आलोकित रहेगा ।

—— :0: ——

—— :0: ——

ठाकुर रूपसिंह

कृत

"कृष्ण चन्द्रिका"

—— :0: ——

टाइप प्रतिलिपि

- परिचय -

इस ग्रन्थ के रचयिता श्रीमान् भीष्मसिंह जी ठाकुर हैं। आपने ग्रन्थ में ष्यराम उपनाम लिखा है। आप परम भागवत और भक्ति काव्य के परम रसिक थे। आपने इस दुस्तर संसार सागर से उद्धार पाने के लिये ही श्रीमद् भागवत - दशम - स्कन्ध के आधार पर इस कृष्ण चन्द्रिका नामक ग्रन्थ की टीका का निर्माण किया था। श्रीमद् भागवत में कहा भी है कि -

संसार सिन्धु मति दुस्तर मुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य
लीला कथारस निषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद् विविध दुःखदवार्दितस्य

यद्यपि दशम स्कन्ध के आधार पर बहुत से छन्दोबद्ध भाषा प्रबन्ध विद्यमान हैं, परन्तु इसके और उनके रसास्वादन में क्या अन्तर है इसको सहृदय पाठक महोदय स्वयं अनुभव करेंगे।

उत्तम कवि भणितानी मधुर अपि विदित तु रसदेस।
अन्यानि तु माकन्दी माला मन हरतेस ।।

उक्त ठाकुर साहब सिन्धिया स्टेट के अन्तर्गत मौजा बरौआ के निवासी थे, आप राज्य में प्रधान तथा सम्मान पाते थे। आप के वंश में "ठाकुर साहब" की उपाधि पुराने समय में राजाओं से प्राप्त हुई थी। आपका जन्म सम्वत् 1904 में कायस्थकुलोद्भवठाकुर बहादुर सिंह जी श्री वास्तव के कुल में हुआ था। आप तीन भाई थे। आपने अल्पावस्था में ही हिन्दी, उर्दू और संस्कृत भाषा के अभ्यास के साथ ही साथ वैद्यक विद्या में भी बड़ी कुशलता प्राप्त की थी, उसका और अब भी आप के ज्येष्ठ पुत्र में विद्यमान है। विद्या की कुशलता आपके ग्रन्थ से ही स्पष्ट होती है। कवि, विद्वान और साधु महात्माओं का आदर और सत्संग करने में आप की स्वाभाविक रुचि रहती थी। बाल्यावस्था से ही आप को काव्य के विषय में लिखने पढ़ने का हार्दिक प्रेम था, इसी से आपने अनेकों ग्रन्थों का अनुशीलन भी किया था।

आपका विवाह सम्वत् 1926 विक्रमी में [illegible] दतिया के [illegible] जी कानूनगो की बहिन के साथ हुआ था, आपके (ठा. गोविन्द सिंह जी, ठा. कृष्णसिंह जी, ठा. रामरत्नसिंह जी तथा ठा. रघुवीरसिंह जी) चार पुत्र उत्पन्न हुए और दो पुत्रियाँ। जिनमें ज्येष्ठ पुत्र श्री ठाकुर गोविन्द सिंह जी दफेदार हैं। आप बड़े ही चतुर और व्यावहारिक क्रिया में परम कुशल हैं। अस्तु -

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ । नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वा स्यामन्त काले पि ब्रह्म निर्वाण मृच्छति ।। गीता .

इस समय आपके आशीर्वाद से ही आपका संचालित संसार सब प्रकार हरा भरा है । आपके सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र आप ही की उत्तम पद्धति का सुयोग्य रीति से संचालन कर रहे हैं । अब मैं इस कथन को समाप्त करता हुआ भक्त भय हारी वृन्दावन बिहारी से यही प्रार्थना करता हूँ कि स्वर्गीय श्रीमान् ठाकुर साहब की आत्मा को सर्वदा शान्ति दें और उनके सुयोग्य कुंवरजीको उत्तम कार्यों के संचालन की यथेष्ठ क्षमता दें ।

शुभमिति

विनीत -

होलिकोत्सव, सम्वत् 1982   मधु प्रसाद शास्त्री

पहाड़गांव (जालौन)

अथ श्रीकृष्ण चन्द्रिका -

- 1 -

कवित्त

गावै वेद सुवहु पुरान सिद्ध साधु गाथ, पालै दास पालै सर्व काल के कलुष कौं ।
विघन विनाशन कौ वारौ बाहु दंड मंडै खंडै ज्यौं वितुन्ड कंज भंजै जन दुख कौं ।।
नाम लेत बानी दीन भावन न पावै कान, लेत अपनाय, यौं सुभाय निज सुख कौं ।
एक मुख, चतुरमुख, पंचमुख, सहसमुख, जग मुख, बंदे, स्य गज मुख कौं ।। -1-

दोहा

बानी बीना पान धर, मौ बानी करवास ।
जिहितें, हौं श्रीकृष्ण जस भाषा करौं प्रकास ।। -2-
मत मति मन्दन प्रथम जग निर्गुन कुटिल कुचाल ।
बरनहु किम हरि जस विसद बिन तब कृपा कृपाल ।। -3-
शारदा नाय जग माय पद विनय करौं कर जोर ।
होय कवित दूषन रहित अम्ब कृपा कर मोर ।। -4-

चौपाई

श्री गुरु पद पंकज रज अंजन, दूषन दोष भव रोग विभंजन ।
सुमरत सुखद सजीवन मूरी, करत सकल दुख दूखन दूरी ।। -5-
तिहि उर कर दृग मानस पावन, बरनहु हरि रहस्य मन भावन ।
कृष्ण चरित अगणित मुनि गावहि, शिव ब्रह्मादि पार नहिं पावहिं ।। -6-
नेति नेति जिहि वेद बखानहिं, मति अनुरूप अपर कवि गावहिं ।
कहत कहत बहु कल्प वितीते, भए न हरि जसतें कहु रीते ।। -7-
लहहि न जासु महामतिथाई, सौ मैं मन्द सकौ किम गाई ।
तदपि जन्म निज पावन हेतु हरि जस कहहु सुमिर वृष केतु ।। -8-

दोहा

पार न पावहिं जासु, मुनि हरि जस उदधि अपार ।
लहहि चंचु जलजीव जग, जस कवि मति अनुसार ।। -9-
उमा सहित त्रिपुरारि पद पद्मन शीस नवाय ।
स्य विनय सुन सुरुचि सब, कीजे नाथ सहाय ।। -10-

कंसादि खल अति प्रबल लीन्हत भक्त दुख गोकुल मही ,
हम पाहि पाहि पुकार अब जगनाथ अब रक्षहु सही ।
यह भाँति सुन विधि विनय प्रगटी व्योम सौं पावन गिरा ,
हम पहुर कछुक समय रचहीं प्रगट रहु निज धरा ।। -31-

- अरुलिया -

सुन व्योम ब्रह्म बानी रसाल , विधि शम्भु इन्द्रसुर भेष निहाल ।
तब यह ब्रह्मा देवन सिखाय , ब्रज सादवन कुल अवतारहु जाय ।। -32-
मथुरा नगरी यदुवंश मांह , वसुदेव देवकी प्रगट जांह ।
तिनके निकेत निजनावतार , हुहैं समस्त भुव हरन भार ।। -33-
पुन नन्द जसोमत ग्रेह जाय , करि बाल केल जन सुख दाय ।
सुन सुन किन्नर गन्धर्व देव , ब्रज जन्मैं हरि पद करन सेव ।। -34-
यदुवंश कटय अरु गोप गेह , निज सादवन कुल धर रुचिर देह ।
पुन वेद रिचनन कर विचार , प्रभु लीन्ह ब्रज में जन्म धार ।। -35-
तब निज 2 रुचि अवतार लीन , अब सुनहु चरित जगनाथ कीन ।
तब श्रीपति यौं मनमैं विचार , प्रथमैं अनन्त निजहि तयार ।। -36-
पुन मैं हू लेहौं जन्म जाय , हुवे कामदेव प्रद्युम्न आय ।
अंशहन्य होहि अनुरुद्ध रूप , रचहुँ मम स्वयं रूप ।। -37-

- दोहा -

रमा रुक्मिनी ह्वै प्रगटकुण्डिनपुर नृप गेह ।
आदि शक्ति कारन जगत , जिह पद ममौं अति नेह ।। -38-
एते श्रीमत भागवत , दसम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कुल , भये दोय अध्याय ।। 2 ।।

===== ========== =====

-: 3 :-

यह तीसर अध्याय मैं , होय देवकी ब्याह ।
व्योम गिरा सुन कंस खल , मारन चाहत ताह ।। -1-

- सोरठा -

श्रीशुक मुन सुख पाय , पारीछत नृप प्रत कहा ।
सावधान सुन राय , हरि चरित्र पावन परम ।। -2-

घेर अवास पठये बहुधा भट । बोल नर वसुदेव तहाँ तट ।।
श्यामदई प्रथमहि भगनी हम । सत्य प्रतिग्या पेल कहे तुम ।
-24-
चौसठ पुर्व करै कछु छल । कौन कहे जनमें तिहको भल ।।
जन्मताहीं हत मौ दिन लायहु । नाहित पुत्र छतान नसायहु ।। -25-

- रूपमाला -

भावके खल मात छोरत स्थिर दीने डार ।
वायके पुन देवकी ढिग भी लेव निहार ।।
जान ध्रुव यह उदर मैं मम काल केर निवास ।
आय अबला भगिन मारे वीर धर्म विनास ।। -26-
इंद्र जन्मताहीं निमातौं होय तब दुख दूर ।
सिन्ध पापनचंद वन्दन भाव स्यनि जहूर ।।
पातक परतीत पुंजन ग्रेह के केराय ।
आप राखे कमन तब को तहाँ पुन पुन जाय ।। -27-

- मल्लिका -

कृष्ण चन्द्र काल ताहि । दृष्ट मैं परे दिखाहि ।।
नींद नारि भुख प्यास । हुवे गई सबै विनास ।। -28-

- पंकजा -

कोकेन लोय सिन्ध मग्न कैल अन्त भंग होत जाह ।
देव देवकी सदैव देव देव को मनाय ।।
कृष्णचन्द्र दीनबन्धु दीन स्वजन दर्श आय ।
आत्महौं प्रकाश होय नाश तोर दुख दाय । -29-

- मधुभार -

प्रभु जन्म केर । समयो हुरेर ।।
वसुदेव पास । दुरे देव त्रास ।। -30-

- दोहा -

ब्रह्मा शिव वासव वरुन, रवि शशि अमर अनन्त ।
करहि कर्म अस्तुत हरष, बहु अन्दय छा पन्त ।। -31-
पुन पुन चौंके पाहरु, सके भेद नहिपाय ।
उर विचार वसुदेव तब, अब प्रभु प्रगटाय ।। -32

ऐसे श्रीमत भागवत, दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रव कृत, भयो चतुर्थ अध्याय ।। ४ ।।

== = == = = =

-: 25 :-

- दोहा -

सुन मन्त्री भाषत भयौ नारायण के धाम ।
वैष्णव सन्यासी तपी विप्र विरागी ग्राम ।।

- कुंडलिया -

सुन मन्त्रिय आयत कंस दीन , महि करहु जाय हरिभक्त हीन ।
नहि धुवा वृद्ध बालक विचार तब सोध सोध डारहु संघार ।
इमि आयस मन्त्री दैत्य जोर खल लगे करन उत्पात घोर ।
सुर साधु गाय तपसी अशेष , तब ढूंढ 2 मारे विशेष ।। -25-

इति श्रीमत भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप शुभ भये षष्ट अध्याय ।।

= == == = =

-: 7 :-

- दोहा -

यह सप्तम अध्याय हरि जन्म उत्सव जान ।
मिले नंद वसुदेव कौ कंस अनीत बखान ।। -1-
श्री शुकदेव मुनीश्वर कहि सुन पारीक्षत राय ।
नंद जसोमत तप किया पूर्व जन्म मन लाय ।। -2-

- दोधक -

पूरब जन्महि ये कर बोधा । कीना महा तप नन्द जसोधा ।।
विष्णु प्रसन्न भए दिन आये । माग वरै वर बैन सुनाये ।।
भारत भेषचुधा सुन बानी । भौ विनती सुनिये दिन दानी ।।
जो हमको प्रिय सौ वर दीजे । सेवक को प्रण पूरन कीजे ।
आप समान हमै सुत देहु । कौशित श्री करुणानिधि मेहु ।।
गोदहि ले पय पान करावे । बाल विनोद विलोक सुहावे । -5-

- कवित्त -

कास्यपहु अदिती इक बार तपो सन भार येह वर पायौ ।
देवकीहु वसुदेव भये हर तीन व्र तहाँ अवतार सुहायौ ।।
भादव कृष्ण अष्टमी रोहिन अर्ध निशा वलदेव छिपायो ।
है वसुधा पतधाम जहाँ तिमरी वसुधा वसुधा धर आयौ ।। -6-

- गीता -

जग देख जसुधा पुत्र सुख मन मान मोद अपार ।
सुन नन्द आनँद कंद जन्महि पाइयो फल चार ।।
गन जन्म जीवन सुफल सादर बोल भूसुर वृन्द ।
दिय दान विविध विधानि कंचन रत्न वस्त्र सनंद ।। -7-

- मल्लिका -

होत प्रात नन्द राय । लीन जोतसी बुलाय । पत्रिन पूज पाँय, पूछ पुत्र लग्न भाय ।।
चंद ते सुख अथाई, पर्ने कर्ने की सुधाई । जोतसी सुबोध पाय, मग्न लग्न भाव गाय ।।
पुत्र विक्रमी अपार , जीव जगत को अधार । दुष्ट कुष्ट के सँघार, दास धर्म भूम भार ।।
-10-

- चामर -

नन्द धेन विप्र केहुने अनन्द पायके, लीन धेन लक्ष दोय वत्सला मंगाइके ।।
पूजके प्रवीन दीन स्वर्ण रत्न साज सौ , दान जाचकानि कर्म हर्ष मेघराज सौ ।।
गीत मंगला सुधीन मंगलाद गाइयो, पायने बधायने सुहासिनीन ल्याइयो ।।
जन्म के प्रशंसना की सुधार नाद आइयो, धेन रत्न हेम वस्त्र दान मान पाइयो । -11-

- गीत -

गोप सबै मिल गोपिन या पहु वेष ठये, देन बधाय दही धरके सिर आय गये ।
डारहि नन्द दुआर मची अति कीच तहाँ, फैल गयो लिपटे ब्रज मैं दध कांद महाँ ।
नाचहि गावहि ग्वालिन ग्वाल प्रमोद भये, नन्द अनन्द बढ़ाय सबै दिन बोल लये ।
भोजन भूषण चीर तिनै पहिराय नये , टीकह पान समान विदा करि प्रेम गये । -13-

- नराच -

बढ्यो अनन्द जन्म को ब्रजस्थली भरी जबै, चलो उमंग के दिसान लोक 2 को सबै ।
अमान आसमान ते विमान के देवही , बजाय गाय अप्सरा महर्ष हर्ष केवहि ।
सुरीव किन्नरी नरी नवीन पन्नगी तव , सुरीं दरीं पुरीन केर सुन्दरी जुरी सबै ।
निहार नन्द नन्द को अनन्द सिन्धु न्हावती । कहाय गाय सुख की जसोधहे सराहती। -1[illegible]

- प्लवंगम -

गांदी सुख हुब आय कियो जब नन्द है, पायो चित अनन्द बढ़ी भव सिन्ध है ।
कीने पर्वत लाल रत्न सित मेल है, दीने सर्व लुटाय बड़ी वस फैल है ।
मे दानहि सब भए अजाचक जाचकी, लागी चित मन हाय आतता कायकी ।
मांगी जो विधि जाय दयो सिह नन्द है, जायो जसुधा नन्द जगत आनन्द है । -17-

- रूपमाला -

द्वार बन्दनवार बाँधे साँतियाँ धरच य, केत तोरनहू पताकन रही मन्दिर छाय ।
न्याय निज 2 देन सब परचारकादि बनाय, पाय भूषण वस्त्र रत्नन प्रेम मे सुख पाय । -1[illegible]

- सोरठा -

यह कहि के वसुदेव , जात भए निज भवन को । नन्द पाय तब भेव आतुर गोकुल को चले ॥ -29-

इति श्रीमत भागवत दसम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , भए सप्तम अध्याय ॥ 7 ॥

= = =

-: 8 :-

- दोहा -

कुमार=अश्वपति=कृत

यह अष्टम अध्याय में हरि पूतना उधार ।
नन्द आए मधुपुरी ते दीनि दान अपार ॥
सुन प्रसङ्ग महिपाल के, छूटे भयो दुख भूर ।
लखे बदन सुतराय पुन , हरिया पावन मूर ॥ -2-

- रूपमाला -

कंस भृत्य अनेक जंह तंह करहि सिसु संघार , पूतना पुन बोल लीनी बाल घातिन नार ।
भाख यदु कुल मोह प्रगटे होहि बालक जोय, कहीं सब प्रयत्न के तब सोध मारहु सोय ।
कंस आइस पाय तुरत साज पर सिंगार ,सप्त नव दस दोय कीने अंग 2 संवार ।
नैन अंजन अंग अंजन बैन रंजन होय, पूतना जमदूतना रच रूप अति कमनीय ।
सुन गोकल जान पापिन कीन हीय विचार, नन्द की सुत प्रथम मारो फिर उरोचन धार ।
मन्द मन्द गयंद की गति गई नन्द दुवार, जिय जसुधा लिये जसुधा रहे सेह पग धार ।
देख महर सरूप सुन्दर कीन आदर तास ,पूछ सादर कुसल छेमहि जाय बैठो पास ।
पर्यो प्रेम जनाय जसुधहि दीन बहुर असीस ,वीर तेरो लाल सुख सो जियहि कोट बरीस ।
कान्ह जसुमत गोद ते लीनो कण्ठ लगाय, कंचुकी निज खेव अंचल दीन मुख में नाय ।
दाय दन्तन पयद कीनी गरलहू पय पान, होय व्याकुल भाख अंचल सुंच 2 मसान ।
हाय जसुधा धाय आय छुड़ाय ले निज लाल , कीन बालक जान के यह भयो मो कंह काल ।
त्याग अब गोकल नरेहौं रहे जंव लग प्रान, पर्यो विह्वल होय भाषी प्रकट घोर अपान ।
कीन शिशु सुत पलक में पय प्रान पान सुरार, भूम पात चिकार के कर पुर कुच्छ अपार ।
छ्व लागे गिरत गिर त्यों गिरी दानव नार, कौत है महिरोध अर कृष्णचन्द बिहार । -9-

- तारक -

जसुधा सुत रोहिनि रोवत धाईं । कहि मोहन मोहन आतुर आईं ॥
जंह प्रान बिहाय परी भय कारी । बिलखे बिहंसे उर पैयनधारी ॥
सुत माय उठायके अन्क लगाये । सुख सुम कराय ले मेन छुड़ाये ॥
पुर के नर नार सुने सब धाये । गन बालक वृद्ध युवा जुर आये ॥
तिह देख कहैं सब लोग पुकारी । विप रच सुतो यह राछस भारी ॥
तबही नंदराय तहांकर आये । मथुरापुर ते सुत गोप छुड़ाये ॥ -12-

तिनको मन स्वादहि लेन विचारो , तिहिते अंगुठा मुख में प्रभु धारो ।
    जब बाल दशा अंगुठा मुख नायो , तबके मन में अति क्षोभ छायो ।
शिव सोच करे विध बुद्ध विचारे, वटवाद उठो जब तिन्ह उबारे ।
    पुन भाग कंपे दिग दन्तिन त्यागी , मुन भीत भए महि कम्पन लागी ।
अहि कूरम कोल सबै अकुलाए , जलधातक आद प्रले घन धाए ।
    उत्पात असम्भन बाढ़त गाढ़े , चिताये सिगरे जह केतई ठाढ़े । -19-

- रूप गीता -

यह मात को उत्पात लख हरि भूत भीत विचार
        मुसक्याहि दीन बिहाय अंगुठा मुख नहीं सैतार ।
पुन लाग गुंजारटन बाको बेद बाग्नी धार ,
        लख माय क्षुधित उठाय दुग्ध पिवाय गोदहि धार ।।
अभिलाष कर कहि मात कबहो बड़ा देखहुं तोह ,
        मुख मधुर बानी भाख कब तु माय कहिहै मोह ।
खेल है कब लड़.ग चल के नैन भर मुख लेहुं ,
        माँगिहै कब आर कर कर सोई हंस हंस देहुं ।। -21-

- रूपमाला -

यान आवत कृष्ण दानव कीन अंगनभार, गोद राख सकी न मात उताल भूम उतार ।
बोत बौंडर बाय कीन्हित रात छार उड़ार, टूट पर्वत छिप्प मन्दिर भयो हा हा कार ।
आई गौ बल नंद आवत जहाँ है भव भूप , ले उड़ो बल व्योम को हरि कीन भीम सरूप ।
लीन त्यौंगहि वनावर्तहि व्याल ज्यो खगराय । अंग दैत्य विमर्द अंगन शिला तारकुमाय ।
कीन प्राण पयान आन अपानभाखसुर । सिंघ पेर पंघ जहाँ मद मण्ड कूकर कूर ।
धाय जसुमा आय तहं अवलोक धो न कुमार, होय व्याकुल बार बार हि लाल 2 पुकार ।
कन्त लेन पुकार लाग्यहु जल गयौ उड़ाय, यहीं अन्तर सेल सी नभ ते गिरो भुय आय ।
-24-

- छड.गी -

भुवबल का डारो तिनहि पछारो मारो जन दुख दानी ,
उर ऊपर खेले पग न उठे ते कैसे अरि मद भानी ।
देखत नंद धाये जसुमत धाए कण्ठ लगाये माई ,
नर कूकुत लिहाये बंद सुनाये भाये विध कुलराई ।। -25-

- कुण्डली -

देखे मुद मुख श्याम को माता मन पछिताय, खेले भो धारो बंधे कुटन के समुदाय ।
कुटन के समुदाय चलो कागासुर आयो, सकटरि कुलराय अंग पद दैत्य उड़ायो ।
सकटारि कुलराय भयो उर छेद अंखे , ब्र विहसे मात विलोक भयो मुख समुदी देखे ।-26-

ऐसे श्रीमत भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका सम हुत अथ नवमें अध्याय ।।

* * * *

- दण्डक -

टेरी आंन चंदा नीक मांखन हू मिसरी ते देख छुआ लागी बिन खाये न रहोंगो ।
यह कल भाजन को झकोरिह अकुलावे हुते आये नहीं हाय ताहिबे कैसे के गहोंगों ।।
व्योम को प्रकटन निकट बिलोको परे भावे जिय मोहि याहि अबार लहोंगो ।
तुतो बहराव हों न मानो लिये चन्दा बिन खानो तेरी बात अब बाबा सों कहोंगो ।।
आतही हठीलो लाल अरची अठान ठानी भूल परी मोते याहि चन्द्रमा दिखायो है ।
व्योम की तरैयाँ हाय आई कहूँ देखी सुनी यह तो विधि देवन को पेखन बनायो है ।।
भूख लगी खाउ कल त्याऊँ पकवान मेवा भावे सुख खाउ दूध मिसरी सिरायो है ।
नन्दे जसोदा कहे चंद खांन चाहें कान्हमाने नहीं नेक मैंने बहुत मनायो है ।   -59-

- तारक -

बहु भांतिन मात प्रबोध दुलारे , कछु धीर बही संग लेवहि पारे ।
करतो हलवे तन ठीक झुलावे, मधुरे सुर राम बिदारहि गावें ।।
जसुधा कहि तात कथा इक प्यारी, सुन देनलगे प्रभ चन्द हुकारी ।
नव गाय उठी दिस उत्तर मांही, पुर है रघुवंशिन को इक तांही ।। -61-

- प्रज्ञुतिया -

जिह नाम अयोध्या पुण्य धाम, तिहि भूपति को दशरथ नाम ।
तिनके प्रिय तीन पतिव्रताहि, कैकई सुमित्रा कौशिलाहि ।
प्रकटे तिनके घर पुत्र चार , रिपु दमन भरत लक्ष्मण उदार ।
हैं ज्येष्ट सुवन मेह रामचन्द्र, ज्ञ गुण रूप शील बल धर्म इन्द्र ।
जग जिनको यश गावत अपार , भई रमातीय सिय रूप धार ।
नृप रामहिं चाहो राज देन , सुन कैकई मांगो पूर्व बैन ।
सुमता भरतै नृप देहु आन , बन वर्ष चतुर्दश राम जान ।
सुन चले राम वन त्याग ऐन, तह.ग लखन सीय मधुरति सैन ।
गए चित्रकूट पय सरित तीर, रच पर्ण कुटी बस सिय सधीर ।
तंह मिले भरत सुत प्रजा आन , पुन अवध गये लहि पाद त्रान ।
तब पंचवटी रघुनाथ जाय, किय वास बसे बरदुखनाय ।
कर सुपनखा रावणहि प्रेर , वह त्यायो माया मृगहि ¤ टेर ।
रघुनाथ चलो मृग दूर जाय, तब अन्तर छल सीता चुराय ।
सुन कृष्ण तमक उठ बोल भ्रात, धनु देउ लरों सिय चोर घात ।
सुन जसुधा विस्मय रही पाय, हौं चौंकत लागी नजर आय ।
तब ले राई नोनहि उतार , कहि सुनो दूर कर दोष भार ।।   -69-

सो श्रीमद भागवत , दसम अपन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , भव दसमों अध्याय ।। -10-

== ======

- दोहा -

एकादश अध्याय मैं, श्रीहरिबाल विनोद,
प्रेम मगन नर नारि सब, आनँद नन्द जसोद । -1-
कहि मुनीश महिपाल मन, मदन गुपाल चरित्र,
होहि दोष दुख दूर सुन, बाल केल जग मित्र ।। -2-

- अति गीता -

नन्द 2 नन्दन खेलत संग बालक वृन्द वृन्द ।
नील वारिज नील वारिद नीलमन द्युति कुन्द कुन्द ।।
देख मोहत नारि सुख निहार आनन फंद फंद ।
वार फेरत सब पावत नैन दोष आनन्द मन्द ।। -3-
किरीट मुकुट सिर पीत झगन तन विहरत अजिर मुदित नद नन्दन
बोलत वचन सुधा अधरन के नैनन के निज जिय सिराय चन्दन ।।
अंग 2 प्रति वार अनंगन शोभा धाम प्राण मन चन्दन ।
ठगन सुधा मृगराज लजावन चाल विनिंदित मारगयन्दन ।। -4-

- चौपाई -

खेलन लगे द्वार दुहु भाई, संग सखा बहु खेल मचाई ।
बछरा पूछ धरे कर धाई, भागहिं गिरहिं धरन पर आई ।
धाय उठाय माय उर लावे, मोद राख पय पान करावे ।
भोजन को नँदराय बुलावे, नहि आवे जसुमा गहि लावे ।
भोजन करत 2 चल जाई, भगे छीर ओदन लिपटाई ।
बहुर रोहिनी जसुमत ल्यावे, नीके गहि भोजन करवावे ।
प्रात उठाय उबट सुख नावे, सुख लूटत पितु मात न्हावे ।
दोउ अभाय छीय सुख नीके, फल मनोर्थ मात पित जीके । -8-

- दोहा -

यह सुख सागर दिवस निश, मगन ब्रज जसोमत नन्द ।
देख देख सुजान चरित पुर नर नारि अनन्द ।। -9-

- चौपाई -

एक दिवस हरि माटी खाई, जसुमहि कही सखा सब जाई ।
सुन धाईकर साठी धारी, पकरे जाय माय कनवारी ।
कहि जसुमा तू माटी खाई, सुन बोले तुहि कौन बताई ।
कहि मैया यह सखा तुम्हारे, मोहि कही सब जाय विचारे ।
तब हरि कही रिसाई, झूठे सब हम माटी खाई ।
सुन वह सखा रहो अरगाई, कहि तेरी मुख जान न जाई ।
कहि जसुमा तूं सांचो जोई, निज मुख वाय दिखावहि मोई ।
मात वचन सुन वदन बतायो, मुख भीतर ब्रह्माण्ड दिखायो ।। -13-

जिम ब्योम भिन्न घन गन दिखात । पुन तिमिट सबै हुई एक बात ।।
त्योंही हरिमें सब भए लीन । वे किन्तु देख शिशु वत्स कीन ।। -19-

एते श्रीमत भागवत , दसम अयन हरिराय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , पन्द्रहवें अध्याय । - 15-

==========

- 16 -

- दोहा -

षोडस अध्याय बिच , माया ते नित मुक्त ।
अस्तुत कर हरि की भए, लोकहि आनन्द युक्त ।। -1-

- तारक -

तुम भूपति दुस्तर श्रीहरि माया । नहि मोह लहै अस को जन पाया ।
हरि देख बधे बिच व्याकुल ताई । निज मायहि लाघव लीन उठाई ।
गति मायहिके चित फेरहि पायौ । धरि ध्यान तहीं हरिके ढिग आयौ ।
पद पदमनमें शिर नावि नवायौ । कर अंजुल जोर सुअस्तुत गायौ ।
तुमही जगकारन कारण स्वामी । प्रनवौं प्रभु हौ जग नायक नामी ।
जब दैत्य बढे सुत धर्म बिनासि । तुम दीन गऊ हरिदासन भासि ।
तबही अति उद्भित रूप सवारौ । निज दासन रक्षहु दुष्ट संहारो ।
सुत धर्म हि थापहु पाप नसायौ । करुणानिधि नाम सदा जग आयौ ।
प्रभु कीन कुपार मम गर्व नसायो । जिहके कर अन्ध भयौ दुख पायौ ।
बिन नाथ कृपार न परो पहिचानि । जिहकी अस्तुत नहीं श्रम हानि ।

- प्रभुलिया -

बैराट रूप तुम हो उदार । प्रत रोम रोम ब्रह्माण्ड धार ।
तिन्में हम केयुरत अपार । प्रभु माया मोहे मति बिचार ।
अपराध क्षमा मम करिय देव । प्रभु शरत हरन संसार भेव ।
बिध बिनय बचन सुन कृष्णचंद । कर कृपा हेर मुख बिहस मंद ।
तब प्रभु प्रसन्न अज उर अनंद । शिशु वत्स देय हरिचरन बंद ।
कही जय जय जय जग प्रणतपाल । बिधलोके गए अपने उताल । -9-

- मत्तगयंद -

वे शिशु वत्स सब बिधने हर लौबरा सम्बत एक बितायौ ।
जाग उठे नहि जान कछु जस मैडिल पूरब फेर बनायौ ।
सौनन ते हरि वत्स गए ढिग देख सबै यह बैन सुनायौ ।
भोजन के नहि पूर भए हम भाजन तू बछरा तुरत ल्यायौ । -11-

धरवीर जहीं धरनी तन पावै । करमल्ल झुकहि भूम गिरावै ॥
कबहू हति राहुहि बाहि पराई । कबहू कर सैनर देहि भगाई ।
पुन बालकरे बहुरो दुहु भाई । बन धेन चरावत होत बनाई ।
इतेन मह एक सख बलरामै । बन तालको सोध दयो घनश्यामै ।
अतिरम्य अमी सम है फल तामै । तिह रक्षक राक्षस धेनुक नामै ।
पुन दानव नामसहायक रासी । सुन ग्वाल भये फलके अभिलाषी ।
तह जाय सबै फल तोरन लागे । सुनकै रव आवत धाय अभागे ।
बलराम हिये कर लात प्रहारी । गहिकै पगको पटको दनुजारी ।
फिर धेनकही उठ दानव धायो । बन मोहन गोपन रोष भगायो ।
अत दैत्य उपद्रव देख कृपाला । गहि पाछिल पाँव भ्रमाय उताला । -14-

- मोतीदाम -

हयो तरसाँ पर राम रिसाय । गये अति आतुरप्राण नसाय ।
गिरे तरुसौ तरु ताल अपार । भय बहु चूर हले द्रुम डार ।
भयो घनशोर भरी दिश चार । हली पुहुमी सिर शेष उठार ।
सुनी घनश्याम महा घन शोर । चले अति आतुर तापन ओर ।
तहीं बलभद्र महा इक धाय । कह्यो हरिसौ बरनी सब आय ।
गये अति आतुर तहाँ घनश्याम । सुनी घनताल जहाँ बलराम ।
भजी सब धेनुक केचर धाय । घेरे तब ते हरिसौ रन आय ।
लयो यदुनन्दन ताल उपार । तबै जिनमै मदुवाद सँहार ।
हनौ दल दानवको क्षणराय । निशंक भयो सब गोप समाय ।
सब भर झोरिन मै फल तोर चरे घन धेनु फिरे बहु ओर ।
निहार निरामय भाव मुरार । करो प्रभुको स्तुत होत अपार ।
सुनी घन गोपन बहु सन्दार । चले प्रभु ले बलराम मुरार । -20-

- पद्धरिया -

मग होत विविध हासी विलास । तब आये वृन्दावनहि आस ।
फल ल्याये घर बटवाय दीन । पुन गोप विदा कर सैन कीन ।
उठ प्रात राम घनश्याम दोय । कर शौच शुद्ध तन मज्जन सोय ।
कर भोजन कर सेंधुत गुलाब । घन धेनु चरावन धेनु धाय ।
पुन चरत विपिन पुन धाम धीत । गये कालीदह तट सुखी हीत ।
सुत नीर पान दूत मे अचेत । गोधन बहुधा गोपन समेत ।
हरि जानी अहि विष विषम जाय । फिर सुधा सींच कीने सजान ।
उठ बैठ गोप मन गाय वृन्द । सब भाव धर्यो रखे मुकुन्द ॥ -24-

इति श्रीमत भागवत , दशम स्कन्ध हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , सत्रहवें अध्याय । -17-

==========

कान्हहि आपन बालक जानी । ज्ञान मैं ब्रह्म हिये अनुमानी ।।
सत्य कहे उर आय विचारी । इन्द्र कीये जजु कारज हारी ।। -24-

मधुभार - पाले गुवाहि लैव ग्वालहि । यौ रीत आय , पौराण गाय ।। -25-

तुरंगम - अब हरि मत कीये, तब गुर पति दीये । गिर सम नहि दूजो तिह कल सब पूजो ।।

मोटनक - नन्दादिकको गुन मुख्य भयौ वृन्दावन फेर निदेश दयौ ।।
देवाधिप पूजन त्याग कियौ । गोवर्धन की प्रभु चाव कियौ ।। -27-

स्वागता - प्रात होत सब न्हात भवन्नु धाम देव गुर पूज नवन्नु ।।
पाक साज मिष्टान्न भरेवु और 2 खिटनि भरेवु ।। -28-

त्रिभंग - भर भूर पदारथ थार परातन छाउर हु शकटान जब तब नन्द सुनन्दनु ले उपनन्द
लै गन गोपिन गोप कैव ।
वर बाजन बाजत गायत गीत मनोहर मंगल नारि तबै,
यह भांत गए गिरराज यहाँ उतरे पर दक्खिन फेरु जबै ।। -29-

गीतका - पकवान व्यंजन थात इक 2 नाम अग्नित को गनै ,
करपूर केसर पुक्त रच तब स्वादयौ तनही घनै ।
धर ठौर 2 समान गिरधर पुष्प माल चढाइके,
पुन धनी 2 वितान यह तह तात वस्त्र मंगायके ।। -30-

मधुभार - तिह काम सोहि, गिरराज जोहि छबि धनी केहि जन चित्त मोहि ।। -31-

तंगुता - वर विप्रन नन्द बुलायके जंग बन्ध पूज सिधायके
धृत धूम दीप नैवेद सौ , गिर पूजियौ विध वेद सौ ।। -32-

स्वागताः - कृष्ण नन्द सब धेन उचारी ध्यान शुद्ध मनहीं सब धारी
देहि छाँ तुमको गिरराई आय खान करि भोजन पाई । -33-

चँचरी - कृष्ण वैन सुनि सबै लहि नन्द गोप समाज को
छूट लोचन जोर पानन ध्यान के गिरराज को ।
दिव्य सुतर धूम रूप सँवार के हरि रावके
भेत राखिय वेद आनन प्रेम धनी विराजके ।। -34-

- पादाकुल -

चरन सरोज भक्त सुख दाई पट पद देव ताहिंव लपाई ।
उर बनमाल मनोहर राजे मुकुट शशिका कुल कुण्डिल भ्राजे ।। -35-

- मर्गंद -

हरा कृष्णाही कहि लौ हुँदु देखहु । प्रकट मनोमयकाय चीन चुभेलहु ।
गिरराज की धुन साथ दण्ड प्रणामहे । अछोभ बोधहि सर्व पूर्व ध्यामहे ।। -36-

- मोतीदाम -

कहै नर नारि परस्पर बात । कहै सब इन्द्र लखी यह भांति ।।
नहीं सुरवान सुधा तिहि पच्छ । लखौ दिखही गिरदेव प्रतच्छ ।। -37-
नर सुन्द देव सुन इन्द्र रहै । हरि साथ भाय सुन धेन कहे ।
वा भाग राग हित देर करो सुन स्याय 2 नर अर्ध धरो ।। -38-

चन्द्रकला -

पुन भावहि गोप सबै हरिसों निज धाम दिखावहु नाथ हमै ।
सुन के प्रभु चन्द रची पल में निज सुन्दर लोक अलोकरमै ।।
रचना लख के सुख पुंज महा सब मग्न भए महिमा लखै ।
कहि रूप कहा कहिवो तिहिको चित कोटिन चातुरता करै ।। - 18-

सुखमा -

बैकुण्ठ देख सुख ज्ञान पाय बोले सुगोप माहि नाथ नाथ ।
माया तुम्हार अद्भुत अगाध । जो जान लेय कम पमी ताथ ।।
हो आदिदेव श्रीपति मुरार । धायो सुकाज तन अर्थ तार ।
भू भार उतारहु धार देह । कीन्ही पुनीत प्रभु नन्द गेह ।।
श्री कृष्ण चन्द्र सुनि विचार । माया दुरन्त तब दीन डार ।।
भूलो निदान वर ज्ञान आय । लीनो सुलोक रचना उठाय ।।
जानी सुजोग सम स्वप्न ताय । आयो समस्त उर पूर्व भाय ।।
ज्यो नात गोत सुत बान्धवाय । त्यो मान कृष्ण पति ज्ञानराय ।। - 22 -

इति श्रीमत भागवत, दशम स्कन्ध हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत तीसमें अध्याय ।। - 30 -

- 31 -

दोहा - या इकतीस अध्याय में, बीन कथाय रसाल ।
टेर लई बन गोपिकन, रहस हेत नदलाल ।।
कहि शुक सुन परिछत नृप, अगम गाथ हरि चाल ।।
कारन पर कारन परे , मोहत मान अकाल ।
सुखद शरद ऋतु अमल , शशि राका रजनी पाय ।
रच्यो रहस प्रारम्भ हित , हरि चित सुख उपजाय ।। - 3 -

पद्धरिया -

जब हरे कृष्ण गोपिन दुकूल । तब दीन तिन्हे वर पलुन फूल ।
हम कातिक में तुम्हरे प्रसङ्ग । करिहैं सुख दायक रहस रंग ।।
तबतें गोपीगन मन अधीर । दिन काटहि ज्यो त्यो मदन पीर ।
सब गौर मनावहि जोर हाथ । कब आई सुखद ऋतु शरद रात ।।
दिन अन्त विहार हरि धाय आर । लख राका रजनी मोदकार ।।
नभ निर्मल उड़ गन घटि प्रकाश । महि सुखद चाँदनी शोभराश ।।
सर सलिल अमल फूले मुनाल । मधु गुंज सुकत अलिकुल मराल ।।
सुचि प्रफुलित मधु मदन बान । शशि प्रबल सुधा शोभा निधान ।।
बहि शीतल मंद सुगंध पौन । बन लखन सुख बाढ़ि काम भौन ।।
पिक चातिक शुक तीतर चकोर । कर बोलत डोलत सघन शोर ।।
संयोगिन को सुख देत भूर । कर विरही जन मन अगन सूर ।।
दिल दलहन में अनुराग रूप । मन मनसिज जागत समय भूप ।। - 8 -

चूड़ामन - काहू की दीन मे दियै काहू की मित होत ।
यदुनन्दन सुन चन्द्र की नित्य दिन चग मग चोत ।।
जगमग 2 होती जोती ज्यौं चन्दा रवि राजै ।
चक्रवर्ती चूड़ामन शोभा धन कल्याकन लाजै ।।
पुरी भरी तिमारी उमंग छवि निरखे परवाहि ।
शोभ नीर मज्जत तक्षन त्रिय नर मग 2 चाहि ।।
मग 2 त्रिय नर दैं भैं मिलौ भार विहारौ ।
कोट अनंगधार सुन उज्जम जय सैं तैलारौ ।। -30-

घनाछरी- चपके चनाच चित्र रचके दिखाई रीझ माईश निकाई चित्र कौन अनुहारिये ।
चार मुख प्रह्मापति कह न्हुरराजु के किन्तु भूप चार काम कैसे पट तारिये ।।
और देव कौन ताकी दैं अली उपमा कोप इन सम रही यह मत उर धरिये ।
व्याल काड़टीनो दहि काली पूत कीनी गिर गोवर्धन लीनी कर इन्द्र मद हरिये ।।

निशपालका - कृष्ण तन श्याम बहु काम मन मोहिये । नाम बलराम श्रुति दाम सम साहिये ।
मैन सुख दैन छवि ऐन तकि दोहये । देव नर देव नहि एव सम टाहये ।। -32-

रूपमाला- नृप देखत चन्द्र दोऊ चीन मारग जात। मेहि दौन नारि नर भरपूर आनन्द गात ।।
धाँम धाँमन बावली पुर चाकते पर द्वार। पुष्प माल सुगन्ध कहीं हि रूप रास निहार
भाव श्याम लखान लौं इत भूमियो मत कोय। भूल यौ बहु चाय तौ तट चाउ जमुनहि
होय ।।
रजक आवत देख भूपत वस्त्र न्यारी धोय। पूछ दाउये छीन लैवे देहु आयसु बोय ।।

मनहंस - मदरामद उन्मत्त अँगमग डोलहीं । विहँस राते नैन बैन भ्रम बोलहीं ।।
गाये राये हँस मत्त बहु धावहीं । इम धीरचिक विमत्त लिये पट आवहीं ।।
बहुरख भारन वस्त्र धरे नर शीशहि । आवत मारग लोय जात जगदीशहि ।।
रजकहि भाव मुरार वस्त्र दीजे हमैं । पेपन आपे देख बहुर दैहे तुमैं ।।
सुनके बोलो बैन मूढ़ क्रमावहे । यह आभीर कुमार त्यागी अभिलाष है ।
निरभै ठाड़ौ तीर बैन कहुमा नहीं । चितकी आतन चाहि भूप पट माँगहीं ।।
नटकी वेष विशेष नेताहि भेंट है । चाहत धारन नाल काल कस पेट है ।
काँमर ओढ़न हार धेनु चरचाहि हैं । पितु मातहि विलवाय त्याग पट चाहि है ।।
-38-

दोहा - कहि हरि हम तुम कहत, तू उलटी बतरात ।
पट दीने ते होय तुहि , लाभ कुशल बहु भाँत ।। -39-

मनहंस - सुन कृष्ण बैन इम बोल अभागो। तुहि लाभ लोभ कुल अम्बर माँगो ।
दृ_त भाग चाग उर आग सुलोंही । किन प्रोन्त हौन कहु डोलहि तोही ।।
सुन दुष्ट बैन कर क्रोधहि भारी । सिर मारहि पान तिरछोह प्रहारी ।।
कर छिन्न भिन्न धरती धर डारौ । कहु चीय आठ हरपाम सिधारौ ।।

भुजंग लेखर -

हुने मुरारि येन रोस 2 रोष भोय गो समीप कूद कूद गो उलन्घ कृष्ण केहरी ।
गह समीप भैय कंस देख काल काल से भगे चहो न भाज बांधि लाज दांव देहरी ।।
धर अमद चर्म अंग टोप सीस पे अंग खण्ड हाथ ले उठो प्रचार भेहरी ।
करे प्रहार अंग शेल शूल सक्ता हू गदा तदा निहार कृष्ण लोग कंप कंप है हरी ।।
मुरार अन्य कामनी मुरार सी मुरो रैन घने प्रहार अस्त्र शस्त्र गाज सी गराजही ।
त्रिलोक भूप भूत यक्ष देवता सु देवता सभीत आदि 2 बैंच यत्र तत्र भाजही ।।
निहार बार रोष कृष्ण केश कंस के धरे गिराय भूम कूद अंग धार भुर भार है ।
भयो अपान पुर 2 प्राण के पयान गौतहार दैत्य देख लोग कृष्ण पे उपार है । -14-

दोहा - दीन दुन्दभी हरष सुर , बरष सुमन मन्दार ।
कर अस्तुत गर्वैन भवन, कहि जय जगदाधार ।। -15-

सोरठा- मधुरापुर सर धारु हिमरित कंस विध्वंस सब ।
मुदित विपन नर नारि, विलसे हरि शासित सुख निरख ।। -16-

पद्धतिया - नव बन्धु कंस वध देख धाय । धर अस्त्र शस्त्र प्रभु पे रिसाय ।।
तिन आन कीन अति घोर युद्ध । सब 7 हते कृष्ण समर क्रुद्ध ।।
जब दैत्य परो कोऊ न दीठ । तब कंस लोथ लीनो घसीट ।।
पुन बन्धु केश ले जमुन तीर । मन बैठ चिन्ता के भ्रम शरीर ।।
अस्ती प्रापी युग कंस बाम । पति मरन श्रवन सुन त्याग धाम ।।
बहु रुदत करत व्याकुल अधीर । आई जह बैठे युगल बीर ।।
पति गति निहार युगकर पुकार । युन शीश गिरी महि तन बिसार ।।
करताड़हि उर पति गुन बखान । तब गह निकट करुणा निधान ।।
कहि माई दीजै शोक त्याग । जन मरण जियन सब जीव लाग ।।
यह जगत स्वप्न सम झूठ आय । का करिय सोच दुख बढ़त जाय ।।
को तात मात सुत मित्र भाय । जह जन्म लेत तह मिलत आय ।।
जौलों जालौं सम्बन्ध जोग । तौलौं सब सँग सुख दुक्ख भोग ।।
यह देह जीव सब गहत और । है जीव अमर भ्रम विविध ठौर ।।
तिहिके हित उरका सोच धार । जग झूठको झूठो विचार ।।
तिहिते माई अब धरहु धीर । उठ मानहि तर्पन करहु नीर ।।
सुन मज्जदीन युग अंजुलीन ।रच सुतक चिता हरि अग्नि दीन ।।
भी सुन्न सुराकृत प्रकट आय । विधिहित हरिके कर अग्नि पाय ।।
पुन मथुरा की चरनहिंघाट । तबका यह भी विश्राम घाट ।। -25-

दोहा - सब भये यदुनाथ की, रोड़ बीच धन कोय ।
उन्नत सुयश दोऊ नहीं कहत बेद सुख तोय ।। -26-
सो श्रीमत भागवत , दशम अयन हरि आप ।
कृष्ण चन्द्रिका सम सुत , छियालीस अध्याय ।।-46-

तब शीश धरो सिर छत्र महीपत । कुल भोज यदु गुन दीपन दीपत ।।
तुम्हरी महि कौनहि मानहि आनहि । हम दण्ड करैं अपराध प्रमानहि ।।
गुरु साधु गऊ द्विज पूजन कीजिये । कर राज प्रजै सुख शोभहि दीजिये ।।
यदुवंश तजौ धन मातुल त्रासहि । तिहिको बुलवाय बसाय अवासहि ।। -17-

<u>मरहठा</u> - इम असुर प्रहारी जन हितकारी गिरधारी बहु भांति
मानहि सुखदाय सुन मन भाय सुर आय नर प्रात ।।
तब भूषन वस्त्रहि कर धर अस्त्रहि छत्र चमर सुन प्रात ।
सिंहासन दीनो जग सुख भीनो कीनो तिलक सुप्रात ।।
जिय मंगल साजे बाजन बाजे बिरद बिराजे रूप ।
अस भयो न कोऊ है नहि सोऊ हुँहै भूमिन भूप ।।
दुज दानहि पाए जन यहिराए बरसाए सुर फूल ।
प्रभु सुतहि बखानहि सब तैमिमानहि गानहि जय सुख मूल ।। -19-

<u>दोहा</u> - उग्रसेन कौं राज दै, मनि मन बसन भराय ।
कृष्ण चन्द्र बलभद्र जुग, आए जह नँदराय ।। -20-

<u>कुण्डली</u> - धन लै सब आगे धरो नन्दबबा के आय ।
ठाढे सन्मुख जोर कर विनय करत सिर नाय ।।
विनय करत सिर नाय करैं किहि भांत बड़ाई ।
सहस बदन हम धरे तऊ तव सुतहि न गाई ।।
सहस भांति कर लाड़ पाल आरम्भ समनन ।
न्हावहि चलो मात हमहि सब ज्यौ न्मिपनी धन ।। -21-

<u>छप्पय</u> - बहुर भने हरि तात यहि तुम चितगन मान्हु
हम बन रीत बखान मात पित तुमहु सुजान्हु ।।
रहि मथुरहि कछु रैन कंस भय कैद तजो धन ।
तिनहि बुलाय बसाय आपहीं मात पितहि मिल ।।
बिन कहो काल यह दुतहि सुख पठे मोहि तुम्हरे भवन ।।
पिता जो न पठावत हमहि तह कहो नहीं सैबट ॰ सुजान ।। -22-

<u>मदन ललिता</u> - मो पालागन तात जाय मैया सौं कहियो ।
ज्यों है आए कृपा करत त्यौं ही निज रहियो ।।
बांनी सुनसह ठौन नन्द सुगवारि उमहियो ।
मैन दीह उसांस शोक सागर मैं बहियो ।। -23-

<u>मत्तगयंद</u> - गोप सखा सुन बैन अधीन भये सबही मन मांहि बिचारे ।
कृष्ण कहीं विपरीत अपार परे अस जान हिये छल धारे ।।

माया प्रेर सबन फिरर नाई । मोह तोर तिहिं रची ख्वाई ।।
तब नन्दहि कहि यदुकुल नाहू । करहु तात किहि हित पछिताहू ।।
जो कहुँ दूर देश हम जाते । तो तुम दुख पावत अति ताते ।।
मथुरा वृन्दावन इक जानो । इनमें अन्तर कौन बखानो ।।
इहिविधि हरि बुझाय जब कहेऊ । नन्द हृदय कछु धीरज भयेऊ ।।
कहि करजोर नाय महि नाई । प्रभु आज्ञा अपेल सुत गाई ।। -36-

दोहा - तब गति पै करुणा ख्यान, काहू की न बताय ।
बैठो वृन्दावनहिं मैं, निज मधुर हि समायें ।। -37-

चौपाई - वृन्दावन कहँ नन्द सिधाए । हरि अमर मधुरापुरछाए ।।
चलेजाहि मग नन्द दुखारी । हारिउतम्यत मनहु जुआरी ।।
मन बिन फणिक बणिक धनहीना । जिम जल रहित विकल मनमीना ।।
अति व्याकुल तनकी सुधनाहीं । लटपट चरण परत मग माँही ।।
जात महाविन हेरत मधुवन । विरह विथा बाढ़ी उर दुख्यन ।।
ज्यों त्यों कर वृन्दावन आए । सुर नर नारि सकल सुन धाए ।।
सुन जसुधा अति आतुर आई । देखन तहँ बलराम कन्हाई ।।
व्याकुल नन्दहिं बैन सुनाए । नाथ कहाँ दुइ तात बिहाए ।। -41-

दोहा - सुनि नन्द जसुधा बचन, दुगन नीर भर लीन ।
हरि अमर भूखन बसन, काड जिया कहँ दीन ।।
राम श्याम भूखन बसन, देख गिरी मुरझाय ।
देत भाख यह नन्द प्रत, आए सुतन गमाय ।। -43-

चौपाई - पारस पलट उपल कर लीनो । मणि बिहाय फ गुंजहि मन दीनो ।।
कंचन खोय कांच घर ल्याए । लालन तज पट भूखन भाए ।।
बिछुरन कठिन सुतहि जब कान्हा । कियो हियो राख कुलिस समाना ।।
बिन सुतान कैसे दिन कटहीं । छिन देखे बिन छाती फटहीं ।।
सुत बिन दुख्य लेय का करई । भुजग सुधा जोर धन धरई ।।
कहि नंद हरि पट भूखन दीने । सुहि दुख नहीं कौन धौ लीने ।।
कृष्ण बात कछु कहि नहिं आये । सुन तू प्रिया परम दुख पाये ।।
कंस मार सुन मो ढिग आए । प्रीत रहित हरि बचन सुनाए ।। -47-

दोहा - सुत भए वसुदेव के, कहि ममपालन छोहि ।
सुन हौं अति व्याकुल भयो, कौन कहौं गति तोहि ।। -48-

चकोर - प्रीय न जान्हु कान्हहि तात अँ अब के गिरव के पितु मात ।
ब्रह्म अनाद अखण्ड अनन्त कही बधि गर्ग यहे सुहि बात ।।
नन्दनजान्हु नन्द हमे करता भरता हरता जग फेर ।
मायहि डार भुलार दश उन होत कहा अब मैं अब तेर ।। -49-

चौपाई - महर नहरिहि पुत्र निज जानी । आदि पुरुष परमेश्वर मानी ।।
प्रथमहि हम नारायण जाने । माया बहुर मोह मैं साने ।।
नन्द प्रिये सब बात सुनाई । कीन कृष्ण विधि भेद रखाई ।।
कान्ह विरह व्याकुल नंदरानी । भई गति मनहु फनीमन हानी ।।
हरिहि पुत्र जबही जिय जाने । रोवे गुन हरि गुनन बखाने ।।
ज्ञान नैन जब हीय निहारे । धरे धीर भगवन्त विचारे ।।
वृन्दावन वासी नर नारी । भए सकल हरि विरह दुखारी ।।
क्यहि निरन्तर गुनगन पांति 2 प्रेम नेम परन्हु किहि भांति ।। -51-

दोहा - बिकल सकल हरि विरह मैं , बुर पयोधि नर नारि ।
बैठे अयधि जहाज चढ़ , नाम मलाहि उभारि ।। -52-

चौपाई - अब मधुपुर लीला सुनराई । कहिहौं विशद यथा मत गाई ।।
नन्दहि कछुक दूर पहुंचाये । पुन वसुदेव निकट प्रभु आये ।।
देख मात पितु भए सुखारे । राम कृष्ण पुन तनय निहारे ।।
यहि सुख समय लौ कौनाई । जनु तन कल नहि सबी अघाई ।।
तब वसुदेव देवकी कहेऊ । सुत बहु दिवस नन्द ग्रह रहेऊ ।।
खान पान इन उन संग कीना । जात धर्म कुल कर्म न चीना ।।
तिहिते न्योत बन्धु दुज लीजे । जात कर्म सब विध कर कीजे ।
कहि देवकी करिय जिय नीके । फूले फले मनोरथ जीके ।। -58-

दोहा - सुन समोद वसुदेव तब , लीने गर्ग बुलाय ।
कर पूजन आसन दई , सुत निज हेत सुनाय ।। -59-

चौपाई - राम कृष्ण उभय दोउ भाई । बहु दिन रहे नन्द ग्रह जाई ।।
तिहिते संस्कार कुल केरो । कीजे सहित विधान सबेरो ।।
सुन बोले ऋषि गिरा सुहावन । इनके संस्कार जग पावन ।।
अति विचित्र दुख दारिद दावन । कहत सुनत भवभीत नसावन ।।
तदपि समोद करहु व्यवहारू । जाति कर्म कुल कर्म उदारू ।।
सुन वसुदेव हृदय हरषाई । लीने न्योत विप्र कुल भाई ।।
संस्कार सुत तिनसे कीनी । भोजन मान दान विध दीनी ।।
सुत उठाहि उपवीतहि किएऊ । धेनु सहस दस दानहि दिएऊ ।। -62-

दोहा - संस्कार कर वेद विध , मंगल गाय निशान ।
भोजन दान विधान सुत , को वरनै बखान ।। -63-

चौपाई -

बहुर पठन वन हेत कुमारा । कीन मात पित मनहि विचारा ॥

सुभ अवन्तिकापुरी निवासी । काशी बसी महाँ गुन राशी ॥
चउदह विद्या केर निवासी । अजय अनादि अधीस उपासी ॥
सान्दीपन मुन नाम बखानें । बोध तंत्र श्रुत शास्त्र पुराने ॥
तिन पँह पढ़न हेत दुग भाई । दीन हरष वसुदेव पठाई ॥
जाय जुगल चरनन सिर नायो । बहुर मनोरथ मुनहि सुनायो ॥
सुन मुन अति पावन प्रभु बानी । लगे पढ़ावन अति सुख मानी ॥
अल्प काल विद्या सब पाई । जोतिस विद्या करन भलाई ॥ 67 ॥

दोहा -

चार वेद षट शास्त्र अरु, अष्टादसहु पुरान ।
मंत्र जंत्र तंत्रादि सिख पिङ्गल भी अजमान ॥ 68 ॥

चौपाई -

अस्त्र शस्त्र करषन विधाना । कोक कला सुभ नीत विधाना ॥
चउदह विद्या जे जग माहीं । चौसठ कला प्रभाव गनाहीं ॥
अल्पकाल महँ दोउ भाई । महा अंग विद्या सब पाई ॥
एक दिवस गुरुपद सिर नाई । बोले कृष्ण चन्द हरषाई ॥
नाथ वेद सब यहै कहाहीं । गुरु ते उरिन होत नर नाहीं ॥
तदपि देव लखि शक्ति हमारी । दीजै गुरु दछना विचारी ॥
सुन हरि वचन गुनै अधिकाई । उठ आतुर निज त्रियहिं सुनाई ॥
ये त्रैलोक नाथ असुरारी । इनसों कहा माँगिए प्यारी ॥ 72 ॥

दोहा -

तरो न कोउ आज लग, विद्या अब्धि अपार ।
ये शिशु थोरे काल में, भए तबै तट पार ॥ 73 ॥

सोरठा -

हैं समरथ दुग भ्रात, अगम काज इनकों सुगम ।
सुर महिसुर सुखदाय, हरत भार भुव विरद यहु ॥

चौपाई -

सुन यह भाँति भेद जब गायो । मुन पत्नी मन अति सुख पायो ॥
कहि जो ये प्रिय ईश्वर आँही । सुतक मुन माँगिय इन पाहीं ॥
इस विध मन विचार कर दोई । आए जहँ यदुनन्दन दोई ॥
दीन भाँति सन्मुख करजोरी । कही मुन सुनिय विनय इक मोरी ॥
हम सुत सहित पर्व इक माँही । गए नहान पयोनिध माँही ॥
लगे नहान लहर इक आई । सुतहि सो लेगई बहाई ॥
नहि जानहि किहि जलचर खाया । भयो हृदय दुख दारुन दावा ॥
जो चाहहु गुरु दछना दीनो । तो सुत ल्याय शोक मम छीनो ॥ 78॥

दोहा -

सुन गुरु वचन प्रनाम कर, रथ चढ़ दोउ भाय ।
स्यंदन हाँक समीर गति, तीर नीर निधि आय ॥ 79 ॥

चौपाई -

प्रभु आगम सागर सुन काने । भीत भयो न हेत कछु जानै ॥
हेमथार भर मणि गन नाना । द्रुम वपुधर आयउ तन माना ॥
कर प्रणाम धर भैटहि आगे । पानजोर कहि सुत अनुरागे ॥
अहो भाग्य प्रभु दर्शन दयऊ । कारण कौन आगमन भयऊ ॥
कहि प्रभु मज्जन पर्वहि पाई । गुरु माता समेत सुत आई ॥
तिनको सुत तरंग तव मांही । ग्रस गयो वह देहु वहांही ॥
यह सुन कहि सागर सिर नाई । प्रभु गुरु सुत मोमहि नहि आई ॥
तुम सबजानहु अन्तरयामी । किहिविध छिपहि तुमहि जगस्वामी ॥

दोहा -

त्रेता राघव रूप तुम, मुहि बांधो जगत्राता ।
डरहुं मर्यादा सुत तपतो मैं सब भांति ॥ ८५ ॥

चौपाई -

कहि हरि कोहुम्मथो नहीं रहेऊ । तो पुन कहो कहाँ वहिह गयेऊ ॥
कहि सागर सुन यदुकुल नाहु । मै यह भेद न जानहुँ काहु ॥
असुर एक शंखासुर नामा । सो मै रहै महा बल धामा ॥
है समस्त जीवन दुख दाई । नाहि जानहु धौ लीन्हिस वाई ॥
सुन प्रभु पूछो सागर भांही । गए रहे शंखासुर पांही ॥
हरि लख दैत्य रोषकर धावा । कुटक हति प्रभु मारि गिरावा ॥
फारेउ असुर उदर तट आनी । देखन्सुक सुत मान गलानी ॥
कहि हलधरहि कृष्ण पछिताई । वृथा वधो यह दानव आई ॥८८॥

दोहा -

सुन हलधर कहि देव अब धारन कीजे संख ।
सुनकै ग्रहन कियो तुरत, करक आउध तेह ॥ ८९ ॥

चौपाई -

पुन संयमन कियवनी गयऊ । धर्मराज आगे है लयहु ॥
अर्घ पाद पूजे दोउ भाई । बैठारो सिंहासन ल्याई ॥
बहुर जोर कर विनय सुनाई । महाराज मुहि दीन बड़ाई ॥
धन यह देश चरन प्रभु परेऊ । मन धन मोहि कृतारथ करेऊ ॥
सुन कहि कृष्णचन्द मुसक्याई । मम गुरु पुत्र देहु तुम ल्याई ॥
धर्मराज सुन बालक ल्याए । प्रभुहि सौंप चरनन सिर नाए ॥
कहि जन यह मम बानी जाता । गुरु सुत लिये आवहि पहुनाता ॥९३॥

दोहा -

जन्म न दीनो आज लग, राखो कर बहु हेत ।
लीजे सादर कृपा निध दीजे गुरहि समेत ॥ ९५ ॥

चौपाई -

गुरु सुत युत रथ चढ़ दोउ भाई । शम्भु पुरी आये हरषाई ॥
गुरुसुत गुरहि सौंप करजोरे । बोले पुन कर विनय निहोरे ॥
आयसु मोहि कहा प्रभु आई । सुप प्रसन्न बोले ऋषिराई ॥
दीनो मृतक पुत्र मुहिं ल्याई । यहो नहि पर मुझ चढ़ आयी ॥

तुम समान वर शिष्य हमारे । अगम काज जग कौन बिचारे ।।
क्षेम कुशल निज ग्रेह पधारो । गोकुल प्रभु उरते न बिसारो ।।
पुन-पुन पुन मन देहि असीसा । होहु अजय जुग-जुग जगदीसा ।।
पाय असीस गुरहि सिरनाई । चढ़ रथ हरष चले दुहु भाई ।। 98 ।।

दोहा -
पहुँचे हरि मथुरा निकट, उग्रसेन सुन कौन ।
आए सेन समाज सब मुदित बजाय निशान ।।
मिल सबको यदुवंश मन, पहुर गये निज धाम ।
नित नव बाज बजाय पुर, गावहि हरि गुन ग्राम ।। 100 ।।

इते श्रीमत भागवत, दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत, सैतालिस अध्याय ।। 47 ।।

-48-

दोहा -
अड़तालिस अध्याय मैं, वृन्दावन व्रजराट ।
उद्धव को पठवाय कर, गोपिन मौंहि उचाट ।। 1 ।।

सोरठा -
कहि सुन सुन नर राय, कृष्णचन्द्र लीला विशद ।
सुमन सुखद सुख पाय, यहि लोक परलोक हित ।। 2 ।।

तारक -
दिन एक हरी व्रज की सुध आई । कमलदृहि पाछिल बात सुनाई ।
वृन्दावन लोग वियोग हमारे । अति शोच सबै अति होहि दुखारे ।।
तिहिते सुख दीजिय दूत पठाई । यह बोध करे सबको तह जाई ।।
इम मैन कियो यदुनन्दन दोई पुन बोल लिए दिन उद्धव सोई ।।
सबको सुन चाहु कही हरि बानी । प्रिय मित्र सदा हमरे अति ज्ञानी ।।
प्रथमै गति नन्द जसोमत पाँही । कब आन मिटावहु मोह महाँही ।।
जिहिते सुख पावहि देहि बिहाई । सुधि ईश्वर जान भये मनभाई ।।
पुन गोपिन सौ कहियो समुझाई । पति मान हमै कुलकान बिहाई ।।
दिन रात सबै मम पंथ निहारे । निशि औधि गनै तन प्राणहि धारे ।।
तिनके मन बोध करो कब जाने । पति भाव सबै मोहि ईश्वर माने ।।
कहि उद्धवसो यह भाँति सुनाई । पुन पत्र लिखी निज हाथ बनाई ।।
चहुँदिहि नदबावहि दंड प्रणामा । वर भेजुन मित्रन आशिष स्यामा ।।
मन गोपिन बोध सयोग निदेसु । सुर नागन क्षेम सुप्रेम सदेसु ।।
लिख माधव उद्धव कर दीनो । उन आदर सौ शिरधर लीनो ।।
पुन भाव लियो सुख पाय सुनाई । जिहिते उनके मनको भ्रम जाई ।।
पहरो निज वस्त्र अभूषण दीने । रथ दै वर धेम विदा हर कीने ।। 10 ।।

दोहा-

उनन्चास अध्याय मैं, ऊधो गोपिन पाँहि ।
ज्ञान कथा उपदेश ही, भ्रमर गीत यह माँहि ।।
कहि मुन मौलि महीप सुन, गोपिन गाय अपार ।
जिहि उर इनकी जस बसौ, तिहि बस रहत मुरार ।। 2 ।।

द्रुतविलम्बित -

हरि उद्धव ध्यान पितांबरे । धरिउ अंगन वस्त्र विभूषने ।।
बहुर बैठ उताल स्यंदने । पथ जो बरसानिह सामने ।।
निरख आवत मारगही रथे । बहुन गोपिकजात जिहिं पथे ।।
सकल देख परस्पर पोक है । सखि लखी रथ आवत है यहै ।। 4 ।।

चंचरी -

ठाढ़ है अविलोकिये रथ कौन कोकित आत है ।
बैन यों सुन भाख दूसर मोहि सुर दिखात है ।।
आयके ब्रज पूर्व ते ब्रजराज को मथुरै गयो ।
कंसकों मरवाय पीय रमाय राज तहाँ लयो ।।
कौन कारन फेर आयउ देखका सुख देखगी ।
प्रान ले तबही गयो अबकों अपानहि लेयगी ।।
आय सुर सुर पेखहु कहीं यों सुत घाट है ।
के विचार उतार के पट बैठ यो सब बाट है ।। 6 ।।

मोदक -

आयौ रथ सो निकटे जबही । देखी सुन गोपिन ने तबही ।।
भावै नहि हरकूर यहै । है स्यंदन वाचहु ताय यहै ।।
कज्जलन लोचनकीट धरै । आभूषण अंगन माल गरै ।।
श्यामायन शोभ शरीर लसै । यौ बात कहीं किहि ग्राम बसै ।। 8 ।।

दीपक -

भेटी जाय नवानी यह आय कौन । दे वे दशा हमारी रथ बैठ मौन ।।
बोली सुवाल दूजी ठौर निभैर । आयौ अपास नटके यह कालकेर ।।
ऊधो बखान नामी माधौ सखाय । बृन्दावने विहारी संदेश ल्याय ।।
पेखेन तासुखन सुन एकांत ठौर । ऊधौ समीप गोपी सब गईं दौर ।।
कीनौं प्रणाम सादर हरि मित्रजान । पूछी बहोर स्वागत अरु प्रीतिलान ।।
देखो सुजान ऊधो तज रथ आसन । छाया निवाय बैठी चहुँओर बाल ।।

तोमर -

भल कीन उद्धव आय । हरि समाचारहि ल्याय ।।
निज मात पितु के हेत । नहि नियम की सुध लेत ।।
तुम निकट वासी आउ । पिय के संदेश सुनाउ ।।
मन गयो हर हरि साथ । अब बाय के बल हाथ ।।
सोउ अबक बरषन जाय । दिन होत है दुख दाय ।।
हरि भर स्वारथ हेत अब । कर प्रथम पल पल प्रीत ।। 14 ।।

झूलना -

ज्यो चन्द की चाहि चकोर होरी चकोरी सुभै चन्दना नेक हेरै ।
दीपै पतंगा निज देह वारे नहीं दीप दाया कर ताहि फेरै ।।
स्वाति पपीहा पी पी पुकारे न स्वाती पपीहा सुध बूंद गेरै ।
भृङ्गा गुलाबै लाले गुंजारे न भूमै गुलाबी कर नेह टेरै ।।

नीरै निवारै तन मीन हारे न नीरै कहु पीर मीनै निवारै ।।
पक्षी सुखै फल हीन त्यागै जटा खिलाते कुल पूर्व भारे ।
सर्वस्व ज्यो हम अर्प दीनो तदापि माधो न भए हमारे ।।
चाहै उन्हे वे न चाहै इन्हे वे इकंग प्रीते पिय रहेक मारे ।। -16-

शिखरनी - लखै प्रेम मग्ने निरखत न लग्ने हरि हिते ।
गने ज्यो धन्ये न इन सम अन्ये दृढ प्रीते ।।
तही आयो भृंगापरत एक गोपी पद कियो ।
कहे बानी व्यंगारखनि म मन भृंगा मिल लियो ।
अरे कूरा भौंरा कुसम प्रत तूने रस पियो ।
मधुवती नामै भयउ तुम याते हरि दियो ।।
पठायो है दूती चरन्ना प्रिय धूती कत परै ।
चिते कारे भारे कपट वपु धारे सम हरे ।।
फिर तु ज्यो धायो पुहुप प्रत चाले हित नहीं ।
यही माधो रीते लखहि कर प्रीते तिय तहीं ।।
नहीं बाला मौने बचन ललिता याखिय भनी ।
करी कुब्जा रानी जुब हरि भए मातुल हनो ।।
तहीं जा रे भौरा जुगल पद पद्मे रस भरो ।
दई जोरी जोरी निरख वर कुब्जै तुव करी ।।
अहे जन्मै 2 जनन यह माधो हम जुने ।
पठायो पात लै कुसत कत दीनो तन धने ।।
गई कामा उराका निकट प्रिय माता सुत हरी ।
सती सीता गीता विमल विपरीता जग भरी ।।
जहाँ ऐसी या है कहहु तह वाको प्रत चले ।
उनाये वेनाये अहहि हम रहे बहु अले ।। -21-

गीत - उद्धव ले पतियो हमको ब्रजराज कहाँ ।
के वरन्याबहु जाय सुजानहि बोल यहाँ ।
यो सुन उद्धव भाख सखे तुम धीर धरो ।
माधव को सन्देश सुनो विधि मोह तरो ।।
सान्त्वपत्र सुनावन वासन भोग तजौ ।
योगिन की गति योग अराधहु मोहि भजौ ।।
ध्यान धरो हिय मैं दृढ विचरहिनाय ररो ।
देखहु आतम राम सदा नवियोग परो ।
पत्र सुनाय कही पुन उद्धव बात यहै ।
यो अनमय अगोचर ब्रह्म अनीह अहै ।।
प्रीत सखी सुन सासन मातुल मान दई ।
जाहि नहीं चहुकाहुम देखहु भेद भई ।।

पौन अकास धरा जल पावक तत्त्व सबै । राजस तामस सात्विक साधि शरीर रचै ।।
कारन इन्द्रिय देवहु जीव समेत रहै । है प्रतपर्म अचेत यही श्रुव वेद कहै ।।
सर्व प्रकाशक सामत सूक्ष्म रूप चले । मायहि ते अधि छिन्न नहीं जन टूट टुले ।।
है गति जासु अलौकिक को तिहि भेद लहै । ताहि लखी पति मान बड़ी अति भूल अहै ।।
नाम रटौ रसना प्रत आतम ध्यान धरौ । पावहु ज्ञान पास नहीं विरहाग जरौ ।
पास रहे अति होत अनादर वेद कहै । याहि विचार विहाय तुमै हम दूर अहै ।।
और सुनौ इक बात कही हरि भेद मई । पौन बनाय तुमै जबही घन बोल लई ।।
वाम मनोज बिथा अनुरागहि रास कियो । अंबर भाव लखो उन अन्त रहो छुटियो ।।-28-

<u>दोहा</u> - सुनत जोग विषको मनहु , लोन जरे पर नाय ।
बोली सब अकुलगो , विम्ब दीन यह आय ।। -29-

<u>मालती</u> -

सुन सुन मन गोपी कोप बानी उचारी । सुन उधव आवै बोत तेरी अनारी ।।
गम अगम ज्ञाने जोग ध्याने सिखावै । मति तव कत बाने व्योम धावै बलावै ।।
तव सगुन लख्यै क्यों अख्यै अराधै । गुन गन कत खोवै जान्हवी ब्र तीर साधै ।।
तन तरुन तमाले अंग अंगे रसाले । मुख छवि पर वारैं चन्द कन्दर्प वाले ।।
शुभ श्रवण लसने नैन अम्भोज वाले । भुव धनुष अहि मोहे सोभई क्रीट भाले ।।
कट पर हर लावै मत्त मातंग चाले । तिहि अलख बखाने ज्ञान ज्यो निराले ।।
जिहिं पट बनवारी धार कीनै सदाही । जिम निरगुन भावै रूप रंगो न्याहीं ।।
जप तप व्रत ज्ञानै जोग ध्यानो समाधी । यह विधि 2 बांधी विरह व्योहार बांधी ।।
पति अहतन कोउ भस्म अंगे लगाई । सुन 2 जग जीवै प्रान म्हारे कन्हाई ।।
ब्रज वनितान वाने भोग कुब्जे करायो । यह सुमत तुममें कैसको मार पायो ।।
उत कहहि न माधो याहि कुब्जा पठायो । कहि रच रस छोटे जोग ले मोट आयो ।।
जिहि तन पन सारे वस्त्र आभर्न धारे । तिहि भसम चढावै जोग मुद्रा सवारैं ।
तुम उठहु यहाँ ते ब्रेह लै ब्रेह जाओ । मधुपुर घर पाला जोग जोगै सिखाओ ।।
हम सब मत एकै लेय सौदा न तेरी । कुब्जहि घर दीजे गांठ बांधे करेरी ।।
जिहि उर पुर बैठे कृष्ण कीने उजेरी । तिहि उर किम पैठे ज्ञान तेरी अंधेरी ।।
तिहि धिक धिक बानी तात माते लजावै । तव हरि पद पद्मे ओरको ओर धावै ।।-37-

<u>सोरठा</u> - कुब्जा कृत सब काम , नाच नचावत गिरधरहि ।
खोटी अपनी दाम , ऊधौ दोष न ब्योहरिय ।। -38-

<u>मोटक</u> - गोपिन की मन प्रीत प्रतीतिय । उद्धव जोग कथा सब रीतिय ।।
एकहते ये अनेक बखानहि । भूल गयो गुन ज्ञान सयानहि ।।
बैठ रहे शिर नाय नहीं चुप । और कहूँ मन चोर रहे चुप ।।
कुब्जकी गति हवै गई चोपहि । हाय भयो पछिताव सकोपहि ।। -40-

चौ. उद्धव तों एक बात बखाने । होय गये बलदेव सिराने ।।
बाल मित्र हमरे अति आँही । वे कबहुँ सुध करत कि नाहीं ।।
यों सुन अपर कहे अस बानी । सखी अहो तुम निपट अयानी ।।
है हम ग्वाल अहीर गमारी । मधुपुर की अति सुन्दर नारी ।।
भये तिनबस कुन कुंजबिहारी । क्यों ल्यावत सुध होहि हमारी ।।
जबतें हरि मधुपुरहि सिधाये । अपने सबते भये पराये ।।
होत कहा अबके पछताने । आवन आस रहे घट प्राने ।।
जो प्रथमे अस जानत भेवे । तो उनकों हम जान न देवे ।। -44-

दोहा - अष्ट मास गिर बन धरन, सहत तपन अति जोर ।
पावस आये करत है, शीतल क्यों घनघोर ।। -45-

चौ - तेतिहि आय मिले नदलाला । देख हमारी विपत बिहाला ।।
एक कहे कीनी हरि कावे । मारो कंस भयो सब रावे ।।
कोहे कों वृन्दावन आवे । राज छोड़ कत गाँय चरावे ।।
त्यागहु सबै अवध की आसा । चिन्ता वैहे भये निरासा ।।
गोपी एक कहे अकुलाई । कृष्ण आस नहिं त्यागी जाई ।।
बन गिर कुंज जमुन तट माहीं । हरि बलदेव केल कृत जाहीं ।।
सुध आवत उन ठाँमन देखी । राखत प्रान अवध जिय लेखी ।।
दुस्तज बात जात सब नाहीं । यह सुन अपर कहे त्रिय ताहीं ।। -49-

दोहा - दुख जहाज यह व्रज भयो , चढ़े सबै नर नारी ।
बूड़त विरह पयोधि ते कृष्ण करैंगे पार ।। -50-

सवैया - साधन ज्ञान कथा उपदेश सबो व्रत गोपिन माय उसीठी ।
उद्धव एक वे बुन्द अनेकन बारिध बुन्द नौ बातन दीठी ।।
साँची कही तुम योकहि आवत युक्त कहे न अनेकन नीठी ।
जान त्रियागन भक्त अनिन्न रमी हरि की जग जाल उबीठी ।। -51-

दुमला - उर उद्धव प्रेम सराहि सबै नव नागर मे न्जिब देह गई ।
रच भोजन चार प्रकार कराय कियो सुन पूजन भेंट दई ।।
कर जोर कही कहियो हरि सो प्रथमे छिन ही छिन प्रीत ठई।
जग गोपिय नाथ कहावत हो सुखियौ यह नामहि लाज भई ।।
कुबजा अरि दासिय जारिय नारि कहे तिहि के लिख जोग दियो ।
नहि जानहि रीति उपासन की किहि भाँति सदेशिन जात कियो ।।
अबला अपवित्र अज्ञान सबै हम मंत्र गुरू मुख हो न लियो ।
यह जोग सजोग करे जबही हरि आय कहे भर ज्ञान हियो ।। -53-

-50-

दोहा - पचास अध्याय हरि, कुब्जहि सुख सरसाय ।
बहुर दय अक्रूर को, हस्तनापुरहि पठाय ।।
कहि ब्रजराज महीप हरि, करे धर्म प्रतिपाल ।
दासन पर संतत रहत , दैत्यन के कुल काल ।। -2-

चौपाई- इक दिन कुब्जा सुख उर धारी । पावन वचन भक्त भय हारी ।।
ऊधौ को कर संगहि लीनो । कुब्जा भवन गमन हरि कीनो ।।
आवत सुन मन अति सुख छाये । पाटाम्बर पांवड़े बिछाये ।।
आय लीन अति आदर आगे । पूरब पुन्य पुंज जग जागे ।।
ऊधौ को आंगन बैठारे । कृष्ण भौन भीतर पग धारे ।।
देखी परम रम्य चित्रसारी । सुमन सुगन्ध सेज सुखकारी ।।
बैठे श्याम काम छवि हारी । कुब्जा कर मंजन श्रृंगारी ।।
बीरी खाय सुगन्ध लगाई । हाव भाव कर हरि ढिग आई ।। -6-

दोहा - जिमि रति मन्मथ मिलन मन, प्रथमै जात लजात ।
तिम गमनी उत्साहि उर, घूंघट पट मुखपात ।।
कर गहि हरि परजंक पै, प्रीति सहित बैठार ।
पूर मनोरथ भांत बहु , केल कला बिस्तार ।। -8-

चौ - पुन उठ हरि ऊधौ ढिग आये । भई लाज हंस नैन नवाये ।।
पूरब वर कर पूरन दीनो । पुन निज भवन गमन हरि कीनो ।।
इक दिन हरि बलभद्र हि कहही । हम अक्रूर गृह देखन चहहीं ।।
देख धाम पुन आय लिवाई । नाम नगर दीने पठवाई ।।
समाचार लीये मगवाई । जिम फुफू सुत पांचहु भाई ।।
दोऊ बन्धु जात तहं भयऊ । देख अक्रूर परम सुख लयऊ ।।
कर प्रनाम पदरज सिर राखी । पुन कर जोर विनय बहु भाखी ।।
दास जान प्रभु दर्शन दीनो । परम पुनीत गेह मम कीनो ।। -12-

दोहा - कहि हरि वह काका हमहि वाद बड़ाई देहु ।
जान पुत्र निज आपने राखहु संतत नेहु ।। -13-

चौ - इहि विधि बोध बहुर हरि कहेऊ । तुमरी कृपा अक्रूर सब भयेऊ ।।
अब उर चिन्ता एक हमारे । मिटहि अनुग्रह पुन्य तुमारे ।।
पण्डु महीपत स्वर्ग सिधारे । पण्डु अनाथ पंच सुत बारे ।।
दुर्योधन भी बन्धु कुठारा । करत उपद्रव विविध प्रकारा ।।
कुन्ती सुवन दुःख बहु पाये । तुम तब ताहि कौन समझाये ।।
कहि अक्रूर सुनहु जगस्वामी । तुम उदार उर अन्तर्यामी ।।

कृपा कूट कर हेरो वाही । अब शिव कर न सकै कछु ताही ।।
आयहु होय जाय समझाऊ । दुष्ट दुष्टता तजत न काऊ ।। -17-

दोहा - कहि सुमनै समझाइयो कुर कुठार विष जेहि ।
आवह आतुर गेह पुन , कुन्तिय धीरज देहि ।। -18-

इति श्रीमत भागवत , दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , पचास अध्याय ।। -50-

===================

- 51 -

दोहा - गज पुर जाहि अक्रूर जी, यह इक्यावन अध्याय ।
लै सुध अन्धल पांडवन , बहुर मधुपुरी आय ।।
कहि सुनीत महिपाल यह, कर निश्चय मनमाहिं ।
लोभी मन धन बसत ज्यों त्यों हरि भक्तन पाँहि ।। -2-

चौपाई - हरि रथ बैठ अक्रूर सिधाये । पांचये चौस नागपुर आये ।।
रथ तब तुरत तहाँ चल गयऊ । जहाँ सभा दुर्योधन रहेऊ ।।
करन जुहार परस्पर लागे । लीने सभा सकल उठ आगे ।।
दुर्योधन अति आदर कीनो । कुशल पूछ कर आसन दीनो ।।
पुन कहि कहो क्षेम मथुरा की । जहाँ एक उत्पात न बांकी ।।
नीके राम कृष्ण कुल केतु । सुरसेन वसुदेव समेतु ।।
मातुल वध नानहिं कुल राजु । लीन आप सब राज समाजु ।।
पुन कछु उग्रसेन कुशलाई । पायो सब सुख की मरयाई ।।

दोहा - लाज गई अरु सुख गयो गयो पौर ते राज ।
कछु दिन मैतन चाहतो अपना अपनि सिराज ।।

चौ - बहु कटु वचन सुयोधन भाखे । सुनहि अक्रूर बैठ सहिमाखे ।।
तब कीनो विचार मन माहीं । दुष्ट समीप रहै भल नाहीं ।
यह सब कहि हरि निंदित बानी । बोयहु होय धर्म हित हानी ।।
हरि श्र गुरु सुनहि निंदवहि कोई । तहाँ रहै गो वध अघ होई ।।
यह विचार द्रुत दुष्ट बिहाये । लै संग विदुर पाण्डु ग्रह आये ।।
कुन्ती भीतर भौन निहारी । दुखित दीन मीन बिन बारी ।।
करत देख करुणा अधिकाई । लगे बैठ समझावन ताई ।।
सदाँ अमर यह जग नहिं कोई । मिलन वियोग कर्म वश होई ।।

प्रद्युम्नी सब योध पठाय दए । सुन बन्धु नरिन्द्र समीप गए ।।

तब हाल सुनाय बखान कियाअ बहुरी यह भांत प्रबोध दियो ।। -22-

<u>सोरठा</u> - सुनहु सत्य नर नाह , यह दल यह बल देखिये ।

त्यों ये सर्व बिलाहिं , ज्यों बबुद पानी मिले ।।

या मैं संशय नाहिं , होनहार सो के रहे ।

हौं संगर के माहिं , तनो सबहि आशिष करो ।। -24-

<u>दीपक</u> - सुन बैन मन भूप । जय पुत्र बल रूप ।।

त्रैलोक्य अवनीप । वसुदेव कुल दीप ।।

भव भक्त प्रतपाल । सुन बन्धु बलसाल ।

पित भक्त बहु बाल । हुत दैत्य दल माल ।। -26-

<u>त्रिभंगी</u> - सुन सुन यदुनन्दन सुर जन बन्दन अरि कंदन पुर तब धाये ।

दिव्यास्त्रन पूरे सुघ रथ भरे अम्बर ते भूतल आये ।।

तिन पर बलरामा सुत प्रदयामा सुग बलधामा सर्व चढ़े ।

उनके तन आनन है धुवानन अरि दल भानन कोप मढ़े ।। -27-

<u>दोहा</u> - जरासिन्धु ठाढ़ो जहाँ, पहुँचे व्यूह मजाय ।

देख दुष्ट अति दर्प कर , बोलो बैन रिसाय ।।

आये मो ढिग ढीट ह्वै, रथ चढ़ दोनों भाय ।

काल बली ल्यायो पकर , अब को लेहि बचाय ।।

देख गर्व अति सर्व डर, बोले यादव राय ।

शूर समर बिक्रम करत , कायर बर्बर गाय ।। -30-

<u>पद्धतिया</u> - सुन भाख बैन चितसै ठठाय । रथ हांक रोष उर पर्म लाय ।।

सुन बैन नैन पतलाल देख । दल पन्त बोल नृप रोष बैन ।।

दीनी निदेश भट माल धाय । रथ छीन लेहु बध दोउ भाय ।।

सुन बैन पाल शूरन प्रचार । धर अस्त्र शस्त्र धाये सुरार ।।

नृप आय दरी धरि सोय गयो । कृत ते जुग द्वापर जात भयो ।।
नन कृष्णहि कर्ण मलेच्छ हयो । जब लच्छ महीपत भस्म भयो ।। -20-

छप्पय -

मोर मुकुट बनमाल श्रवण मकराकृत कुण्डल। घूघर वारी अलक मान मर्दन अलि मण्डिल ।।
हसन मंद मुख चंद कंज लोचन मन मोहत । मेघ श्याम तन वर्ण पीतपट दामिनि सोहत ।।
दरकंथ चक्र कौमोद की धार चतुरभुज वेश वर। दिश दरस भूप मचकुन्द कहं राम रूप इम
प्रगट हरि ।। -21-

कुण्डली - देख हराह उठ धर्यो नृप कीनौं दण्ड प्रणाम ।
पान जोर कहि कौन प्रभु तेज पुंज छविधाम ।।
तेज पुंज छवि धाम किश्नु किय शंकिर जानौ ।
कीनौ गुहा प्रकाश मोर उर भ्रम तम भानौ ।।
कीनौ दास सनाथ धरौ यह को मम पेखे ।
आज सुफल मम जन्म रूप पद पंकज देखे ।।

भाखैं सुन नृप के वचन रचन सहित घनश्याम
हौंहि वसुदेव कुमार मम वासुदेव मम नाम ।।
वासुदेव मम नाम धर्म रछन तन धारी ।
भूतल भार उतार दास दीनन प्रतपारी ।
भूतल त्रिगुन बिहार वेद पौरानन गावैं ।
काल यवन यह जरौ कुमति फल गायव भावै ।। -23-

मोदक - नाम सुनी नरनाह परो पग । पीवत रूप सुधा द्रिग के मग ।।
अद्भुत विक्रम राघव मायहि । बांधि लयो यह जीवनी कायह ।
दीन लखे तुमको किहि भांतहि । जीव मलीन दहो दिन रातहि ।।
कल्प अनेक भ्रमे भव सागर । छोड बिना तुम्हरे जग नागर ।।
कनहि तुम तरंगिन है जल । दारु मता मई मोहित मंगल ।।
दैवत लाय न त्यागत है पल । पावहि जीव समाध नहीं कल ।।
जन्म लहे बहरो बिन सावत । वाभव सिन्धु महा दुख पावत ।।
श्वान प्रलोभत हाड़ हि चाटत । आपुन श्रोन पिये मुख काटत ।।
अन्ध अचेत अक्रन्त परो भव । राखहु शरण कृपा करके अब ।।
बैन सुनी नृप को कहि केशव । सु दुख देखहि मुक्त लहे ध्रुव ।।
या तन जीव बधे बहुधा तुम । जाय करौ तप बद्रिक आश्रम ।।
यौ सुनके हरि चरन नयो नृप । पार भयो भवसागर के तप ।। -29-

गोपाल - काल यवन को मार मुरार । कै मचकुन्दहि भव निधि पार ।।
आये मथुरै देवन देव । रामहि वरणे कही सब भेव ।।

कीन बहुर जुगसिन्धु विचार । स्पन्दन बैठे आयध धार ।।
जायब्रुन दल सब निपात । पुन आये मथुरे जुग भ्रात ।। -31-

दोहा - मथुरा की सब सम्पदा, लीनी कृष्ण मगाय ।
प्रथयाकट हाथीन भर, द्वारा बतिय पठाय ।।
तायो बार अठारहीं, जरासिन्धु भट राय ।
तीन बीस क्षौहन चमू , लै मथुरा पुर आय ।। -33-

नराच - निहार धाम ग्राम राम श्याम मैत्र मडके । कडे अराल अग्र आय अस्त्र शस्त्र छडके ।।
निहार सैन सैन सुर सूर भूप सो भने। त्रिलोक नाथ राम कृष्ण भाग त्याग के रने ।।
लहे समर्थ शत्रु को प्रताप अग्नि आपकी। उधार वीर कौन जगत अस्त्र शस्त्र तापकी
सुनै समर्थ सर्व सर्व सैन सैन साजके । परी प्रमत्त पंथ प्रिस्ट मेघसी गराज के ।। -35-

छपद -

धायी सेनहि साज गाज गर्जित बल देयत । करत पंथ कृत घोर शोर कंका मद मैयत ।।
अग्र कृष्ण बलभद्र प्रिस्ट दुस्टन दल धावत । रोषत पोषत गर्व सै लग्यो सम निपटावत ।।
अति हीउतंग तिहि श्रृंग गन यो घन छूट प्रवेश हर । दल घेर मेरुकुधिर धर सावधान
योधान सुर ।। -36-

चामर - काट काट कौंत बीत उन्दाभदार है ।
सेल तूल धीउ भेद बुंद का दरार है ।
श्रृंग लौ सवार सैन आन वार दीजही ।
रामकृष्ण बंधु गौन द्वारकाहि को सही ।। -37-

दंडक -

जाके बल विरचत विरंच है प्रपंच पंच जाके बल विष्णु विश्व पालन करते हैं ।
जाके बल शिम्भु सर्वसृष्टि को संहारत है जाके बल शेष भूम भारहि धरत है ।।
जाके बल सुरब शाशि अग्निउद्योत जोत जाके बल लोक पाल लोकन भरत है ।
ताके जरासिन्धु मन्द मारन उपाय ताके अब अनिरुद्ध मारी कौन को मरत है ।। -38-

सिंहावलोकन - जुग बंधु चरे मनस्यौं गिरको । मथुरेश समोद फिरो घरको ।
मथुरा पुर सट भट दवब प्रकटी । सब सर्वस पुर धन नरनि घटी ।।
नित धर्मनिन है वा प्रेत जही । प्रत देत दये जय पत्र सही ।।
दिन रात अनदहद दुन्दुभि बजै । हुर निर्भय घन सम गरव गजै ।। -40-

इती श्रीमत भागवत , दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , त्रेपनमे अध्याय ।। -53-

==========

- 54 -

दोहा -

यह पउअन अध्याय मैं, हू है हलधर ब्याहि ।
राम रूप आनंद अमित, को कवि बरनै तिराहि ॥ -1-

विजय -

श्री शुकदेव परीक्षत सौं यदुनन्दन के चरितामृत गाये ॥
जिंन शारीरक के द॒ख दोष निवार सबै सुख सिन्धु नहाये ॥
है मधुकुन्द मनोच्छहि मोक्ष मनीष महीपहि मोद बढ़ाये ।
सै मथुराहि विभूत अभूत कुतावत मग्र बनाय बताये ॥ -2-

हरलीला -

भाये समोद सुन यादव नाथ प्रेम । कीनौ जवाल्सुर आनंद धार देह ॥
बाजे बधाव नित पातर धाम धाम । साजे विभूत नर नारि सबै सकाम ॥
बैठे नरिंद रिच बन्ध सभा सुधर्म । राजै सुरेन्द्र सुत देव प्रभाव धर्म ॥
गावै मुनीस गुन वेद पुरान नाद । सो है समाज भट मैत्रिय मित्र साद ॥-4-

मोदक -

राजत राम सभा इक औसर । अंधक विष्णिय भोज पुरी नर ॥
देव सबै बल विक्रम लायक । भाव सभा सुनिये नर नायक ॥
राम विवाहन योग भये गुन । बोल लयौ द्विज भूपति नै सुन ॥
आयुत दोन दिवे अवनी पत । ब्याहहु रामहि सोध सुकी सत ॥
यौ सुनकै द्विजराज सुप्रत्तन । दुइ फिरौ पहुमी प्रत पत्तन ॥
आय गयौ द्विज देश अनिर्तहि । रैवतनाम नरेश प्रवर्तहि ॥
ताहु सुता शुचि रेवति नामहि । चन्द्रमुखी गुन गौरव धामहिं ॥
देख सुता भन भूपतिसौ सुन । वर्नी सम्राह लाउथ है सुन ॥
गाय सबै सुनकै नर भूवन । ब्रह्म गिरा उर आन अकुवन ॥
आयुन विप्र बुलाय नरिन्दहि । सोभित लग्न लिखाय सनंदह ॥
द्वारवतीह पठाय दई वर । भूपत भातन भूर दिने कर ॥
लै द्विज लग्न कुतावत आइन । भूपति लीन बड़े उत्साहन ॥ -10-

उपेन्द्रवज्रा -

नवेद दै भूर भुआल बोले । गुनी किये आय बनाय ढोलै ॥
कुतूहली कोट कुटुम्ब धाये । मितंग घोरे रथ झुण्ड साजे ॥
बना शृंगारी कुल वेद रीतै । कुलांगना मंगल गाय गीतै ॥
अमोल आभर्न द॒कूल धारी । अनूप मौरे सिरपै सवारे ॥ -12-

चौपैया -

कर वेद विधाने मंगल गाने दूलह सुख सिंगारी ।
सब सकल बराती सुख अवदाती उग्रसेन दल भारी ॥
रेवत पुर आये सुन सुन धाये सैन लेन अगवानी ।
धर भैंटहि आगे मिल अनुरागे वर बरात सनमानी ॥
जनवासहि आये सब सुख पाये पुन परजन पग धारी ।
द॒न्द॒भि धुन साजी आतिशबाजी हय गज रथ रथ भारी ॥

वर दुलन निहारी सुमत सुखारी पट छत्रहि पहिरायो ।
सुर सुकृत मनाये लोग सिहायें वर जनवासहि आयो ।। -14-

मोदक - भोजन कीन सबै वर व्यंजन । भामर पार दये मब स्यंदन ।।
कीन विदा विध सों नर नायक । भावत है मन को सुन गायक ।।

दोहा - आये ब्याहि निकेत नृप, आनंद सहित बरात ।
चरित अमित रेवति रमन, सब कहँ किहि भांत ।। -16-

यों श्रीमद भागवत, दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत, चउअनमें अध्याय ।। -54-

========

-55-

दोहा - यह पचपन अध्याय मैं, रुक्मिन मंगल गान ।
रमा रूप माधव प्रिया, आदि शक्ति महरान ।।
कहि शुक मुनि महिपाल सुन, पावन गोविन्द गाथ ।
रूप गाय सुन जीव जग, लहत चार फल हाथ ।। -2-

चौ.- हलधर ब्याह कछुक सुन कहेऊ । सुन पारीछत अति सुख लहेऊ ।।
अब बरणहु श्रीकृष्ण विवाहू । सादर सुनहु सुमति नरनाहू ।।
देश विदर्भ नाम अति पावन । कुण्डिनपुर तह नगर सुहावन ।
भीष्मक भूपति की रजधानी । विष्णु भक्त सज्जन अति ज्ञानी ।।
जन्मी रमा तासु गृह आई । शोध कनै तिथि लग्न सुहाई ।।
सुन नरेश दैवग्य बुलाये । लग्न साध तिन लक्षण गाये ।।
रुक्मिणी नाम भक्त हितकारी । हु है सुता हरिह पिआरी ।।
लक्ष्मी के लक्षण सकानी । शोभा सील शील शुभ मानी ।। -6-

दोहा - सुनमोद महिपाल मन, दीने दान अपार ।
बाढ़ी पुर आनन्द सबहि, सुख प्रकट दिशा चार ।। -7-

चौ. दिन दिन प्रति शोभा अधिकाई । रूप अनूप बर्नी नहिं जाई ।
मुख छबि मान मयंक विलोचन । नव प्रभात कंजारुन लोचन ।।
भौंह मनोज चाप मद हारी । चंपक कुन्द माल पर वारी ।।
उपमा प्राकृति नार न सोहा । देखत सुर मुन कीन मन मोहा ।।
दिन प्रत बढ़हि कुंवरि वर कैसे । शुक्ल पक्ष को हिमकर जैसे ।।
सखिन संग प्रमुदित मन रहई । नित नूतन नव लीला गहई ।।
सुर दुहिता अनेक संग माहीं । खेलहि खेल रुचिर रच ताहीं ।।
द्रुगम बीच सुन देरहि आई । तब दुखिन यह बात सुनाई ।। -11-

दोहा -
सुज सुख चन्द्रकधार ते, होत प्रकाश निकेत ।
तिहिते हम नहि दूर सके , अली देख नहि लेत ॥ -12-
तासु वचन सुन सकुच अति , हवै प्रसन्न मन माहि ।
खेलन लागी बहुर रच, अपर खेल तिनपाहिं ॥ -13-

पदमावती -
किन्नर सुकुमारी नगी निवारी पन्नग दुहिता वारी है ।
जय कीरत लीनी छबि द्युति भीनी शुभ शोभा शृंगारी है ॥
जिहि सुरी सुजानै नरी बखानै तीन भवन उजयारी सु पै ।
चन्द्रक मुख साधी दामिन वाधी भीष्मक भूप कुमारी पै ॥ -14-

मुक्तहरा -
विहारत बाल विनोद समोद भये गति धौल कछु यह रीत ।
गये तबलौ मुनि नारद आय दई नृप आसन पूज सुप्रीत ॥
बुलाय सुता मुनि चरणन मेल कही यह के गुण दूषन देव ।
लिखे अब अंकन भाल बिशाल सबै तुम जानत हौ भव भेव ॥ -15-

किरीटी -
लख सुलच्छिन अंक अलौकिक हर्ष महर्षि महीपहि गावत ।
याहि वरै बल विक्रम सिन्धु अजेय गुनी गत सर्व सरावत।देख
देय असीस बखान सुता गुन गौन कियौ मुन मौन महाव्रत ।
मोद भये पुर पुन्नहि आय गये जिहि मन्दिर कृष्ण विराजत ॥ -16-

माधवी -
लख बन्धु समेत मुकुन्द मुनिन्दहि वन्दन आसन पूज सुधारे ।
कहि आशिष सौ कुशलात लही मोलतनन्द सुवैन उचारे ॥
पुर कुण्डिल भूपति भीष्मक ग्रेह अहै दुहिता जय अंक सवारे ।
रति रूप सुहाग दयौ विमला कमला सम भाग गिरा गुन धारे ॥ -17-

अरसात -
है सब भाँति अनूपम रूप लहै उपमा अस कौ नर नारिका ।
भाल लिखे विधि अंक निरखि सुभै परहे यह राजकुमारिका ॥
मोहि रहौ मन माधवकौ सुन गौन कियौ मुन ब्रह्म उचारिका ।
चित्त गयौ चल भीष्म सुता ढिग कृष्ण विना मनदीपत द्वारका ॥ -18-

दोहा -
ऐसे हरि मन हरगयौ, भूप सुता जस सङ्ग ।
जैसे दृग्नि विदर्भ की, हरि हर सुमत प्रसङ्ग ॥ -19-

सोरठा -
दिग विदिशान अब माहि , पैवरीक चारन सुमत ।
कुण्डिनपुर पिथयाहि , एक समय आवत भए ॥ -20-

हरी -
कुण्डिनपुर मण्डल प्रत मण्डन अब माहि है ।
माधव गुन माधुर सुन भंग्य मन गाय है ।

जो आज मोहि हरि हैहैं न दर्श आय । तौ प्रान प्रान पति पास प्रभात जाय ।।
है भक्ति वश्य हरि अनार आन राय । तौ आज दुठ सब होत हमैं सगाय ।।
देखौ बिहान बैदर्भि बोल नार । आये हरि कहन चाहत कोऊ पुकार ।।
तोलौ रिषी तबह आय दई असीस । बांधौ कलेस वर भूप कुमार शोश ।।
जैसे शिखी न घन घोर सुनी सुहाय । जैसे पपीह जल स्वाति पिये अघाय ।।
जैसे चकोर लख चंद अनंद पाय । त्यौं भई प्रमोद सुन कृष्ण विदर्भि जाय ।। -1

<u>दोहा</u> - विप्रहि भाख विदर्भि जा मैं विचार मन मांहि ।
यह देहा लायक जगत, देवे को कछु नांहि ।। -1

<u>पद्धरिया</u> - हर चाय आय हरि सोध दीन । सुख सागर बूड़त काढ़ लीन ।।
अपनी समेत मम काज कीन । हो धनी सर्वथा द्विज प्रवीन ।।
सुन बैन दीन आशिष महर्षि । पुन गवन महीपत पास हर्ष ।।
हरि आगम सादर सोध गान । सुन भीष्म भूप आनंद मान ।। -1

<u>तारक</u> - नृप आतुर आत भयो प्रभु पाहीं । पद बन्द प्रनाम किये बहु बाहीं ।
विधि पूजन कै कर जोर बखानी । कछु हूटन तौं नहिं मोर बलानी ।।
तुम जानत हो सब अन्तर्यामी । भल दर्शन दीन जगाधिप गामी ।।
अब मोर मनोरथ पूरन कीजे । जनको जग जीवन को सुख दीजे ।।
नृप छोड़दे हरिको घर आयो । मनको सब संभ्रम दूर भगायो ।।
पुर के नर नारि सबै जुर आये । जुग बन्धुन वंदन कै सुख पाये ।।
पुन रूप अनूप बिलोकन लागे । जनु चंद चकोर किधौ अनुरागे ।
नर नारि परस्पर भाषहि बानी । पति भूप सुतौ यह देहु भवानी ।।
पुर वैधि जो अभिलाष हमारी । घन स्यामल है पति राजकुमारी ।।।
रथ बैठ चले पुर देखन दोऊ । अवलोकत लोचन लोभित सोऊ ।। -23

<u>तरल नयन</u>- सदन सदन नगर रयन । भरहि जुगल छवन द्रिगन ।।
मधु समटन किचउ धरन । कोउ जगत विजय करन ।।
निरख हरख बरस सुमन । कहहि विधिहि विनय वचन ।।
नृपत कुंवर लहहि वरहि । दुगन जगत सफल करहि ।। -25

<u>सुर छन्द</u> - दे बन्धु देखे नैन मे चित्र चैनमैन । है स्याम शोभा धाम वारे कुकोटन काम ।।
यौ भाख बौ कुल नारी सबैयौ भूल । शोभा सराहै लाग मे जाय पूरे भाग।। -2

<u>बसन्त तिलका</u> -

वंदे विशंख सुख सुख्म नैन राजे । भौहैं मनोज धनु मान कृपान भाजे ।।
माथे किरीट वर भूषण वस्त्र धारे । शोभा अनूप प्रत अंग अनंग वारे ।।
सोहै समान तन दामिन राम जानौ । नीलाम्बरीह सुत रोहिन केद मानौ ।।
जो मेघ स्याम वपु पीत दुकूल काछै । सो देवकीय सुत कृष्ण निहार आछै ।।

मारे अनेक इनराकिस नाग नायौ । धारौ नगेन्द्र कर इन्द्र गुमान मायौ ।।
नारीन वृन्द मन चन्द मनोज हूवौ । देखौ अनन्द भर नैन तबन्धु पूजौ ।। -30-

कलहंस - पुर देख रोष हरि डेरन आए । तब भूप तोष हरि आगम पाए ।।
पुन रुक्म रोष पितको दिग आये । कहि कोन कृष्ण कलह्न बुलायौ ।।
दुहिता विवाह तब क्षेम बिचारे । पुन बन्धु देख उत्पातहि धारै ।।
अपताय भूप तिहि वादहि ठानौ । जिहि भौन गौन शिशुपाल दिवानौ ।।

चौपैया- तब गिर प्रबवन्दै महिपन वृन्दै तत्त्वादिक शिशुपाले ।
हुरपति वनुतोहे देखन मोहे भुज भूषन मद पाले ।।
रुक्महि उठ आसन दीनौ कीनौ तब सतकारे ।।
हरि आगम गाँनी वृन्त रिसानौ मगधराज मन हारै ।। -33-

भ्रमरावली -

बहुधा शिशुपाल प्रताल भरी भटकौ । हरिको अपवादहि पाट लभालटमैं ।।
मन अग्र कहा तब दम्भ अरम्भ करै । धर कालयनी कर त्याहउ वाहिमरै ।।
बल तत्व पुषा बध भल्लन तुल्ल कहै । वह दैभि विहँसित गोकर दँड लहै ।
अदरौ महिपालहु मारहि नाल धनै । तबको हुनके तब यौ मगधेश भनै ।। -35-

माधवी - पुन बन्धु महाबल विक्रम सिन्धु प्रपंचक घोर छली पुन भारे ।
जिनकी भ्रम कैस बधे भट गैल धरी गिर मेघन के भट मारे ।।
गहि व्यालहि काड दयौ जलतै मम व्यूहन तमहवार विदारे ।
दस अष्टम बार दस गिर म्लप हुओ छलके गति छ्रेह हुवारे । -36-

दोहा - भेद न जानौ जाय कछु , आए है किहिं घात ।
अति उत्पाती बन्धु पुन राखौ तबन बरात ।।
जुरासिन्धु हिय हार तब रुक्म भाव छम बैन ।
कहा करै आभीर छल , हौ मारौ तह सैन ।। -38-

बरवै - श्रीशुकदेव मुदेवै हमगाय सुनाय । रुक्म गयौ निज गेहै तबको सुभाय ।
जुरासिन्धु शिशुपाले निज परी न नींद ।बध ह उरहि न भावै मनमोहन नींद ।।
प्रात विदर्भी लीनौ वह विप्र बुलाय । समाचार कहि तासा प्रभु पास पठाय ।।
आज रात भयि की सुनियो महाराज । लाज राखियो मेरी गजराज निवाज ।।
पुर पूरबदिशा देखौ दिन रहि इक जाम ।हौ हित पूजन ऐहौं लीजो तिहि ठाम ।
तब शिशुपाल बराती पुर मँगल चार । धूम मचौ दिश दोऊ तब ब्याहु अचार ।। 4

चन्द्रकाला- महिदेवनको पुरको हुरको पुर वाम करे बिध जो बुलही ।
मुद गावहि तेल चढ़ाय न्हवाय सुगंध पिलेपन कै दुलही ।।

गीत -

एक दिना अथि देव गये रति धाम जहाँ । देखत बाल त्रिलोक अनूपम रूप तहाँ ।।
है अवतार मनोज क्ष मुरार कुमार गनो । हर्ष समेत महर्षि रती इम बैन भनो ।।
जानत धौ कि अजान यहै पति तोर अहै । जानि सदंग महेश रमेश प्रकासयहै ।
या विधि बैन सुनै सुन के रति मोद भरी । पाय प्रसंग विशारद नारद चर्न परी ।।
एक दिना प्रदमंन्न धरो पदलै रति कों । मा कहिके कुमार ब्याट लगौ मत कों ।।
यों सुनके रति ओर दुहू कर बैन भने । पुरब जन्म प्रसंगहि आन्हु नाथ भने ।। -31-

चित्र छन्द - रुद्र दोष रुद्र रोष त्रिचकाग्नि कीन नाथ गात पात ।
पाय तोरही गई जटी तटी रटी क्ला कलाप भांत ।।
आगु तोय विश्वनाथ देव मोह दीन दीन वाक्य दान । अक्म
आपके महर्षि देव अन्य तन्य धर्न सर्व पूर्व ज्ञान ।। -32-

दोहा - सुन प्रद्युम्न रति बैन इम , मान हृदय विश्वास ।
जान नारि निज नेह युत, विहरत विविध विलास ।। -33-

गेह छन्द -

कला प्रसंग अंग के अनंग के अनेक भाय । विधान अस्त्र शस्त्र शास्त्र वेद भेद को पढ़ाय ।
समोद एक चौस ही ब्खान धाम काम पात । कुलावती वियोग लोग आपके अहेउदास ।।
विहिन वत्स वत्सला हुकार हीनिबेलरात । तुमै बिना विदर्भि जा भई मलीन दीन बात
निवेद बार 2 यो मुरार सम्बरै निपात। त्रिलोक लोक जाय नाथ पाय पुत्त तात मात।।

गीता - यह भांत सुनन भाय रति प्रद्युम्न सों सुद्. बैन ।
कछु चौस जात भये गये भट सम्बरासुर ऐन ।।
कहि भूप भांत सराहि कै ढिग बैठ रूप निधान ।
सब काल आनंद सों रहौ मम धाम पुत्र समान ।
सुन काम सुन काम भाय न पुत्र हों मन शत्रु दुर्मय मोहि ।
कहि भूप हों पयपान कै अरि कीन आयुन सौंहि ।।
सम ब्याल के यह बाल भों प्रतपाल कौ-हिकाय ।।
प्रद्युम्न दुसर भों कियौ येहि शीघ्र यमपुर जाय ।
शठमै वही प्रद्युम्न हों जिहि दीन सागर डार ।
वहि बैर लेहु मुरार पु तन अस्त्र शस्त्र सम्हार ।
सुन भाख सम्बर क्रोध कै कर लैय कै हर मुष्ठ ।
कह जायगौ खल भाग कै धन दाय पन्नग पुष्ठ ।।
यह भांत बाद बढ़ाय दुवै बहु मुष्ठ ते बहु दूर ।
नहि अस्त्र अंगन भान कुष्ठ सु अंग नासमूर ।।
अति दर्प युत कंदर्प सम्बर बाहुरन उत्साहि ।
सुन मज्ज मेघ समान भट हट सीन सुभै उठाय ।। -39-

मोतीदाम - भरे अत क्रुद्ध दुहौ बलवन्त । करे रन अद्भुत भांत अनन्त ।।
कहुं तर लैत त्रिशूल पवार । कदा बहु खड्ग कुठार प्रहार ।।

धरे कर सम्बर आयुध जौन । निपातहि सत्वर प्रद्युम्न तौन ।।
मयासुर मायहि दीन कठोर । तबौ घन तै सर पावक घोर ।।
बलाहक बानहि मार प्रहार । गिरैं जल पावक पुंज पिटार ।।
तहीं बल त्याग प्रभंजन पत्र । तजौ द्रुत मन्मथ भूधर अत्र ।।
हये सर शैलप गुच्छक पेंड । मनो भव लै निज बान चिहण्ड ।।
तवै कर क्रोध महा भट राय । जुरे जुग मल्ल प्रयुद्धहि पाय ।।
गये उड़ व्योम करैं प्रतघात । परैं जनु पर्वत पै पवपात ।।
तबै भट प्रद्युम्न लै असि चंड । करो अरि कौं सिर खाण्डव खंड ।। -44-

<u>तारक</u> - बध सैंबर सैन बिलोक न दूजो । रति प्रद्युम्न के भुज दंड न पूजो ।।
सुर भांत प्रशंसा गये सुर धामै । जब स्पंदन ब्रह्म दयो रति कामै ।।
तिहि मध्य अरूढ़ भये जुग आई । पुर द्वारवती गवने हरषाई ।।
नभ रूप अनूप शोभि प्रकासी । जुत दामिन राजत दामि बिलासी ।। -46-

<u>हीरक</u> - सम्बर अरि अम्बर पर अम्बुद सर राज ही ।
भामिन नव गामिन दुति दामिन सम भ्राज ही ।
नाक पथहि हांक रथहि द्वारवतिहि है गये ।
मात निकट जाय मुकुट आय प्रकट के भये ।।
अम्ब हरष अम्ब बरष दुग्ध पयद पूर है ।
अंक धरत शंक करत भंग बिरत भूर है ।।
नारद मुन बारिध गुन शारद मन [illegible] म को ।
प्रद्युम्न रति रुक्मिनि पद पदम न धर भाल को ।।
पुत्र निरख चित्त बरष चित्त हरष धारियो ।4
दुम सिर शिराय उरहि भुमर बिरह टारियो ।।
पाय मतहि ख्यातहि ब्रातहि गाय रतहि स्यौं लए ।
देवहि बन्देवहि बलदेवहि आनन्द भए ।। -49-

<u>दोहा</u> - श्री प्रदमन निज प्रियहि लै, सम्बर समर सँघार ।
आए पुर द्वारावती , उत्सव भयौ अपार ।।
उद्धित जगत प्रसंग यह , स्व यथा मति गाय ।
चतुर व्यूह भगवान जस, कौ कब बरन सिराय ।। -51-

इते श्रीमद भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , अन्ठावन अध्याय ।। -58-

==========

-59-

<u>दोहा</u> - उनसठ अध्याय मैं सत्राजित सप कौन ।
सिंह प्रसेन प्रसंग जिम, जाम वान मन लीन ।। -1-

लाख निकेत बनाय बताय जराय तमात सबन्ध विचारो ।
यो सुनके हरि राम दुखी करुनानिधि है करुना दुख टारो ॥
दारुक स्यंदन बोल सबेन सुभा कर नाग पुरे पगुधारे ।
कौन विराम न मारग जाय सभा तब कौरव जाय निहारे ॥
मोद समेत लखे सुत बन्ध धतादिक भीष्म लखे मन मारे ।
बैठ गये जब भट्ट सुरार तहाँ कछु कोउ न बैन उचारे ॥ -3-

दोहा -

भूप युधिष्ठिर की कुशल, पूछी हरि तिन पाहिं ।
सुन सब सिर नीचो कियो, दियो उतर कछु नाहिं ॥
उठ आये हरि विदुर घर, पाये सब सतकार ॥
कुन्ती तिन्हु सुन बन्धु सह, वास कियो दिन चार ॥
गये जान हस्तिन पुरहि, कृष्ण चन्द्र बलराम ।
इत वर्मा अक्रूर सुन, गये सुधन्वा धाम ॥ -6-

मोदक - बैन भने सतधन्वहि सो तिन । क्यों रिपुंजय बैरन सु चिन ॥
दैन कही दुहिता प्रथमी सुहि । दीन नहीं हरिको परनी उही ॥
कौन महाँ अपकार किये सुन । निदित है पुर लोग सबै सुन ॥
क्षत्रिय बैर बली सुख सों नर । तो यहि जन्म वृथा जग में पर ॥
जात भने सद पुर्व जहाँ पति । लखह है किन आप करै सति ॥
या विध भाव दुखो सबने पर । क्रोध बढ़ो सतधन्वह के उर ॥
खड्.ग उठाय चलो तबही हट । सोमित आसु रिपु जब के तट ॥
हांक दई न सको उठ सो भट । खड्.ग हयो सिर भूम परी कट ॥
जात भयो सुखको मन ले टू.त । सोवहि मैं यह मन्द कियो कृत ॥
माधव सो अपरोध भयो सुख । होय भलो नहि मोर यहाँ अब ॥ -11-

दोहा -

कृतवर्मा अक्रूर ने, मोहि दयो बहिकाय ।
सायक है जो कपट को, तो नर कावे जाय ॥
होनहार अति ही प्रबल, तैसो मिलै सहाय ।
ज्ञान हरो सुख वचन के, होके परत दिखाय ॥ -13-

पंधरी - आयके निज नाव मायहि पात भूम निहार है ।
हाय हाय पुकार को पति धाम सोवत मार है ॥
आय लोग कुटुम्ब के सुर देख दुखद सबै कियो ।
सत्त भामहि भीन सुत्यन जाय सोय सबै दियो ॥
तातको सुन पात आतुर सत्यभामह आ गई ।
खुन्ड खन्ड विलोक के पित मात शोक समा गई ॥
बैठ बेन मनाय स्यंदन हस्तनापुर को चली ।
पौन की गति गौन वाज महीप मे विरमीं गली ॥ -15-

मनहंस - सतभाम हस्तन ग्राम आतुर आ गई । कर रोर दौर पुकार माधव को दई ॥
पित रैन सोवत बैन शातसनिपात है । मन ले गयो सतधन्वके उतपात है ॥
सुन रोर रोष सुरार रो मन भोगयो । कछु भाय प्रीत सुभाय राम रुलो गयो ॥

नेत 2 कहि नाय निगम निज ध्यावत । मनन शील मुनिराज ध्यान नहि आवत ।
प्रीति विरोधन काहि एक तर गावत । जो पति सो गति लीन देव नहिं पावत ।। 64

चौबोला - मम पति अधोधन आश्रित अति गति पाई जो सुन न लहै ।।
राखी नाथ विरद मरयादहि अधम उधारन वेद कहै ।।
सोरह सहस साथ कन्यका कन्थ सुमन रन जोत लहै ।
कीजे देव धर्म दासी निज बोल समस्त समर्थ दई ।।
सुचि सुन्दर समुह चन्द्रानन प्रभु पद पंकज राजिव नव ।
देव मधुर मद मदन हरन छवि रवन सवन मन मोद छव ।।
जोर पंक रुहि पान विनय कर न्योछावर तन दुख हरी ।
दीन दयाल दीन हमकों मन चरन दासिका देव करौ ।। 66

मरहटा - सुनके हरि भाखौ धीरज राखौ सबहि चलौ लै साथ ।
यदु नन्दन बानी सुन हरसानी निज पायें अब नाथ ।
भगदन्तादि देखौ हिय तकि लेखौ जानी हरि मन बात ।
गजपाल मगाए स्यन्दन आए शिविका नाना जात ।
भगदन्तादिकारी शुचि अनुसारी बोल कुमारी तीन ।
मज्जन करवाय पट पहिराय भूषण भूषित कीन ।।
आयसु हरि दीनी आनंद भीनी वाहन भई सवार ।
गन सिंधुर बाजे दुन्दुभि बाजे साजे सूर अपार ।।
सब साजु सुसेवा त्रिभुवन देवा भगदत्ती भगवान ।
सिंहासन दीनो भूपत कीनो तिलक कियौ निज पान ।।
दै सबैन राजे सहित समाजे विदा पाय यदुनाथ रानिन संग लीनी
दुन्दुभि भींनी लीन द्वारका पाथ ।। 59

चन्द्र कला - सँग राजत राजकुमारिन सुन्दर सो उपमा बरनी परई ।
घनश्याम लिये जुट दामिन दाम मनो महि मण्डल मैं फिरई ।।
यदुचन्द अनन्द करत चलि साथ साज दिखावन शोभ धनी धरई ।
अविलोकन लोकन कों सुख देत कवि न कछु उपमा हरई ।।
अति अद्भुत शोभ रही जग फैल हरी हरि दीपत दीप परी ।
पट पावर लाल प्रवाल मनी हिय रत्नन जोत उदोत करी ।।
छवि छावत है सुन औरन ते महि और अकाश प्रकाश भरी ।
न लही समता सकता सबपौ सबही सब वन्दन कीन हरी ।।
दिन एकहि मैं पहुँचे पुर आय गये ग्रह राज सुजान लिए ।
बहु भौन विभूत भरे प्रकटे शुभ सोहत दीरघ [illegible] किये ।।
तिन मध्य विराजहि राजकुमार करे दिव भोग अनन्द हिये ।
प्रभु को सुख पंकज्जोरिन ज्यौं निरखे हरखे छवि पुञ्ज पिये ।। 72

भीषम हू पत तजी जाय शंकर तप पैती ।
परसे भीषम को होय सो तो नहि ऐसी ।।

दासी प्रभु पद पद्म की सदा वचन मनकाय ।
और रूप गुन बल विभव भूप न मोहि सुहाय ।।
भूप न मोहि सुहाय नाथ प्रन तारत हारी ।
दासन संकट परत बेग हू त धाय उबारी ।।
दास दुरास विहाय अहे प्रभु पद के आसी ।
अब नहिं माया मोहि होय वर मांगत दासी ।। 23

झूलना - सनी नेह सुधा बानी सुने गोपाल तोषे है ।
विको मे हाय याही सी सबै सो कौ वोषे है ।
सदा संसार की पाले चलै पु हीय जाया है ।
न पाये आज ते तोको हमारो चण्ड माया है ।। 24

दोहा - सुन सनेह सानी गिरा, वैदर्भि हरषाय ।
सेवत प्रभु पद पंक रुह, सदा वचन मन काय ।। 25

सो श्रीमत भागवत , दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कुल , वेसठ मैं अध्याय ।।

0==========0

-64-

दोहा - या चौंसठ अध्याय मैं, श्री हरि चरित बखान ।
ब्याहु ग्रुह अनुरुद्ध की , रुक्म भूप गत प्रान ।।
हरि जस सुन महिपाल प्रत, बरनत पावन पोत ।
जाय पाय साधन रहित, पार भवार्नव होत ।।
सोरा सहस सुता नव, नागरि राजकुमार ।
अष्ट पट्ट रानीन युत , श्री हरि विशद विहार ।। 3

कवित्त-

प्रात ही जगावे दन्त धावन करावे अंग उबटन्हावे वेही वस्त्र पहिरावती ।
अंग कुंकुम लगावे रच भूषण बनावे रुच भोजन करावे कोउ बीरहि चबावती ।।
दर्पन दिखावे पुष्प माल पहिरावे नीर शीतल पियावे भूर विजन डुलावती ।
केती पग दाबती सुलावती बजावती है सबै हाय भावन कर प्रभुहि रिझावती ।। 4

पंकज -

दो सहस्र दादसाग्र एक पटट रानि गाय। जान बाम सेवती अनेक दास व्रिन्द आय ।।
या प्रकार चोप चारि रानिनीन भव्य देव। रीझवा रिझावती विहारती विहार भेव ।।
हेत मे कछुक चीत तुच्छ सिन्धु मे विलात। निरखते बड़े प्रियान पीय पर्न कंच प्रीत ।।
जादवी प्रत्येक अंगना दसौदसौ कुमार। रूप शील विक्रमी धनी बड़े बली उदार ।।

दोहा -

या पैसठ अध्याय मैं , बानासुर बरदान ।
ऊषा जन्म कथा बहुर , अनुरुध बन्धन जान ।।
बासदेव कौरव विजय, कह्यो महा मुनराय ।।
गाय गाय जनके सकल अब मन जात नशाय ।। -2-

चौपाई -

ऊषा अनुरुध ब्याह अनूपा । कहहु यथामति सुन नर भूपा ।।
स्वयम्भू माहि सत काम कुमारा । भये उनहि सुत नाम अपारा ।।
तिना नाम नाम इक आई । विधि प्रसाद तिहि सुन अधिकाई ।।
धर्म मित्र ऊषा की जानी । कर माया कुँअरहि हर आनी ।।
जिहि विधि भयी कथा अब गाई । सावधान सुन नृप मन लाई ।।
ब्रह्मा के सुत कश्यप भयऊ । तिहि तिय दीती सुत दुय जयऊ ।।
हिरण्याक्ष हिरणाकुश नामा । महावीर अजई संग्रामा ।।
हुय बराह हरि एक निपाता । दूसर श्री नर हर कर घाता ।।
तासु पुत्र प्रगटे प्रहलादा । भक्त राज अत हरि अहिलादा ।।
तिहि सुत भयो विरोचन भूपा । तासु तनय बल धर्म सरूपा ।। -7-

दोहा -

बामन ह्वै जिहि हरि छलो, दयो पठाय पताल ।
बानासुर तिहिको तनय, भूतल भयो भुआल ।। -8-

चौ.

रजधानी श्रोणित पुर जाकी । गिर कैलाश निकट अति ताकी ।।
शिव सेवक तन मानस बानी । आन देव निंदक अभिमानी ।।
एक दिवस मन मोद बढ़ाई । लागे गावन चंग बजाई ।।
प्रेम विवश पुन नृत्यन लागा । गावत गन संगीत विभागा ।।
सुन सुखन शंकर अनुरागे । ह्वै प्रसन्न संग गावन लागे ।।
गौरी सुत हर अस सुख पायो । बानासुर कह बचन सुनायो ।।
आज प्रसन्न जान सुत मोही । मांगो बर मन भावहि तोही ।।
अस सन्तुष्ट करो नहि काऊ । भयो अंक धीर सुन राऊ ।। -12-

दोहा -

सुन शंकर के बैन इम, बानासुर कर जोर ।
कमलाधार कृपायतन, करिय कृतारथ मोर ।। -13-

चौ.

जरा मरन आमय सुख जीवे । सकल भुवन भूपत मोहि कीजै ।।
बाहु सहस्र प्रबल तन मोरे । प्रगटे नाथ अनुग्रह तोरे ।।
एवमस्तु सुन शंकर कहेऊ । जो तू मांग आज सब दयऊ ।।
महा अजय बर दीन गिरीशा । चला भवन पद रज धर शीशा ।।
बाढ़ी अति अपार मन गर्वा । जीतन चलो महीपन सर्वा ।।
परे जहाँ तहँ युद्ध अपारा । जीते भूप भूप बर सारा ।।
सुन समर्थ सबनी पाताला । नायउ माथ दिया पद भाला ।।
बहुर सकल दल पालन देखे । जुरे न कोउ रनवीर विसेखे ।। -17-

दोहा - मद प्रमत्त बलवन्त निज , भुज बल तोलन कीन ।
महि उठाय अहि शीश तें, तम तुरन कर लीन ।। -18-

चौ. जुत अभिमान मुदित गृह आवा । निज प्रसाद अभिमत बल पावा ।।
कोट तीन रच पुर पहुं पाला । नीर अग्नि गिर अगम अकाला ।।
बल उन्मत्त फिरो जग धावा । सम भट खोजत कतहुं न पावा ।।
सुर पुर गयो बार बहु धाई । सुन आवत सुर जाहिं पराई ।।
सुनी अमरावती निहारे । दिव्य रत्न लै भवन सिधारे ।।
दिग पालन के लोक सिधायो । सबन पूज भुव शीश नवायो ।।
आवत भेह महा अभिमानी । जन समान त्रैलोकहि जानी ।।
राजन की बहु राज कुमारी । जीत वरी पिय सुन्दर नारी ।। -22-

दोहा - अप्रमेय बल शिवम्भु वर बल मदात भुज दण्ड ।
तब अंगन मर्दन कियो गिरउपार बलवंड ।। -23-

हर गीत - बल गर्व भौमुव भार श्री अनुराग तीर गयो तवे ।
पद पद्म शीश नवाय पाँनन जारयो विनयो मवे ।।
बल दीन बाहु सहस्र नाथ अपार भार नहीं भरी ।
बलवन्त देहु बताय बाय भुजान त्रिप्त तहाँ करी ।।
सुन बान बैन समर्थ अंक भवत छोह अनुज है ।
मम कृत्य को भट भेट है यह गर्व युद्ध अरुद्ध है ।।
प्रत बान के सब भांत क्यों अब आप बांन नसायहू ।
किहि जन्त ते यह मन्द को बल बाहु गर्व मिटायहू ।।

भुमरावली -
भव नाथ यहै सुन बानहि बात कही । कहि है हरि विप्रहिं द्वापर अन्त मही ।
करियो तिनके तन सैगर भांति भले । बल गर्व अखर्व सबै भुज भार दलै ।
सुन शम्भु गिरायहुरी हमि बान कही । हम बान हिये किम जन्मे रातुमहो ।।
शिव बानहि दीन ध्वजा तिह भेद भनो । यह टूट परै तब जन्मेवातु गनो ।। -27-

मोदक - यो सुन मोद भयो मदनीपर । बातर सोच ध्वजै गढ पै धर ।।
सेसयो अभिलाष रहे उर । होय कबै अरि युद्ध करो सुर ।।
बसत कछु यह भात भए सो । सोधत सुरन सैगर के हित ।।
बानवती पटरानी गुना कर । सुत पदी प्रकटी दुहितावर ।।
अष्ट नामवलंक बसा बस । शील सुलच्छिन बार सबै गुन ।।
लोचत पैक गात सुगच्छहि । बाड उठी शशि ज्यों सित पंच्छहि ।।
सम्यहु सप्त नव यह मोदहि । सैता कीडत बाल विनोदहि ।।
आहि बाम पढावन केहित । दीन समोद पठाय सिवाप्रत ।। -31-

प्रहुलिया - पद पद्मन पै धर शीश नाय । जग मात सुता मालिका उठाय ।।
कहि अवा सुन करजोर बात । सुहि चित्त देहु पढाय मात ।।

जलधर माला - बैठी साजे अंग पर यह बाला । देखी जोती जगमग होती साला ॥
लीनो ऐनो कर धर देखो रूपै । शोभा आपै मुख लख मोही भूपै ॥
धाई दासी सत्वर गोदे लीनो। सींचो गाते अरगज वाते कीनो ॥
आयो बानासुर तिहि धामै सौ लौ । नीके ऊषा विहरन लागी जौलौ ॥ -49-

तारक - लखके तनया मन मान विचारी । अब ब्याहन जोग भई सुकुमारी ॥
निज धाम गयो घर बुद्ध बड़ बुलाये । वर रक्षक ऊषहि भौन पठाये ॥
सुन बोल लई बहुधा शुभनारी । पठवाय सुता ग्रह की रखवारी ॥
सब ताहि तहाँ निज की विध सेवै । बहुआमल है तिहि मंदिर भेवै ॥
बहिराय सुता पति हौबे लागी । ग्रह दान करे सब काल सभागी ॥
गिरजा पद पंकज पूज सुप्रीती । कछु बीत गये बलके यह रीती ॥
निस एक सती यह सेज अकेली । पति चाहि हिये सुत सैन नवेली ॥
पति प्रेम भरी उर स्वप्न सुआयो । इक राजकुमार तहाँ ढिंग आयो ॥
घनश्याम किशोर मनोहर सोहै । शिर क्रीट मयूर धरे मन मोहै ॥
मकराकृत कुण्डल कानन राजे । शशि आनन पंकज नैन विराजै ॥
पट पीत लसै दुति दामिन देई । धर अंग अनंग छिपी हर लेई ॥
अति चंचल चार त्रिभुवन धारी । लख रूप विमोहन मोहि कुमारी ॥ -55-

दिग्पाल -

सुस्वपाय मन्द हेरी हित मैन चैन सौं । दृढ़ बैन भाख लीनो गहि पान बैन सौं ॥
बल राव योग मायो निज मोद भूर मान । अभिलाष लाख पूरी पति प्रीत रीत ठान ॥
सुन जाम धाम पायो सुख स्वप्न सैनी । निशि सेज चौंक बैठी गत नींद मैनी ॥
चहुं फेर हेर हारी नहि देख चित्त चोर । विरहाग हीय जागी पलटीत कम्प कोर ॥

दोहा - विरहि चिन्त निशा , घड़ी सो कछु जाय ।
गई चित्र रेखा निकट देखी व्याकुल ताय ॥
दृग दाय मीजत सुमन , प्रगटतहीह उसास ।
अश्रु सर्जित परयंक पट भीज गये सब तास ॥ -59-

दोधक - ऊषहि देख कहू यहि नारी । व्याकुल है किहि हेत कुमारी ॥
मोहि सबै मन कारन भाखो । भेद हिये न कछू अवराखो ॥
मो पितको कुसमांड बखाने ।स्वर्ग पतालन की गत जाने ॥
चाहहि तो मिलऊं तुहि आनी । आयसु दै तव सोच सयानी ॥
मो संग शारद नित्य विहारै । काज सबै मनके वह सारे ॥
देव अदेव धनी का दोऊ । मो गुन विक्रम जान न कोऊ ॥
ही तबके दिवी वर पायो । आज सबै तुहि वर्ण सुनायो ॥
दुस्तर मोहि कछू जग नाहीं । जो कहिहै करहौ पल माहीं ॥ -63-

रूपमाला-
चित्र रेख विचित्रता सुन भाख ऊषा बात। लाज लागत तोहि कहत बीत जो सुहि रात ॥
सुर्ख रूप अनूप आय समीप स्वप्न मझार । मैन कर्ण सरोज लोचन चन्द आनन धार ॥

भूप मौल उठ्ठीन । कोट कोट तुर तैन ।।
बाज रत्थ कुंथ नाग । नारि पूर्ण भूर भाग ।।
सिन्धु पूर जास पास । पौर हीन पुञ्ज भास ।।
ताम्र स्वर्ण कोट ओट । होत न्यू तुर पोट ।। -78-

मेघ विस्फूर्जित छन्द - तुम्हीं विद्या वानी विपुल महिमा ज्ञान अप्रा डरानी ।
लहे तु क्यों ताको अगम नगरी सर्व भाती सयानी ।।
न आवेगो प्यारो कवन दुःखहै जगत माहीं जिये मैं ।
तहेगो को आली कठिन विरहा शेल लागो हिये मैं ।। -79-

प्रद्धतिया - तब विकल बाल विजा प्रबोद । धर धीरज तु मन मान मोद ।।
जग दुस्तर नहिक्षु काज मोहि । पत ल्याय मिलावहु आज तोहि ।।
यह भाख गई उड़के अकास । रथ पौन अस्व मा ा प्रकास ।।
हुय अन्तरिच्छ गवनी उताल । क्षु जात रात अलवाडु माल ।। -80-

चंचला -

आय द्वारिकाय देव न्यू सर्व भौन भौन । राज लोग बाज साल यत्र तत्र गौन गौन ।।
जाय रंग धाम कृष्ण वाम सैन देव देव। चित्त मैं विचित्रताहि चित्रेख लेख लेख ।।
सर्व पेख आय देख पैन तैन काम पुत्रा।स्वप्न मैं रहे विहार वाम कन्यका तदुत ।।
अस्त्र शस्त्र बांध बीर पाहरू जगे अपार। मोहि लान सर्व शीघ्र मैन मोहिनी प्रचार ।।
सेज स्यौ कुमार नारि लै चली तही उड़ाय। लो भई अकाश ज्यौं तहोन पौन पुत्त जाय।।
लै गई चित्रेखी मिटि अऊ बैंक नार । राज दीन जाय लेख राज पुत्र का अगार ।।-84-

तारक - पति देख अचेत भयो तुब उठे । क्षु पाय त्रिया रति कुण्ड पिउठे ।।
मिल मिलहि सर्व वैहि हिये पन लागी । तमनाम भली विधि बोल त्यागी ।।
धन तु कर अद्भुत विग्रम आई । पति प्रान दये तन आन मिलाई ।।
मम काज कियो अपनो प्रन पालो । अति दुस्तर द्वारबती मट पालो ।।
उपकार यहै हित हो मन हेरो । नहि देव परो रिनियां अब तेरो ।।
तुन विगह भाव बहू जग माहीं । धर देह करे उपकार सदाहीं ।।
अब गोर कुमार तुर को अभिलाखै । अरि दुष्टि घराय कुमारहि राखै ।।
कहिके अस चित्र धाम सिधाई । उठ अब प्रीतम के हिग आई ।।
प्रथमै मिलवो मन माँहि विचारी । भय लाज भरी अस राजकुमारी ।।
उतकण्ठ हिये पति भेटन लागी । मुहरे कुमीन कमावन लागी।।
अनुरुध तही तुमके धुन जागे । पहिरा नियेश निहारन लागे ।।
अत विस्मित मै परयाम निहारी। तहै देख परी पर राजकुमारी ।।
कहिको सिय भ्र तु विधि चित्त चुरायो । किहिको यह मन्दिर को तुहि लायो।।
कहि सत्य तवै यह कदन न जाने । विहिको दुलार विनको तुम भाने ।।
तुम फेंट अनेट विलोक पियाको । मन लाज भरी उतकण्ठ सियाको ।।
सिय शोभ निहार हिये हुलसानी। परयैक कहि तुहीं नहि आनी ।। -92-

उर क्रोध भयो सुन सुता बैन । गहि वैश लयो लै और रैन ।।
अनुरुद्धहि दूसर धाम राख । सुन जाय गाय सब पितहि भाख ।।
सुन विरह व्याधनहिं वर्नेजाय । यह भांत नर धन दिन बिताय ।।
सुन आए तबलों बान धाम । अनुरुद्ध बंधे लख व्याल दाम ।।
कहि नारद सुत उर धीर राख । प्रभु पास आहु हौं जाय भाख ।।
सुन ऐहैं हरि बल दल सजाय । अरि जीत तुम्है लैहै सिवाय ।। -42-

मोतीदाम - गए बधि वैश जहाँ नृप बान । कही सब सादर भेद बखान ।।
न अवेष त पद बन्दहि बान । लयौ अवतार जहाँ भगवान ।।
जहे तिनको यह पौत्र कुमार । दियौ तिनको तुम दण्ड विचार ।।
चले अधिराज जबै यह भाख । तबै नृप बान कहे सुत भाख ।।
तबै हम जानत है अभिषेत । धरौ तिहिंतो सुत संगर हेत ।।
कहो तुम बैन मुरारहि जाय । करें रन संगम मोसन आय ।। -145-

दोहा - उषा रमन चरित्र यह , अति पवित्र सुख दाय ।
भव बन्धन ते छूटही , राम रूप नर गाय ।। -146-

इतो श्रीमद भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्णचन्द्रिका रूप सुत , पैसठ मैं अध्याय ।।-65-

0===================0

-66 -

दोहा - यह छियासठ अध्याय मैं , अनुरुद्ध सुध हरि आय ।
यादव दल चतुरंग जय, घेरी अरिपुर जाय ।।
विविध भाँति संगर सुभट , हु है यह अध्याहि ।
बानासुर भुज खण्ड ग्रह , आए अनुरुद्ध ब्याहि ।।
कहि सुन जबतौ हर गयौ , शोणित पुर सुकुमार ।
विकल सकल परवार अत , भए मात मता पार ।। -3-

पद्धरी - नर कहहि परस्पर बैठ मौन । शिशु को हर लै गयो देव कौन ।।
बहु दूत फिरहि महि सोध लेत । सुन नारद आए हरि निकेत ।।
प्रभु आसन दीनो कर प्रणाम । पद बन्द आय बलराम काम ।।
हरि पूछ कहे विप्र जगत भेव । अनुरुद्ध हरे किहि असुर देव ।।
सुत सोध बैन दीजै सुनाय । परवार प्रजा अति दुखित आय ।।
तुम व्यापक हो चिरचर समान । सुनि देत बडाई दास जान ।।
पुर शोणित बानासुर नरेश । सहसन्त सहस भुजधर महेश ।।
हय गय रथ पैदल दल अपार । तिहि कन्या ऊषा छबि धार ।।
चित्रलेखा पर पुरुष दीन ताहि । सपने मह सु निज पतहि चाहि ।।

तन अट्ठदार अछौहनि योधा । धर अस्त्र शस्त्र सब संगर बोधा ।।
सुन सैन साथ सब सन्मुख ठाडे । रन रंग अंग भट उत्सव बाडे ।।
हत पान ध्यान हरको उरधारी । उठ अस्त्र शस्त्र सन जान सम्हारी ।।
रथ बैठ आसु दल मैं चल आयौ । दुहु ओर घोर ध्वन शंख बजायौ ।। -26-

प्रद्धरिया - कर ध्यान बान दल मध्य आय । सब शिव समाधि सरवज्ञ भाय ।।
लेवौ विशेष बन सह भार । चल आसु दास कर हो उबार ।।
पद राजिव राजत पादुकाय । कट पीन सर्व कोपी न आय ।।
तन भस्म व्याल उपवीत धार । अहि कंकनाद भुज दंड धार ।।
भट मुण्ड माल नागेन्द्र हार । गज चर्म कर्न मुद्रा सधार ।।
कंठाग्र विराजत काल कूट । सिर गंग बांध वर जटा जूटं ।।
कुंदेन्दु गात शोभा विशाल । मुख पंच पंच दस नैन ज्वाल ।।
शशिर बाल भाल अरघन गौर । सिर शूल धान पीनाक डौर ।।
अज्वान बाहु तन सिंह खाल । अत भीम भेष हर काल काल ।।
सिर कनक अर्ध विष भंग खाय । असवार भये नंदी बुलाय ।।
संग भूत प्रेत बैताल भीर । भव नाथ गये इम बान तीर ।।
अवलोक हरहि प्रभु सबहि नाय । शिव आये बाणासुर सहाय ।। -32-

दोहा - शिवहि देख अति हर्ष हिय , गहे चरण सुम धाय ।
कृपा सिन्धु निज दास के , संतत रहत सहाय ।।
बहुर भाव सुम बान यह , सुनिये श्री भगवान ।
धर्म युद्ध प्रत्येक भट कीजै सम भट जान ।। -34-

दंडक - धान अनुशासन सरोष सुन गाजे वीर बाजे दुंदुभीन भरे डोल गत धमकी ।
सिन्धुर मदान्ध प्रिन्द स्यंदन प्रयुंजन बनवाव दल पैदल सशोभि सुरधन की ।।
बढंन समेक पेड चपला चमंकत ज्यौं सुरन सरासन्धुति उदय इन्द्र धनकी ।
पुरित दिसान सैन सुरत गिरन भुर आयन भयावन जन प्रलय मेघ गनकी ।। -35-

छप्पय- महा काल के काल हरी हर भेष भयंकर ।
दोउ प्रभु गत अलख विरच संग्राम स्वयं कर ।।
बानासुर जदुचन्द्र जुरे संगर धर धनुसर ।
प्रदमन अरु असकन्ध भिरे अन्दट कर हरि हर ।।
अरु पच्छराट नांदीगन सरे दुवौ मदमत्त रन ।
पुन सैन फेर प्रत्येक भट करत युद्ध वरनीय गन ।। -36-

दंडक- धुर उठ पुर नभ धुर छिपके गये धुर भय भानु सुरकन्दरन्दुरत है ।
घोर घन घोर घन सैन दुन सुर रन डंड तरवाल करवाल बजु परत है ।।
धीरधर धीर धर तीर तन लगत छिदकरत महि गिरत उठसम्हरपुन लरत है ।
तजत भट प्रान हुत चढ़त दिवबान सुत अप्सरा गान सुर धाम पन धरत है ।।-37-

चौ. दै द्विज गाय गयो नृप राई । मगमें मिलो विप्र वह आई ॥
चीन्हि पहिचे निज धेनुहि पाई । दीन हीन लियो तुरत छिड़ाई ॥
कहि यह मोहि दान नृप दीनो । दूसर भाख आप हम लीनो ॥
दोन दुहुन जगरो अति ठानी । पुन चल गए महीपत पानी ॥
कहि नृप एक त्याग अब दीजै । बदले द्रव्य धेन के लीजै ॥
सुन विचार बोले दुव दोऊ । लैहै धेन द्रव्य नहि कोऊ ॥
सुन नृप चरन बन्द कर जोरे । बहु प्रकार दुज विप्र निहोरे ॥
एक धेन दीजै तब गाई । लीजै धेनु द्रव्य मन भाई ॥ -16-

दोहा - दुख दीनो संकल्प कर, स्वत्व शाप हम दीन ।
प्रान संग हमरे गऊ, धरे न लेहु दीन ॥ -17-

चौ. कर हठ विप्र तामसी दोऊ । बहु समुझाय मान नहि कोऊ ॥
कोट धेनु धन कोट दिखाई । गवने भवन त्याग दुज गाई ॥
यह प्रकार गहि पातकहि भाखी । लीजै धेनु आप द्विज राखी ॥
सुन यह अस उचार नृप भयऊ । करत दीन नित सुकृत भयऊ ॥
जिन जाने अघ मोचन हेतू । बहु उपचार कीन नर केतू ॥
कहु गति काल काल बस भयऊ । तन तज धर्म राज ढिंग गयऊ ॥
वैवस्वत नृप आदर कीनो । अर्ध सिंहासन आसन दीनो ॥
बहुर पैठ पर कहि नृप राई । दुख अग माहिं पुन्य अधिकाई ॥ -21-

दोहा - बहु जाने तुमसे भयो, किंचित अघ नर नाह ।
पाप पुन्य है मे प्रथम, कहौ भोगहौ काह ॥ -22-

चौ. सुन नृप भाख जोर दुख लाथा । कौन भयो मोसे अघ गाथा ॥
दान धेनु कीनी पुन दाने । यह अघ भयो भूप बिन जाने ॥
ह्रौषी विप्र दीन नहि लोई । रही धेनु तुम्हरे द्विज सोई ॥
कहि नृप सौ प्रथमे अघ भरहौं । पीछे भोग पुन्य को करहौं ॥
पै सो सपट देह नर राई । रैहो अन्धकूप में जाई ॥
द्वापर अन्त विष्णु अवतारा । हू है हरन महा महि भारा ॥
परस कृष्ण पद मोचहि पै लो । बहुर नहीं यम पास नशेलो ॥
भयो तुरत गिरगिट नर राई । परो सु अन्ध कूप महिं आई ॥ -26-

दोहा - नदी गोमती तीर इक, अन्ध कूप भय दाय ।
तिहि काल ता मे रहो, जीव जन्तु नित खाय ॥ -28-

चौ. जब यदुवीर कृष्ण अवतारा । भयो हरो महि मीडित भारा ॥
ब्रज लीला कर परम सुहाई । द्वारावत गवने यदुराई ॥
भय तेह सुत पौत्र हरि केरे । महा धनुर्धर वीर घनेरे ॥
इक दिन बहु सुत कर हथियारा । गये विपिन हित सिंह शिकारा ॥
करत अहेर त्रिषित जब भयऊ जल हित खोजत कूप ढिंग गयऊ ॥

निरख कूप महं जन्तु विशाला । कहहि अहहि यह ग्राह कि व्याला ।।
कोउ कहि सरट सुनिउ हम काने । कहहि याहि सुर पुरुष पुराने ।।
पुन सबके मन अचरज आयौ । काढ़न हित तिन मंत्र दृढ़ायौ ।। -31-

दोहा -
बाँध बसन रजु काढ़ही, कर कर बल बलवान ।।
कढ़ौ नहीं तिनके कढ़े, तब तब जतन विधान ।। -32-

चौ.
कछु शिशु धाय द्वारकहि गयऊ । कृष्ण चन्द्र प्रत भाखत भयऊ ।।
सुन यदुनाथ तुरत तँह आये । जहाँ कूप सुन सरट न्हाये ।।
प्रभु सर्वज्ञ जान सब कारन । विदित जान जग अधम उधारन ।।
देख हरिहि कहि सुंदरन धाई । कूप सरट विशाल भय दाई ।।
कढ़त नहीं यह जतन हमारे । हम सब कर उपाय पचिहारे ।।
सुन शिशु बैन कूप हरि गयऊ । सरटहि चरन छुआवत भयऊ ।।
परसत चरन भूप तन पावा । मानहु अबहि भवन ते आवा ।।
पद पंकज प्रभु के गहि राई । शीश नाय पद विनय सुनाई ।। -36-

दोहा -
प्रणतपाल पद वेद बुध, अधम उधारन बान ।
यही काल बहु दुख उदय, काढ़ौ कृपानिधान ।। -37-

चौ.
शिशु सब सुन यह देखत भयऊ । विस्मय सहित कृष्ण प्रत कहयऊ ।।
को यह तात कहिय मम नाई । किहि अघ सरट देह यह पाई ।।
सुन शिशु बचन भाख यदुनाथा । बरनहु भूप सकल निज गाथा ।।
तुम सर्वज्ञ प्रणत अनुगामी । कहहु सुजान तन कारन स्वामी ।।
नाम मोर नृग सब जग जाना । प्रभु हित कीन धनु धन दाना ।।
एक दिवस कर कारन येहा । जिहि अघ भई सरट मम देहा ।।
सहस धेनु निज आन्हक लीनी । कर संकल्प द्विजन कहं दीनी ।।
दूसर बोस दान जुत गाई । मेरे अनजाने इक आई ।। -41-

दोहा-
मैं सब सेन संकल्प तिहि, दूसर दुज कहं दीन ।
मैं भूसुर ग्रह को चलौ, प्रथम विप्र मगचीन ।। -42-

चौ.
लीन छुड़ाय गाय दुज सोई । भाख काल तुम दीनी मोई ।।
दूसर कहं आज हम पाई कर संकल्प दीन नृप राई ।
मेरी मेरी भाखत सोई । आये प्रभु मेरे ढिग दोई ।।
तब मैं तिनै बहुत समुझावा । कोट कोट धन धेनु बतावा ।।
दो मैं तजौ सुरभि इक कोऊ । लेहु धेनु धन भावहि जोऊ ।।
यह कहि भवनहि गये रिसाई । लीपे राख आप अब गाई ।।
पुन उन धेनहि छाँडि सिधायौ । मैं हठ जान बैठ पछितायौ ।।
अन्तकाल जमके गन आई । धर्मराज पहं गये लिवाई ।। -45-

दोहा -
भाख धर्म महिपाल सुन, पुन्य भूर लघु पाप ।।
दो में भोगौगे कहा, प्रथम बखानी आप ।। -46-

चौ. तब मे वर्न धर्म प्रत भेवा । प्रथमै पाप भोग ही देवा ।।
जो कर धनु दान उठ रावै । तरट योन मह सो दुख पावै ।।
तिहिते गिरगिट तन लहि भूपा । बसहु जाय गोमति तट कूपा ।।
द्वापर अन्त विष्णु अवतरहै । यह अघ ते तुमको उद्धरहै ।।
तबही यहे कूप मैं आयो । दुखद सहत बहु काल वितायो ।।
पद पंकज प्रभु के नित ध्याऊं । गहि गहि जीवन को दिन जाऊं ।
आज कृपा करन दर्शन दीनो । मुहि उद्धार पार भव कीनो ।।
तही विमान देव गन ल्याये । भू प बैठ सुरधाम सिधाये ।। -50-

दोहा - कृष्णाईक्षाव सुतन सों, कहि नृप गाय सुनाय ।
विप्र धेरा के द्रोह को, तजो बचन मन काय ।।
विप्र अंश जे हरत है, दयो दान पुन लेत ।
तिनकी महा यह होत है, दंड दंड धर देत ।।
विप्र पूज मोको लहै, रहै धाम मम जाय ।
यह मेरो सिद्धान्त ध्रुव जानहि सो सुख आय ।।
या विध सुतन प्रबोध प्रभु, पुन पुर कौ पग धार ।
राम स्य हरि भजन बिन, नहिं पावै भव पार ।। -54-

सो श्रीमत भागवत, दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका स्य कृत, सरसठ मैं अध्याय ।।-67-

0==================0

-68-

दोहा - यह अरसठ अध्याय मैं, हलधर गोकल आय ।
नंद जसोमत गोपजन, दीने सुख बहु भाय ।। -1-

सवैया - एक दिना सुन बन्ध सनन्द विराजत मंदिर मैं कहि रामा ।।
कन्स निकन्दन हेत भये मधुरै तब गोकल ग्रामा ।।
ता दिन नन्द जसोमत गोपिन ओध दई यह यों सुख धामों ।।
चौस कि सातक मैं हम आवहि सोचत जो तिहारे नर वामों ।।

दोधक - जा दिन ते मथुरा तज आये । सोध कछू उनके नहि पाये ।।
जो तुम्हरो अब आयुस पाऊ । जाय उन्हें मिल आतुर आऊं ।।
कृष्ण कही तु जाहु विहाने । यों सुन श्री बलराम पयाने ।।
पंथ महीपन आवत जाने । आय मिले नित भाग बखाने ।।
या विध राम उजैनहि आये । श्री गुरु के पद शीश नवाये ।।
वास तहाँ दस वासन कीनो । होय विदा गुरु ते मग लीनो ।। -5-

मोटक - गोकुल आय लखौ सबको कुल । केल सुख निकुंज्जन को थल ।।
धीर समीर कलिंद सुता तट । शोभ विहीन सबै बनसीबट ।।
राम्हत धेनु फिरे बन धावत । बाल्हपान तिनै नहि भावत ।।
सारस कीर न कोकिल बोलन । नृत्य बिना बरही बन डोलत ।।
ग्वाल सखा मन मोहन कीरति । हुवै उन्मत्त फिरै चित ही तितं ।।
गोपिन की गति कौन बखान्हु । प्रान बिना तन जीवत जान्हु ।। -8-

निसमालका -

दुर्ब तिय हर्ष हिय कर्ष सब सोचही । भिन्न तन भिन्न मन खिन्न जल मोचही ।।
राम घनश्याम सुन ग्राम सुख भावही । आस हरि आंय अविलम्ब तन राखही ।।
देख मग हाल जग पाल करुना भये । सिकट दुख अन्धं दुख मग्न अतही भये ।।
केत ध्वज देख नर लेख रथ राम को । धाय ढिग आय सब काम तज धामोको ।।
त्याग रथ राम सुखधाम सबको मिले । एक प्रत एक कहि छेम सुनके चले । नंद
नन्द सुन दौर बलभद्र पग है परे । अश्रु अन्हवाय सिर सूप उर लै धरे ।। -10-

तोटक - शिशु वृद्ध युवाजन आय गये । बल जोग प्रनामहि राम ठये ।।
पुन श्री जसुधा पद पदम नये । द्रुत मायल गाय सुकण्ठ लये ।।
अति ही छिलती उर राख रही । दुग नैनन ते जलधार वही ।।
जसुधा जसुधा मन मोद मई । जनु रंकन पारस रास लई ।। -12-

मोटक - पूछत छेमहि नंद अनंतहि । देखिउ आज किते दिन अन्तहि ।।
तात कहो कुशलात कन्हाइय । देवक वा बलदेव सभाइय ।।
है सब आप कृपा कुशरातन । सबी ब्रज भूवन तात सनातन ।।
राम कहो हमरौ सुख मोहन । त्यावत है कब कबहु अपने मन ।।
कृष्ण सदा तुम्हरौ जस गावत । न तात यहै हम सत्य बतावत ।।
रोय उठीं जसुधा सुन । जाग महा उरमै विरहागिन ।।
हाय दई दुख काहि सुनावहुं । मोहन ते सुतकों कह पावहुं ।।
देवक वा अति कीन अनीतहि । भोर लयो सुतको कर पीतहि ।।
पूरब प्रीतहि भूल गये सब । राजहि पाय अनन्द करै अब ।।
गोकलहु मथुरा इक थान्हह । दूर बसे तट सागर कान्हह ।। -17-

मदरा - व्योहर को नहि दोष कछू अहे आपन दामहु खोट भरी ।
बैठ रही अत होय कठोर न तोयहि देत न पाइं धरी ।।
जीवहि क्यों बिन श्यामहि राम सुखी बिछुरे सिर शोक परी ।।
देखहिंगे कब वा सुतको बिधि देवत चंदहि मन्द करी ।
व्याकुल देख बलोधहि राव लखै यह भांत प्रबोध करी ।।
आवहिंगे जननी अवराव कछु दिन मैं उर धीर धरी ।
यौ कहि मज्जन भोजन पान किये सुत नंद अनंद भरी ।
दार पधार लखौ मत गोपिन कृष्ण वियोग कुरोग परी ।। -19-

यह भाँति बरणत नाह गुन गन विकलपौन्डक नार ।
परत नहितल करत करुणा भाँति 2 पुकार ।।
रुदत मातन को श्रवण सुन देव पितु तन छार ।
हुय सात्म हृदय भनहीं हरिह तुरत निहार ।। -31-

दोहा - पौन्डक का रण विजय लहि, दुन्दुभि दोह बजाय ।
कृष्ण चन्द तब सैन जुत , सानंद निज पुर आय ।। -32-

गीत -
मातन को बहु भाँति हृदय प्रबोध दियो । आपुन जाय महावन मैं तप उग्र कियौ× ।
कष्टन साथ समाथ उपास अनेक ठये। तोषित आशु पुरारि कुमार समीप गये ।।
माथ गिरा बरमाग सबै हुत जौन भने । नाय सिरै कर जोर हृदय सुनाय तिनै ।।
जो पितु कृष्ण कियो अब ही बध ताहु करौ । देव पढ़े बर देउ पिता रिन पार परौ ।।
यों सुन भाष अनेम पढ़े नव जतन तयौ । वेदन मंत्रन को उलटे जप जज्ञ रचौ ।।
कृत्यहि कुण्ड समुद्भव हो जिय घोर महाँ । ता प्रत जो कहिहै करहै हुत काज तहाँ ।। -35-

मालना -
सुन शिव जुत वानी आशु धामै सिधायो । हुव मन हुत पाठी बोल पढ़ी करायौ ।।
उलट निगम मैं जाय संकल्प कीनो । घृत जौ तिल मेवा शर्करा होम दीनो ।। -36-

तारक -
मकुण्ड ते राक्षसी घोर कढ़ी है । हरि के पुरपै कर कोप चढ़ी है ।
मग के सब ग्राम दीन जराई । जुत कृत्यहि कोप पुरी मह आई ।।
पुर के चहुँफिर फिरै दव लागी । हुई कै भयभीत प्रजा सब भागी ।।
अति व्याकुल ह्वै प्रभु पास पुकारे । दयाव अब रखहु प्राण हमारे ।।
जन देख दुखी हरि धीरज दीनो । हुत बोल सुदर्शन चक्रहि लीनो ।।
यह कृत्यह पौन्डक पुत्र पठाई । पुरतो अतिआतुर देहु भगाई ।।
पुन देहु बनारस जाय जराई । जुत सैना पौन्डक पुत्र नसाई ।।
सुनके तब बैन सुदर्शन कोपो । तब कृत्यह कृत्य उपद्रव लोपो ।।
अरु काशिय जाय जराय भगाई । दिय पच्छ समेत सुदच्छ बहाई ।।
इय देह मे बहु पराक्रम कीनो । तब गाय मुकुन्दहि गाय सुदीनो ।। -41-

श्री श्रीमद भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका सब जुत , उनहत्तर मैं अध्याय ।।-69-

0===============0

-70-

दोहा - सत्तर अध्याय मैं , दुखित बोल नैहार ।
राम सब वर्णन चित्तद, श्रीकण्ठ विहार ।। -1-

नराच -

सुने विनीत बैन राम रोष मोष व्है गयौ ।
प्रसन्न होय स्याम वीर तीर पत्त नै दयौ ।।
रही न पूर्व मैं तहाँ जहाँ अबै विराजही ।
अनन्त की अनन्त कीर्ति लोक लोक राजही ।।
सवार साम्ब कौ सबै किय सवार स्यंदनै ।
दर समर्प राम कौ निहार कौरवादिनै ।।
सुनी सुता विवाहिय निदेश शोध पायकै ।
विधान वेद ब्याह कीन मंगलादि गायकै ।।
दयौ अपार दाइजौ न वर्ण पार पावही ।
लयौ समोद रामसर्व स्यौं बधू बिदा लई ।।
कछुक बीत पन्थ मै बिताय धाम आयकै ।
सुनी बधू लर समोद रोचजा बधायकै ।। -39-

दोहा -

साम्ब लक्ष्मणा ब्याहु कर कौरव गर्व नसाय ।
आए हलधर द्वारकै लोकन सुख्या पठाय ।।

सुन सब विस्मय कर्म सुत हस्तनपुर इतिहास ।
रूप ताहु अचरज कहा, रच सम सुज शिर बास ।। -40-

इती श्रीमत भागवत, दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप सुत, इकहत्तर मैं अध्याय ।।-71-

0===============0

-72-

दोहा -

सत्तर दे अध्याय मैं, नारद मोह बखान ।
आय द्वारकै रवन प्रत, देखेउ यदुकुल भान ।।

कहि शुक सुन महिपाल सुन, हरिगत अकथ अपार ।
मोहत सुर मुन नाग नर, माया मय संसार ।।

एक दिवस नारद हिये, भौ दृढ़ अपार ।
सोरा सहस सख्य बहु, किम प्रिय रमत मुरार ।।

अति ही मत संभ्रम परी, तब अस कीन विचार ।
जाय द्वारकै हरि चरित, आऊं दृगन निहार ।।

तारक - सुन मोत्युरी दिग आतुर आए । लख बागन भागन आनन्द छाए ।।
द्रुम कल्पन कल्प लता सम सारे । षटपद भ्रमे गुंजारव बहारे ।।
पिक चातिक कीर मयूर पुकारे । भग जात पथी मनजात निवारे ।।
द्वार वापिय कूप अनूपम राजै । मन हेम मय बर घाट विराजै ।।

-75-

दोहा -

पचहत्तर में अध्याय है, नृप गन हरि ढिंग आय ।
अस्तुति कर पद वन्द पुन, मनमें आनंद पाय ।।

कहि मुनीश मणिपाल सुन, गोविंद गाथ उदार ।
राम रूप लिखि गाय हरि, लोकन है उद्धार ।।

तोटक -

नृप आय सबै प्रभु पांय परे । हरि पंकज पावन शीश धरे ।।
तहि शासन आसन बैठ गये । मुख चंद विलोकहि प्रेम मये ।।
पुलक मुख भये उर हर्ष भरे । तब अस्तुति अंजुल जोर करे ।।
जय दीनदयाल कृपाल हरे । हिरणाकुश रावण वंश अरे ।।
द्विज दीनन दासन त्रास हरो । स्वरूप अनेक उदार करो ।।
इस काल बली मुख आय परे । वध दुर्जन दासन पाल हरे ।।
विधि शेष शंकर मोह मये । कविराज समाधन गाथ रये ।।
प्रकटी विनती यथैव नहीं । भव जीव उधारन विष्णु यही ।।
तुम शेष अनेक बहु भने । नहिं पार लहैं निशि दीस गने ।।
तिन वर्णन है सब दर्श करे । जन जानत ते भव पार परे ।।
तन अम्बुज अम्बर श्याम घने । पटपीत विभिन्न दाम बने ।।
भृगु चर्न विराजत हीय लसै । भुज दंड उदंड अखंड बसै ।।
मकराकृत कुंडल सोहि श्रुती । दृग पंकज तुंग विहंग जुती ।।
वरदाय नियारक ग्रीव लसै । हरुक तुम्बन कुम्बन प्रान लसै
वर कुंचित मेचक अलक सरें । अलिमाल निशा घन श्यान गरें ।।
रवि कोटिन शोभ किरीट धरे । मुख पंकज काम मयंक हरे ।।
विधि को तुमसे सम राज सबै । यह रूप बसे उर रूप सबै ।।
बन आतुर विश्व निवास गनो । भव ताप कलाप दुराय हनो ।। -11-

दोहा -

अस्तुति कर नर नारि सब, बहुर भाव कर जोर ।
नाथ सनाथ किये हमें, हेर कृपा दृग कोर ।।
कहिं यदुनन्दन नृपन प्रति, अब निज 2 पुर जाय ।
सुख करि कुटुम्ब जन, भेटहु सब हरषाय ।
राज काज सब साज सब, प्रजा सुखेन बसाय ।।
बहुर युधिष्ठिर यज्ञ में, आयहु आतुर भाय ।
तहि आयुध हस्तीश सब, भूपनि कर पहराय ।
विदा किये यदुवंश मन, चले सकल शिरनाय ।।
भीमसेन अर्जुन सहित, संग सहदेव नरिन्द ।
हस्तनपुर आये मुदित, यदुकुल कैरव चन्द ।।
कृष्णचन्द्र भीमार्जुनहि, मिले युधिष्ठिर आय ।
सादु वचन सुन सर्व सुख, मनमें गैह सिहाय ।। -17-
इति श्रीमद्भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत, पचहत्तर में अध्याय । -75-

0--------------------0

तब द्वारको वन भीतर सिधारहि । विलखी कृष्णा नृपते दरसारहि ।।
हुय लज्जित लोट चलो प्रभको पुन । उर क्रोधभरो हरि मान लिये गुन ।।
हरि को बल पाय युधिष्ठिर गर्वत । हमरो उपहास करावत सर्वत ।।

दोहा -
याको बदलो देहु तुम , पञ्च पुरुष पुत नारि ।
नहु लाखहु धन मात पितु, हौ निज नाम निवार ।।
प्रण कर दुर्योधन नृपत , बैठो आय अबाय ।
बोल शकुनि दुशासने, कीनो छल प्रकाश ।। -11-

एते श्रीमद्भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण यज्ञ्रिका वध कृत , सतहत्तरी अध्याय ।। -77-

0 ---------------------- 0

- 78 -

दोहा -
अठहत्तर अध्याय मैं , शाल्वहि वध यदुराय ।
आवहि पुर द्वारावती , पावहि हर्ष बधाय ।।

कहि मुनीश मखिपाल सुन, हरि कथा बलवान ।
रचो प्रसंग सु बीच ही ,अब सो कहहु बखान ।। -2-

चौपाई - शाल्व भूप एक अति बलवाना । नृप शिशुपाल मित्र धन माना ।।
राजितपति सैन कुण्डिनपुर रहेऊ । हलधर ताहु वक्र मुख कहेऊ ।।
तिहि महान शंकर तप कीनो । हो प्रसन्न हर रथ इक दीनो ।।
धर्म सुवन मख हित यदुराई । इन्द्रप्रस्थ गवने सुख पाई ।।
अन्तर पाय शाल्व अभिमानी । सैन साथ घेरो पुर आनी ।।
करे उपद्रव भूत निकाया । नभ चढ़ विविध दिखावे माया ।।
पावक नीर धूर बरसावे । जिहि अति प्रजा लोग दु:ख पावे ।।
व्याकुल प्रजा लोग पुकारे । शाल्व काल पुर हेरा उबारे ।। -6-

दोहा -
करत उपद्रव विविध विध, दैत्य सबहि सताय ।
अवर होत न को सख्य , शीघ्र रक्षिये आय ।। -7-

चौपाई - धीरज धरै महीपत दीजे । प्रद्युम्न साम्ब बोल तुम लीजे ।।
प्रजा व्यथा सब वर्ण सुनाई । करहु आहु रक्षा दुख भाई ।।
कृष्णचन्द्र बिन गत पुर लीनी । आय दुष्ट उत्पातहि कीनी ।।
पाय भूप आतुर बलबीरा । चढ़ी कटक रथ कवच शरीरा ।।
अरि सन्मुख अति आतुर आये । सैन्यनाथ तब शंख बजाये ।।
प्रद्युम्न तब जत वीर निहारी । शाल्व महा माया विस्तारी ।।
सैन्यनाथ मारी यदुराई । सब माया तम गयो नशाई ।।
बाण वृन्द यदुनंद प्रहारे । भट निकाय रथ नाग संहारे ।। -11-

<u>दोहा</u> -

कहि अनन्त यह भाख है, पितते अधिक पुरान ।
व्यासासन थिर थीवहि, दीनों हम वरदान ॥ -25

<u>गीतका</u> -

पुन सूत पूत प्रसन्न ह्वै मुनि वृन्द बैन बखानही ।
इक दैत्य दुर्मद देव हमरे कृत्य कृत्य न भानही ॥
अहि पुत्र इल्वल नाम पिल्वल दुष्कता जग जानिये ।
सुर धेनु विप्र प्रतीकही हत दीन के दुख दानिये ॥
पुन राम आयुध दीन आयुन यह निर्भय कीजिये ।
हम बैठ रक्षा करहिं जौ लग पूर्ण आहुत दीजिये ॥
तपि कीन यह अरम्भ बैठ अनन्त आसन लाइके ।
तल वर्ष दानव व्योम ते पल श्रौन अस्त्र गिराइके ॥
प्रभु देख पर्म अधर्म कोप निखत्र आयु अवाहिके ।
भुव दंड मंडित ह्वै गये पुन चंड आयध आहिके ॥
गहि तांग ढेलत व्योम ते महि कर्ण मूसल कौं हयौ ।
सब पूर 2 अयान भौ छड़ प्रान बहत विला गयौ ॥ -28-

<u>तोटक</u> -

रण दैत्य अनन्त अनन्त हनै । बहु भीर भौ भय भूर सनै ॥
बध दानव संकुल सैन भयौ । पुन मानव मानव शोक गयौ ॥
सुर मम्बर दुंदुभि देव हनी । मुन पूजन अस्तुति कीन घनी ॥
सुत आशिष विप्रन भेंट दई । अ तब आज्ञ तीरथ बाट लई ॥ -30-

<u>दोहा</u> -

श्रीबलभद्र चरित्र अति, पावन अकथ अनूप ।
होय पार भव सिन्धु के , गाय गाय जन रूप ॥ -31-

एते श्रीमत भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , उन्यासी में अध्याय ॥-79-

0 ================ 0

— 80 —

<u>दोहा</u> -

अस्सी अध्याय में , तीर्थ करहिं बलराम ।
दान देहि विप्रन विपुल , पुन आवहि निज धाम ॥ -1-

<u>मनोरमा</u>-

पुन भूपत राम कथा अति पावन । अघ ओघ नस्यो सुख दारिद दावन ॥
चल नैमिष ते प्रभु दक्षिण दीनिय । जग तीरथ पुंजन पूजन कीनिय ॥
नदि निर्झर कुण्ड सरोवर न्हावत । पुन क्षेत्र महातमको सुख पावत ॥
बहु छोट बिते महि मंडित तीरत । परसे बहु दान दये तहि कीरत ॥
सब क्षेत्र विहारत भूमि निहारत । कुरु क्षेत्र गये निरखौ गत भारत ॥
दुर्योधन भीम महा रण मंडित । गण देखहि लोग दुखी रन पंडित ॥

नीत बुलाय नवीश निकाय बराय सबी छुहलों हित हूवे ।
विप्रह प्रम न शान्ति गयो बबतौ पुर बीच्न बीकत हूवे ।। -19-

<u>दोहा</u> - यह विध हरि मुख बैन सुन , राम रहे अरगाय ।
रखे करो अब बचन कहि , दीन द्वारका राय ।। -20-

<u>गीतिका</u> - राम आये पुरे वृन्द धाये नरे वन्द भूदेव भूपाल भू भालके ।
तात मातान भ्रातान वर्नी नये मित्र भृत्यान भेंटे मेलो पालके ।।
तीर्थ प्रासाद गाथा यथा वर्न है शील भू निम्नगा देश पर्मान के ।
सूतकी पातके दोष कों मोचहू वेग अज्ञा करो पल्ल निर्मान के ।। -21-

<u>प्रफुलिया</u> - सुन उग्रसेन बलभद्र बात । भन वेद करो मख पाय तात ।।
सुन भूप गिरा मनमोद मान । सब दीन दीन मखको विधान ।।
दिय मित्र भृत्य दीने अनंत । गत गंगा तट नैमिष तुरंत ।।
ऋषि बोल यज्ञ प्रारंभ कीन । मख हेत द्रव्य सब भाग दीन ।।
कर राम रेवती अर्ध मान । दिय माग न पायउ विपुल दान ।।
घटधार कुण्ड रच स्वन कीन । सुर आय 2 मख भाग लीन ।।
नट मागन्ध नृत्यत करत गान । सुर वर्ष बज्य बाजहि निसान ।।
कर पूर्णाहुत यज्ञ शुभ विधान । लहि आशिषा अभिमित दीनदान ।।
मख पूजन भोजन द्रव्य दैन । दिय आशिषा है मुन गये ऐन ।।
बलराम ब्रह्म शेषावतार । निरखह निरूपम निर्विकार ।।
अब आदि पुरुष सर्वज्ञ तज । कर मनुज चरित पिहि मोह अज ।।
गुण गान श्रुति बल अप्रमेय । भव कारन तारन सर्व श्रेय ।।
शुभ प्रेम त्रिसंध्य समेत प्रीत । नर गावहिं श्री बलभद्र गीत ।।
रहि कृष्ण चन्द्र के धाम पाय । यह मिर्तदेह मुन राव गाय ।। -28-

एहै श्रीमद भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका ग्रंथ कृत , असी अध्याय ।। -80

0=================0

- 81 -

<u>दोहा</u> - यहै इक्यासी अध्याय मैं , प्रश्न कीन महिपाल ।
सुन नायक मन जीव की , किम छूटहि जम जाल ।। -1-

<u>चौपाई</u>- सुन भूप गिरा हरखे ऋषि भूप । भव ताप बतावन के दिन दूजन ।।
सुन भूपति सावधि ताहि बखानहु । सुन विप्रह ईश्वर मायहि जानहु ।।
एक विद्यहि नाम अकृतहि है सुन । अब वर्नत हौं तिनके गुन औगुन ।।
जिहि नाम अविद्या है दुख दानिन । तिहि के बस जीव भ्रमै भव खानिन ।।

दोहा -

कृश शरीर पट पट फटे , लटे लसी पट ज्ञान ।
तिहि पर देखि विदर्भि जा, खंजन कर निज पान ।।
अन्तःपुर जन कहत तब, देख चिद्र तरकार ।
यह भिक्षुक अकुल को , पुन्न भूत अत सार ।।
जदुपति जगपति रमापति , वासुदेव भगवान ।
मिले ताहि बलभद्र ज्यों , निजवरभाग बखान ।। -33-

गीत -

स्वाद सुधा सम भोजन चार प्रकार किये। वीरस्तुर क्रुरन देखि विदर्भि दिये ।।
बैठिउ मंच अनुपम केशव वर्न तबै । पुरब गाथ प्रसंग रहे गुरु ग्रेह जबै ।।
विधल अन्न अपारहि चार किये गुरुने । सानंद आय रहे हमहु तुमहु घरने ।।
होय कठोर गये तब तेनहि सोच लयो । ब्याहहि के निज मित्र प्रिया पत मोह भयो ।।

-35-

निरूपात्मक -

ब्याह तन चिन्न मन भिन्न विलपादती ।
मित्र तब चित्त ध्रुव मुक्त रागादती ।।
सत्य रति सत्य चित्त धर्म मति मानिये ।
देह प्रिय द्रव्य कर नेह अज्ञानिये ।।
साथ धय राग जग त्याग जिनने दियो ।
ग्रेह धन देह मन ग्रेह तिनने कियो ।।
वास चितनादि मम प्रकृति रच जोय है ।।
लीन नहि होय मन धीर मन सोय है ।।
ज्ञान रति पूर्ण जिन हेम सम जानही ।
कर्म फल त्याग भव बंधन हि भानहि ।।
चित्त जग चित्त जग हित्त हरि भित्त मिल गाय है ।।
ज्ञाहीं कम कुल बीच निरख हि है ।। -38-

दान गुरु ज्ञान मद मान तज सेवही ।
चित्र कुम धैय उरु शुद्र नहि भवही ।।
पाय यह गोप्य मत देव गुरु जोग ही ।
बीच निज रूप नहि ब्रह्म सुख भोगही ।। -39-

पूर्ण ब्र गुरु जगत चित अन्य जिहिते भयो ।
दोय मन सोय पढ़ वेद चिप्र को लयो ।।
भर्म भय भान ज्ञानात्म उपदेश ही ।
तीन भन सोय मन मोय यह वेतही ।। -40-

सेवही -

सेवही गुरु मोहि ईश्वर देव पिप्र सतोसही ।
बीच बाधा जगत के गुरु रूप हृपे हम पोसही ।।

ब्रह्मचर्य गृहस्त बान प्रस्थ सैन्यासी अहे ।
बर्न चार बिचार आश्रम भेद मोहि नहीं यहे ।।
जीव केर कृतार्थ कारक गुरु सम नहि आन है ।
सेव श्री गुरु ते न दूसर धर्म वेद बखान है ।।
आतमा जग जीव के हम प्रथक धर्म न निर्द है ।।
तोसहु गुर सेवते तस नहीं यक न ते लहे ।। -42-

छट पद - दिज घर जब हम तुमहु पढ़े गुर के ग्रह दोउ ।
पठेये बन गुरु मात तात आयता हुम सोउ ।।
गये महाबन मध्य मेघ जल वर्ष करालहि ।
मारुत चला प्रचंड अस्त रविभय तिहि काल हि ।।
तम निबिड रहो दिशा बिदिशा भर तहँ तुम्हरो हम कर पकर ।
तन शीत भीत थर थर कपहि जो बननहि ईंधन हि धर ।।
गुरु जानी यह बात प्रात ढूढन हित धाये ।
देख हमहि कर कृपा दीन असीक सुनाये ।।
तिन कुन पाय कृतार्थ भाव पुन पुन सान्दीपन ।
पुत्र हमारे हेत दुख्ख पाये बन सीतन ।।
वर काम मोक्ष अरथहु धरम नहि जिहि ते अरपी हमहि ।
जस धर्म शिष्य सत्पात्र हुत गुरु सेवा जागी तुमहि ।। -44-

कमदेस - मन कीन धर्म संतुष्ट हमारो । सब होय सत्य संकल्प तुम्हारो ।।
तुम लीन वेद हमसो पढ़ जोई । तिहि सार और गति लोकन कोई ।।
घट ओर सैन तब कंठ बिराजे । हुय मंत्र अर्थ सिध साफल भ्राजे ।।
बरदान दीन गुरु होय सुखारे । सुन कहें बैन द्विजराज उचारे ।। -46-

अनुप - हे देव देव जग कारन स्वामी । संकल्प सत्त अज अन्तर्यामी ।।
है वेद वाक्य तुम्हरे जग जाने । गौरब्य देन गुर ग्रेह पयाने -48-
हरी नाथ साथ रहि श्रीगुरु पाही । है कौन वस्तु जिहि पाइउ नाहीं ।।
लीला तुम्हार जग जान न कोहू । ब्रह्मादि कीट सब मोहहि मोहू ।। -48-

सो श्रीमत भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका स्व कृत , इक्यासी मैं अध्याय ।।-81-

0====================0

- 82 -

दोहा - ब्यासी अध्याय मैं , भेट सुदामा दान ।
किय सराहि बिधि देव हरि , बिदा यौव पर कीन ।। -1-

तारक -

सुत प्रेम कहे पुन बैन सुहाये । सुन भेट कहा हमको तुम ल्याये ।।
तुम्हरे पट भाभिन बाँध सुदीनी । अबलौ तुम मोहि न अर्पन कीनी ।।
मन पीड़ सुभाविन भच्छ सुलीनी । सुक के ग्रह ज्यों अजहु तस कीनी ।।
सुहि सिंचित भेट सभाय पठाये । निध लोकन की सुत मोकह पाये ।।
फल फुल सलाब तोय सुप्रीती । जन मोहि निवेद लहे सिध जीती ।।
बिन भाव महानिध अर्पेहि प्रानी । अस अप्रिय ताहि गहो नहि पानी ।।
सुन लाज भये सुख बोल नमायो । हरि बैन सुने महि शारा नवायो ।।
करुनानिध अन्तर की पहिचानी । अवि आगम को सब कारनजानी ।।
धन अर्थ नहीं सुन के मन माँही । प्रिय प्रेर बने पठये हम पाँही ।।
सिहिलो सुर दुर्लभ लेत सोई । हम देहि छिपे बिहि पाव न कोई ।।
करधार विचार सुरार बहोरी । द्विज के पट तेलिय चोदन छोरी ।।
नहि छुंदिन भाव पढ़े पनसयामा । तब भेट महाप्रिय लाग सुदामा ।।
सुन चोदनये जिन बान्ह चोरे । जग जीवन तंदुल तोषक मोरे ।।
अस प्रिय न मोहि सुरोडस आई । जस तोष भयो तब भेटहि पाई ।। -8-

सवैया -

चोकहि एक सुठी नहि चोदन भोजन श्री यदु नन्दन कीनो ।
स्वाद सराहि सुठी भर दूसरि भच्छन मे जबही चित दीनो ।।
देखि चिदम्बिय कृष्ण पराइन बान लखे परमेश्वरिन लीनो ।
पान गहो प्रभु को उठ आतुर बैन कहा करुना रस भीनो ।।
दीय पदारथ पावन पुर्व मिपा सुत भोग सुवाद पिहेहो ।।
वस्तु मनोहर मित्र दई सब भच्छन आपुन ही कर लेहो ।
आतम हो जग जीवक जीवन आरत क्यों तिनको चिन लेहो ।।
एक छिपे सबदीन दुखे भव दुस्तर को कह मोकह दे हो ।। -10-

दोहा -

छीन लये प्रभु पान ते , छीन चिदम्बी पान ।
दम्पत भेद अभेद यह, काहु परो न जान ।।
मिलन मोद बोलन मधुर , असन शायन अभिराम ।
सुर दुर्लभ सुख लखे तन, पायउ प्रिय सुदामा ।। -12-

पंकज -

जाग प्रात कृष्ण चन्द्र कीन शौच सर्व भान ।
विप्र तोष पायके अशेष पोष जावकान ।।
लेन मित्र के चले पठावने निधि पठाय ।
भेट पर्म प्रेम है विदा सनन्द बन्द पाय ।।
गौन कीन विप्र मौन चित्त चिन्त कौन पाय ।
सर्व अर्थ दायि होय प्रेह भामिनी रिसाय ।।
कर्म है प्रधान जीव चाहि कल्प सुख जाय ।
प्रहन अंक माल कीन भेट मित्र चित्त भाय ।। -14-

ग्रीव नाटक भेंग नागन है विचार किया करी ।
चोर अंकुश तोर पंथहि बन्दना बहुधा करी ।।
ताप अंकुश वात पाप समीप अंकुशी चोर के ।
नाथ सौं प्रिय गेह है तब भाल बैन निहोर के ।।
मित्र है शुभ सन्त नाटक कीन मन्दिर सम्पदा ।
धामको पग धारिए शुभ भौंहिर भावके मुदा ।। -29-

रूपमाला- आप देख अवास सम्पत राज राज समान ।
मञ्च कञ्चन पुष्प पुष्पन रंग रंग वितान ।।
देहरी विद्रुमन की स्फटिक राजत भीत ।
खंभ हाटक रत्न मंडित लाल मर्कत पीत ।।
इन्दु से कलशा लसे ध्वज केत बन्धन वार ।
जाल रंध्र गवाक्ष चित्रित द्वार वज्र किवार ।।
चित्र सार विचित्र भ्राजत गंध स्यों घन सार ।
चार चामर चिन्हनादि मनीन दीप उजार ।।
स्वर्ण सिन्धुर सन्तवे पर्यंक राजत सौंत ।
दुग्ध फेन समान सोहत वस्त्र दिव्य अनीत ।।
रिद्ध सिद्ध प्रसिद्ध सोहत धेनु बाज गयन्द ।
है यही परवार की विधि पूर्ण नारिन वृन्द ।। -31-

चौपाई - निज ग्रीह देख सब भास निहारो । मतिदेव भैव मन माँहि विचारो ।।
यह रिद्ध सिद्ध यदुनन्दन दीनी । मन निरत चिरत अनुकम्पहि कीनी ।।
परमान्द रीत हरिकी हम जानी । अनुभाग माग बरषे दिन दानी ।।
बिन माग दीन बहुधा धन स्वामी । मन व्यर्थ जान मन अन्तरयामी ।।
हरि च वस नाथ सब लायक आही । बिन देन देत यह वेद कहाँही ।।
धन कृष्ण देत धन अँगहि थोरो । वह गाय ताय जिम मानिद मोरो ।।
प्रभु तुष्ट पुष्ट हक योहन पाई । प्रिय राज राज सम मोहि बनाई ।।
हरि भक्त चक्त सब पुन्य प्रमाने । विधि इन्द्र आद पद वादहि जाने ।।
अब जन्म 2 उर प्रीत न थोरी । रति होय कृष्ण पद पंकज मोरी ।।
धन धान धाम ऐश्वर्य बढ़ाई । नहिं प्रीत मोर इन माँह रचाई ।।
सब दास जान पर धर्म विरागी । सब त्याग लोहि हरि के अनुरागी ।।
यह भाँति कीन निश्चय सुचराई । भव राग त्याग वैराग दृढ़ाई ।।

[illegible] - भक्त के प्रसाद चक्त कर्म धर्म दास नाथ ।
अन्त मुक्ति पाय जाय कीन विष्णु धाम वास ।।
कृष्ण भक्त पाय है सुनाय है प्रसंग देह ।
चौर चक्त बन्ध तोर पाय भुक्त मुक्त लेह ।। -33-

मोटक - होत भयो नृप समागम । मज्जन हेत कियो जिन आगम ।।
बन्धव मित्र न तो सहायक । सत्र सखा सुखदा दुख दायक ।।
कौशिल मत्त उसी नर कुन्तल । केकय मत्स्य अनतक केरल ।।
कौरव कांभुज अंग विदर्भ ह । द्राविड़ मद्र जुरे हित पर्वह ।।
नाम कहे अब कौन कहाँ मत । है अपनी भरके अपनी मत ।।
मज्जन है बहु दान दिए धन । जात भए तुम छाडि वहाँ धन ।। -15-

चाँमर -
कृष्ण चन्द दर्श पाहि आय लोक लोक के ।
पाय दर्श पर्श लोग जोग विरन योक के ।।
देखके समागमे सप्रेम हीय हर्षही ।
भिन्न भिन्न बैन ब्र नैन अश्रुपात वर्षही ।।
पूछ क्षेम एक एक भाव भेंट पायके ।
भेंट पुर्ष पुर्ष पाँम साँम अंक लायके ।।
काश्मीर चन्दनादि गन्ध लेप लाइयो ।
नेह नात ज्ञात भ्रात धर्म भेंट पाइयो ।। -16-

चंचरी -
धर्म नन्द सबन्धु कृष्णहि कुन्तराय सुता लखे ।
देख आवत हर्ष संजुत राम कृष्ण मिले सखे ।।
भेंट कुन्तिय मित्र बन्धु सनन्द बैठ सबै गये ।
पेख कृष्ण अनन्त प्रेम अनन्त आतम के नए ।। -17-

गीत -
क्षेमहि पूछ सुता पतदेवहि बैन भनो ।
आतम प्रेम मनोरथ मे पुर आज मनो ।।
हो तुम बन्धु समर्थ विसर्जन मोर कियो ।
आरत सिन्धु परे दुख भौरन काढ़ लियो ।।
देवन आकर रक्षक जो तिहि पक्ष गहे ।
मात पिता सुत बन्धु हितू सनबंध अहे ।।
यो सुनके वसुदेव सुताग्रज बैन भनो ।
मातुल देव विमोहित है यह सत्य गनो ।।
दोष कहा हमको जग जो अधीन अहे ।।
जीवहि कर्म प्रधान वियोग संयोग लहे ।।
यादव कौरहि के विध्वंस विरागन भयो ।
और कृपा अबहीं सब आय अपार रंगो ।।
बोध भयो विध भग्नि प्रमुदित पुत्र लखे ।
आय गये मिलवे बहु भूपत भूर सखे ।।
देख उठे तिनको यदुनन्दन हर्ष हिये ।
भेंट सबे सनमान सुआसन अर्घ दिये ।। -21-

बिरह प्रगुत बिरम दुव भेटे । पुलक शरीर मनहुँ मन भेटे ।।
तरुन शरीर सजीव न पाई । गई निधि वैत मिलहि पुन आई ।।
नहि दुग लाभ जनम कर अंधु । इन सुवती गुन लहत अनन्दु ।। -32-

रूपमाला-

जगत के पित मात माधव प्रेम भक्ति अधीन ।
पुत्र के सम नंदसौ मिल पर्म आनन्द दीन ।।
भेट गोप सवान सानंद कृष्णहु बलराम ।
भृत्य बालक जोग ज्यौं मिलकीन दंड प्रणाम ।।
पुछ लोगन क्षेम सादर मात की सुध पाय ।
धाय कृष्ण जनना आतुर ताप सर्व मिटाय ।।
देखके जसुधाम आवत कृष्ण त्यौं बलराम ।
धाय आतव धेनु धावहि बत्सको लख राम ।।
देह बिह्वल कन्ठ गदगद नैन ढारत नीर ।
लीन अंक लगायके जनु रंक पारस हीर ।।
पाय जीव संजीवनी जिम पाय प्रान शरीर ।
पर्म आनन्द पाय जसुधा अंक लै बलवीर ।। -35-

पंचरी -

भेटयौ बसदेव नंद सनंद भांत सहाहिके ।
रोहिणी जुत देवकी मिल आसु जसुधहि आयके ।।
पुछ क्षेम सप्रेम पुरन बैठियो सन मान सौ ।
होय नेह अधीर भाखहि बैन जुग नदरान सौ ।।
मित्र तात व सारखौ सहि कोन जगत निबाहि है ।
तात मात समान दै सुत पाल लाड़ लड़ाइके ।।
कृष्ण कीरता लेग तुम्हरी सुपत जो जग गाय है ।
संसार सिन्धु अपार पार प्रयास ही बिन पाय है ।। -37-

तारक -

यह धारन साधन की जग माहीं । अपनी पर दैत गने मन माहीं ।।
तुम ही नर भूषण लोक न दोई । पद इन्द्र लहे उपकार न होई ।।
अब गोपिन की सुनिये शुभ गाथा । तन प्राण अहे जिनके व्रजनाथा ।।
निरखे निशिवासर जे बनवारी । पल लागत देहि बिधातहि गारी ।।
बहु धौस गये नंद नंदन आता । जनु पीड़ सुगी रित ग्रीषम प्याता ।।
जल पंकज नाभ निहार सयानी । दृग तृप्ति करे तन मान सयानी ।।
मन दामि मनो पिछुरी घन पायौ । जनु पितत चकोर न चंद मिलायौ ।।
जिम चातिक स्वांति सलप सुभानी । मुख पंकज मैं मन भृंग समानी ।।
मन गोपिन प्रेम अकथ्य अथानी । किहि भांत कहे कवि कूर बखानी ।।
अज शेष महेश गिरा गम नाहीं । किमि छोड़ि दुधै कवि प्राकृत ताहीं ।।
कुशलात हरे तब पुछहि नारी । सुलथाहि गिरा यह भाव बिहारी ।।
हमरे सुख सैतत है हर दाया । तुम आतुन क्षेम कहां कर माया ।।
हम पर्व सनात किधौ यह ओही । तुमको हमरी सुध होत कि नाहीं ।।

मन शंकित गोपिन है हरि राखै । प्रिय मोह कृतघ्नन ही सुख भाखै ।।
तिहिते कहि कृष्ण अवस्थ मेरी । तुम कौन सबै हम तारि न हेरी ।।
भव तम्य अहै जग दीरघ रोगु । कर ईश्वर जीव संयोग वियोगु ।। -45-

कलहंस - जन तुल धुल घन पौन उड़ावे । तिम जीव मोह थिर होन नचावे ।।
यह काल कर्म का विभ्रम जानो । गुन तीन सैं विघ विग्रह ठानो ।।
नहि दोष जीव जग कर्म प्रमावे । हरि भक्ति पार भव सागर पावे ।।
सुन गोपिकान यह बात बखानी । किहि भाँति भक्त तब पावहि प्रानी ।।
यह रूप कौन जिहि आप बखाने । तिहि आद अन्त अज शंभु न जाने ।।
सुन कृष्ण चन्द्र यह बैन उचारी । सुन लेहु भेद भव भक्ति हमारी ।।
अपि तेज वायु पृथ्वी नभ जानो । रज शान्त ताम गुन तीन सुजानो ।।
विध चार खान निर्मान मनाये । कर अण्ड पिण्ड भव स्वेद बनाये ।।
दस द्वार देह दिग्पाल विराजे । मन बुद्ध चित्त अह कारक साजे ।।
मम अंश जीव अहि चेतन धारी । परकाय माय भ्रम जगत दुखारी ।।
कर भक्ति जीव ध्रुव मोकहँ पावे । बिन भक्ति जगत जुग कोट भ्रमावे ।।
पत प्रीत रीत तुमने सुहि ध्यायो । जग जन्म देह निज कौन सुहायो ।।
जग आद अन्त मध मोकहँ मानो । सब माँहि व्याप्त सबसे पर जानो ।।
सुन गोपिकान मनमें भ्रम छायो । करजोर बैन यह भाँत सुनायो ।। -52-

रूपमाला - जीव चार प्रकार आतम भोग ता परमान ।
आदि मध्यहु अन्त व्यापिक आतमी जग जान ।।
जीव आतम भोग भागी तुमहि कैसे पाय ।
होत विस्मय पर्म हमको बोधिए प्रभुराय ।।
बैन गोपिन के सुने इम भाव देत मुरार ।।
ज्यों घटादि अनन्त है मृत्तादि अन्त विचार ।।
जीव चार प्रकार बन्धन कं दुर्जय भूत ।
भोगता नहि आतमी सुख दुःख ज्यों मन सूत ।।
सर्व व्यापक आतमी मन मोहि जानहु सोय ।
भोग आतम पंच भूत पदार्थ जो जग होय ।।
आत्मा अरु आत्मी कर सुहि प्रकाशित जान ।
पाठ जो यह गुप्त भेवहि पाय पद निर्वान ।।
या प्रकार मुरार आपुन स्वयं रूप दिखाय ।
दूर भ्रम सर्व कीन्हि दिव्य ज्ञान सुझाय ।।
होय पर्म प्रसन्न गोपी ज्ञान आतम पाय ।
जान कृष्णहि ब्रह्म चन्द्र सनन्द प्रेम बढ़ाय ।। -56-

मालती - सुन कहहि निहोरी गोपिका पान जोरी ।
हम प्रिय मति भोरी नाथ माया न थोरी ।।

जिहि विध कृष्ण लागे नाम लेही बखानैं ।
तेन मन धर गावै पाद पदमैंतु रागे ।। -57-

दोहा - जिहि बल सुन भव सिन्ध तै काढ़त जीव निकाय ।
ते पद हमरे उर बसहि , सदा बचन मन काय ।। -58-

श्री श्रीमत भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , तेरासी अध्याय ।।-83-

0=====================0

-84-

दोहा - चौरासी अध्याय यह , सकल सुमंगल खान ।
हरि रुक्मिणिहि द्रुपद जा पूछी ब्याह बखान ।।
श्री शुक मुन बोले बहुर , सुन पारीक्षत राय ।
हरि जस सेवत जीव कौ , लोक दुहू सुख दाय ।। -2-

द्रुत विलंबित - गुरुन के गुरु कृष्ण स्वयं हरे । तदिव बोधन गोपिन के करे ।।
तिदिर धमज के बहुरो गए । निरख आवत भूपत ने नए ।।
मुदित बन्धन सेवत भेटियाँ । विविध के सन्मानहि बैठियो ।।
निरख सब सर्व सुखी भए । करत अस्तुत भूप अनन्द ए ।। -4-

पंकज वाटका -

कमल नाभ पाद।र विन्द जस । शुच विचित्र मकरन्द सुधा रस ।।
महत मुख सुख द्वार श्रवहि धर । कन पात्र भर पेय प्रेम पुर ।।
धार बान परमान जीव ब्रज । होहि अभय दूर संसृत रुज ।।
प्रभु स्वरूप प्रवते अनूप उर । दूर होय माया प्रपंच डर ।।
जागृत स्वप्न सुषोप्तन केशव । द्वो ज्ञान वैराग जोग सुख ।।
नष्ट भयो कृत पंच काल गत । रवन धम कियो माधव चित ।।
कौन जोग माया अंगी कृत । नर शरीर हरि धरि क्षठ दास हित ।।
परम हंस जोगिन आराध्य हर । तिहिकी हम मानत शरण कर ।। -8-

सोरठा- कहहि वेद सुख सन्त , जिहि कर धारा पावन परम ।
ब्रह्म अनाद अनन्ता , करत कृपा हम पर सदा ।। -9-

तारक - जग कृष्णहि कृष्ण निवासहि आई । मिल भीरम सुता मिलस्थल ल्याई ।।
सन्मान सौं विध आसन दीनी । सुन हांस विलासन के रस भीनी ।।

कहि कृष्ण हि भीष्मक भूप कुमारी । निज ब्याहु बखान करौ निस्तारी ।।
सुत षोडश सात अष्ट निहारी । किहिको किही भाँति वरौ गिरधारी ।।

-।।-

<u>हरगीता</u> -

सुन रुक्मिणी निज ब्याहु गाथहि लगी तबवर्णन करे ।
नहि मन्थ पर्त सम्राट सम शिशुपाल आयउ मुहि वरे ।।
पर सुमन शिर पदलीन प्रभु जिम सिंह निज बल लेवही ।।
मेरा हृदय बिभूतो पद पदम हम निज लेवही ।।
भन सत्यभामा जग प्रसेनहि सिंह वन हय सुत हयौ ।
यह बात सुन दुख पाय पित प्रभु को कलंक प्रगट दयौ ।।
पद प्रथम सा धन्याहि मुहि यह दोष लाज हिये भई ।
तब तोज वेद विधान कै पित पनी पुन प्रभु को दई ।।
कहि जाम वन्त्या जगत तन सम्भूत हे पिता अहे ।
पित राम प्रत अजनाथ प्रत नर धोस सत्ताइस वहे ।।
पर ध्यान जान मुकुन्द मुहि संयुत सिमंतक मन दई ।
यह भाँति मै यदुनाथ के पद पदम की दासी भई ।।
रवि नन्दनी पुन कहन सुन पाँचाल भूप सुता कथा ।
हम कीन पुरव उग्र तप हरि हेत कर जोगी जथा ।।
प्रभु दीन यह बरदान द्वापर अन्त नर तन धारहौ ।
तुहि पर्णं हौं तट आयके इम कर्ण पाय सुरार हौं ।।
तब मित्र वृन्दहि कहन हरि जस कर्णसुन तन मन दियौ ।
प्रभु मम स्वयंम्वर आय भूपन काय मद मर्दन कियौ ।।
जिम स्यानगन मह सिंह निज बल लेय त्यौं हरि मुहि लही ।।
प्रभु कहन दासी जन्म जन्मन होहु प्रभु मेरो यही ।।
पुन भाव सत्यह सप्त वृषभ दैय मोर पिता तबे ।
सुन प्रण नरिन्द निकाय आयउ नथे नहि नथने सबे ।।
इक साथ सातहु नाथ हरि जिम अजा सुत नर नाथ ही ।
मुहि दासवे सुत दीन पित पद कमल धायउ नाथ ही ।।
सुन भाव भद्रा कृष्ण मातुल पुत्र मम उर ग्रह कियौ ।
यह जान पित हरि बोल मुहि सुत दासनी बहुधा दियौ ।।
हम जन्म जन्मन भटक भय अब पाय पद सुख दासऊं ।
वर यतहि सेवा हृदय मम पुर प्रार्थना यह नाऊं ।।
कहि लक्ष्मना सुन द्रुपद नन्दिन नारद सुख हरि जस सुनी ।।
मन भयौ हट हरि कहन यह जस निज वृन्दहि को सुनी ।।
सुत प्रगत सैन प्रीतम प्रत मम हृदय की गति जान कै ।
हरि आयवे हित जन्त दुस्तार बाँध रूप निर्मान कै ।।
जिम सुत स्वयंम्वर माँहि मत्तहि पंथ आयन हित सयौ ।
तिम मोर पित हरि आयवे हित यंत्र अति अद्भुत रचौ ।।

नहि राखित भूपति जग्त के जुग पंथ बन्तान वेध है ।
बहु भांति को तुम्हरे हमारे जड़ भेव न भेद है ।। -20-

मत्त गयन्द - तोर स्वयम्बर मत्त पिनाल ढकौ यह अमर तै तर नांही ।
कम्भ क्यों अविलोक परै जहि मोर स्वयम्बर कौन मनांही ।।
ढांक छहु दिशि खम्भहि बाय धरौ धु कुम्भ परै परछांही ।
देखहि छांहि तरैं पट गै भट वेधहि मच्छहि अम्बर मांही ।।
भूप धनुर्धर वीर बली गन शोर स्वयम्बर को सुन आयौ ।
कै अविलोकन भांति भली तिन जैत्र कछे कर भेद न पायौ ।।
वेधन मत्स कठोर धरौ धनतोन नयौ सुभ ग्रीव नवायौ ।।
हांतन बात भए हतिमान विना श्रम तै धनु नाव छहायौ ।। -22-

कलहंस - जय भाव नारि नर दुन्दुभि दीनी । सुभ पुष्प छुटट वृन्दारक कीनी ।।
नय तप्त दोय दल अंग बनाई । कर कञ्ज मञ्ज जयमाल सुहाई ।।
मन राव राव तह ही चल आई । यदुनन्द चन्द पद चित्त बसाई ।।
अब नीप दीप अवलोकन कीने । मन निन्द वृन्द नहि छुटहि दीने ।।
जयमाल भाल प्रभु के पहिराई 2 नर सांख ढोल धव भेर बजाई ।।
नट नृत्य कृत्य बन्दी यश गाने । हरि देख लोग सुख योष समाने ।। -25-

नराच - बली मुरार दाहु के हकार साज स्यंदने ।
धरे अमेट ओन तुन द्रव्य अस्त्र आपने ।।
समेत मोहि प्राज रथ्य गौन ग्रेह को कियौ ।
समर्थ सर्व भूप धाय छेक पंथ को लियौ ।। -26-

वसंत तिलका -

देखो जुआन दल दीरघ दर्प हारी । धारे विहुण्ड भुव दंड अखंड धारी ।।
को दंड मंड तरजंड चढ़ाय लीनो । सारथ्य दल सन्मुख दल सन्मुख पेल दीनो ।।
हेरे शृगाल जिमि सिंहहि भाग लीने । ठाडे नरिंद असमर्थन युद्ध कीने ।।
ज्यों अन्धकार कर भानु विदार डारौ । शार्दूल देख जिम कुंजर पुंज हारौ ।।
भूपाल एक दल लै हरि सोह आयौ । दीपै विलोक जनु वृन्द पतंग धायौ ।।
सारंग साज शर जाल कराल नायौ । सेना अराल हथै सर्व तच्छ बायौ ।।
संग्राम जीत जस जगत अंग लीनो । सानंद आय निज नग्र प्रवेश कीनो ।।
ताते सनेद पटका शुभ मोहि लीनो । ताजी बनाय जुलरीत समस्त कीनी ।।
पाछे पठाय पिता दाइज दीह दीनौ । देखे अमान मद मानव होय हीनौ ।।
जे सर्व वंश अमला उर मध्य भाये । सो पुन्न पुंज जसो पद पद्म पाये ।।-31-

तोटक - इक षोडश शत सर्व तवै । नरकासुर भी सुख भूप जवै ।।
महिके महिपालन जीत लये । महिके तनया सब छोड दये ।।

बल कर्यो वही प्रभु कर्म करी । दल तेहुक दानव संगिन हरी ।।
हमको तीन है ब्रह्म धर्म धरी । धटका शुभ सोच विवाह करी ।। -33-

हरगीत - तुम दृष्ट था हम यदुधर तब कीर्ति न जावही ।
नहि इन्द्र आसन वासना है बल्ल सुख न रोचही ।।
जग बीच जिन रव आगई तब तुम्ह तिय तिनकौं भई ।
हम धन्य धन्यन मागही तिन चरन रव तिनमें लई ।। -34-

एते श्रीमत भागवत दशम अथन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका लघु कृत , चौरासी अध्याय ।।-84-

0======================0

- 85 -

दोहा - पँचासी अध्याय मैं , ऋषिन आगमन जान ।
पूछे पूजन विप्र सबहि , सादर श्री भगवान ।। -1-

सोरठा - कहि शुकमुनि सुन भूप सावधान हुय हरि सुवत ।
सुन्दर अमल अनूप , जीवन कौं सुह लोकहित ।। -2-

मालनी - यल यल सुखदेवै कृष्ण गाथा सुहाई ।
त्रिय त्रिय व्रत धनै मानमा मान बाई ।।
तब तन ऋषि आये कृष्ण दर्शाभिलाषी ।
मनु तप तन भेडि ब्रह्म विद्या विलासी ।। -3-

छपद - नारद व्यास वशिष्ठ गर्ग गौतम कात्यायन ।
काश्यप पुलह पुलस्त अंगरा वामदेव मन ।।
देवल च्यवन अगस्त अत्र पारासर गालव ।
याज्ञवल्क भृगु भरदवाज मारकंड समार्गव ।।
कौशिक दुर्वास शौनक सनक पुंडरीक स डिल्ल तर ।
सुत जन्हु कन्हु आये ऋषिय देख उठे बलभद्र हर ।। -4-

नीन -

पांडव आदि महीपन देख प्रणाम किये ।स्वागत पूछ सबे हरि आसन श्री दिये ।।
धर्य हृषिन कृष्णन कूपहु दीप ठये । पूज यथाविधि वेदन आशीर्वाद लये ।।
दैन विनास मुकुन्द सुहू कर जोर कहे । लिंग शरीरक दोष दयाकर देख दहे ।।
देखन दुर्लभ वेपद दर्शन मोहि दये । हैवु अबै अतुल कहाँ अस भाग गये ।।

प्रुतिपक्ष – जिहि समय सृष्टि रचना विचार । लै संग जोग माया सुरार ।।
निरमान कीन अग जग अशेष । हम आद पूर्व तिहि समय देव ।।
कर कृपा निवारहु भेद भेव । यह श्याम रूप अब देव देव ।।
नर देह पाय प्रभु गाय गाय । बिन वेद पार भव सिन्धु पाय ।।
तप जोग यज्ञ व्रत ध्यान दान । तब आतम निर्मल को विधान ।।
जबलौ न जीव तब भक्ति लीन । तबलौ न होय भव रोग छीन ।।
तब महाँ प्रबल माया उपाध । अब छिन्न जीव कोउ बंधे साध ।।
सुत देव बैन सुन कृष्ण चन्द्र । सुत भक्ति भाव तोषे मुकुन्द ।।
यदुनाथ कहो सुत देव पान । कर कृपा भाव करुनानिधान ।।
तुम हमरो आदर अधिक कीन । अरु अकिंचन कौं कछु न्यून चीन ।।
जग मोही तै बहु विप्र मान । पूजै कछु मोतै अधिक ज्ञ जान ।।
सुत तीरथ पावन विप्र देह । ते आये तुम्हरी करन नेह ।।
मम वेद वाक्य द्विज वेद रूप । नहि जान परे ते मोह कूप ।।
जग जीव सर्व मम अंश मान । द्विज पूज पूज सब देव जान ।।
यह भाँति बोध करुणा निधान । द्विज भूप दुओ सम भक्ति जान ।।
इम द्विजहि ज्ञान उपदेश कीन । हरि होय विदा पुर पंथ लीन ।।

दोहा –

आये हरि पुर द्वारके, अधिन संग सुख पाय ।
कहहु भूप अस कवन प्रभु , जन पर ममता जाय ।। -38-

सो श्रीमत भागवत, दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , सप्त असी अध्याय ।।-87-

0======================0

- 88 -

दोहा –

अष्ट असी अध्याय मैं , प्रश्न परीक्षत कीन ।
मातहि कारागार प्रभु , परम हेत जत दीन ।। -1-

तारक – यह प्रश्न महीप परीक्षत कीने । सुन वर्नन लाग कृपा रस भीने ।।
अविलोकिक वरतन वर्नन आवे । किम निर्गुन को कव रूप दिखावे ।।
त्रय तीन कारन कारज धारी । प्रकटे प्रकटी जग बाहु पसारी ।।
कछु देखत भेद परे नहि जानी । विरचा जगकौं गुन औगुन सानी ।।
गुन तत्व समान शरीर बनाये । तिहि मै सुत अन्तः कर्न समाये ।।
दस पौन बसे दस द्वारन देवा । प्रत एक दिये क्रिया किम भेवा ।।
हरि अंश बसो तिहिके बिच आई । दुर्लभ जीवहि जीव कहाई ।।
मन्वाद महा भट अग्न धाये । अरु आमय अग्निका ता प्रत बाँधे ।।
यह जीव अशेष कृतारथ नाही । बिन भगत भ्रमे भव सागर माही ।।

अन चिंतन ये हरि लीन भये हैं । भव कल्प विकल्प समस्त हये है ।
तुम्हरे हित देव नराइन गाया । हम वर्नहि नारद कौ नर नाया ।।
इक काल त्रिलोकन लोक सुहाये । मुन नायक छीर समुद्र सिधाये ।।
तह देव नराइन लोकन हेतु । इक कल्प कियौ तप जीवन सेतु ।।
जन लोक अधीस लखै तब ताहीं । तहं नारद जाय कही प्रभु पाहीं ।।
कल्पांत समै वट पत्र डसाये । प्रभु सैन करी तब वेद जगाये ।।
जिम सोवत भूपती नर नाये । गुनवन्त जगावत गाय सुनाये ।।
जब सोवड ते तब जीवन ताहीं । निर्मान कियौ बहुरौ जग ताहीं ।।
प्रथमैं विध हे सनकादि भये हैं । तिन धारन कै ब्रहमास्त्र लये हैं ।।
तबही मुन स्वेत द्वीप सिधारे । जहं ईश्वर श्री अनुरुद्ध पधारे ।।
तहं ब्रहम निरूपन भौ विध नाना । जिहि भांत तुमै हम आद बखाना ।।
नहि सूछम स्थूल शरीर विचारौ । जिहि कर्न सुनौ नहि नैन निहारौ ।।
गुन तत्त कृतातन रंग नरेखा । अहि आद न मध्य न अन्त विशेषा ।।
पग हीन चरै थल कौन सुनाही । कर हीन करैं विध कोट न काही ।।
मुख हीन लखै रस भोगन भोगी । बिन वैन अहै बहु वेद प्रयोगी ।।
श्रुत हीन सुनै लघु दीरघ बानी । तुग हीन लखै जड़ जंगम बानी ।।
बिन घ्रानहि गन्ध ग्रहै सब सोई । तन हीन जनै इस्पर्शहि जोई ।।
अस अद्भुत कर्म अकथ्य अलोकी । कहू काहू कही न सुनी न विलोकी ।।
जग व्यापक है सबसे पर जानौ । किहि भांत महीपत जाय बखानौ ।। -15-

रूप माला - देव विप्रन श्रीपती सुख होहि दानव भूर ।
सोदही सुर सन्त गो द्विज धर्म कै सुत दूर ।।
वेद भिन्न त्रिलोक लोकन होत सगुन आय ।
पालही निज धर्म कौ सुख भार सर्व नसाय ।। -16-

नील - या विध होय निरूपन ब्रहम सरूप लखै । असुतकीन मुनीश्र सदेवन वेद लखै ।।
हर्षित कर्षित नैनन चैन भये । देव महामुन आदसबै अवलंब लये ।। -17-

वेद रूपमाला- जै अरूप विराट सगुन जीत जग्य सरूप ।
आद मध्य न अन्त है तथ और जगत अनूप ।।
दार अन्तर अग्नि है प्रत्यक्ष स्क दिखाय ।
ब्रहम निर्गुन रूप सर्गुन सबै अस्थल आय ।।
हेम भूषण मुख्य का घट होत भांत अनेक ।।
अन्त हाटक मुख्य कारहि त्यौ रहो तुम स्क ।।
कौन भूर भवार्न भ्रम पूर वार अपार ।
भेद भौर तरंग भत्न्ह विधी पालन धार ।।
कोह,ग्राह मनोज अहि सुक लोभ मोह निसार ।
बीच हैसुत ताहु मध्यति शैलाद विचार ।।

जाय जाहु समाय भवहि जन्म जन्म अहार ।
मरत जन्मत कल्प बीता न्हाय अकल उबार ।।
ज्ञान बान पताक भक्त हुँकर्ने धार विराग ।
नाम नावक पावती भव सिन्धु पारहि लाग ।।
या प्रकार सयोग वो विध देय जीव बनाय ।
काल दुर्लभ शरीर दे पन मिले तुमको आय ।।
पाय धर्म अखंड आनन्द छंड सब विकार ।
वे कृतघ्नी कुर कादर आत्म हा मत धार ।
भक्त हीन मलीन ते तन स्वास धमी लुहार ।
भार वाहक ते भ्रमे भव सिन्धु घोर मझार ।।
देह गेह सनेह पुत्र कलित्र चित्त भुलान ।
मोह माया रावरी किम पावही कल्यान ।।
याल वृधु कल्पान्त सोवहु जोग निंद्रहि माहि ।
ज्ञान साधन सत्तहु गुन राग रंगन ताहि ।।
स्वल्प शब्द अकाश है नहि कुलहु मह दाद ।
वेद शास्त्र पुराणहु नहिं कालकी मरयाद ।।
प्राण इन्द्रिय देह आतम जीवहु न रहाय ।
शूर चंदन भुस भूतल शेष तुम जग राय ।। -24-

<u>चौपाई</u>- यहि विध जग असत्य सब आई । तुम्हरे सत्य सत्त दरसाई ।।
विध निषेध बहु भांतिन केरे । क होय बोध नहिं मायहि घेरे ।।
षटहु शास्त्र मीत प्रत जोई । इक निन्दत इक वंदत सोई ।।
चारहु वेद भेद मत रावे । गुन प्रत रीत नीत सब भाषे ।।
आतम वेत्ता झूठ बखाने । भोग भोग ता सत्य प्रमाने ।।
यह विध भव बिरचो भ्रम सानो । किम उबरे जग जीव अयानो ।।
ज्यों ज्यों सुरझन को मत धारो । त्यों त्यों उरझत जात विचारो ।।
जीव हृदय भ्रम तिमिर निकाया । सब न परो सत्य कत माया ।। -28-

<u>दोहा</u> - बानी नहि वर्नन करे, नैन न देखो जाय ।
मन इन्द्रिन की गत नहीं, किहि विध अलख लखाय ।। -29-

<u>चौपाई</u> । काज अकाज बोध नहि आई । बहे जात मानत उतराई ।।
जीव उधार प्रयोग बनाये । भांति भांति सुत संतन गाये ।।
तीरथ व्र जप तप मख व्रत दाना । सम दम दया ज्ञान विज्ञाना ।।
करत कष्ट सिध होत सु जाने । तब अनेक सुर माया ठाने ।।
छलहि लोभ दिखाय भुलाई । पेल स्वर्ग ते नर्क गिराई ।।
भयो दुर्बलता व्याकुल सोई । बिन प्रभु कृपा पार नहिं होई ।।

जौ यह भांति बने संयोगू । तौ निर्मूल होय भव रोगू ।।
सात्विक श्रद्धा भक्ति अमानी । संत बसे जीव उर आनी ।। -33-

दोहा - मनसा वाचा कर्मना , तुमही रति मत वास ।
तुम्हरी कीरत सैन सदा , रहै अचल चल वास ।। -34-

चौपाई - कहि सुन सुन शाशि चैत नरेशा । सुन सुत अस्तुत कौन रमेशा ।।
सुन हर सुमन सुतारथ मानौ । धन्य धन्य कहि सुतन बखानौ ।।
तब ऋषि मन प्रभु पद सिर नायौ । अंजुलि जोर देव गुन गायौ ।।
अंड कटाहि धरा धर स्वामी । हौ सबकी मत अन्तर्यामी ।।
जगत बीर्य कल्याण प्रकाशी । माया नायक रमा निवासी ।।
अज शिव लोकपाल दिगनाथा । काल कर्म सब तुम्हरे हाथा ।।
तिहि प्रभुकौ हम करहि प्रणामा । जो दासन की मत बिन कामा ।।
पाय विदा ऋषि वदन सिधाये । नारद वेद व्यास पहं आये ।। -38-

दोहा - देव देव ऋषि व्यास मुनि , पूछे अति सुख दाय ।
छीर सिन्धु संवाद मुनि , दे पायन प्रत गाय ।। -39-

सो श्रीमद भागवत दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रिका रूप कृत , अट असी अध्याय ।।-88-

0==================0

- 89 -

दोहा - नव अस्सी अध्याय मैं , कह महीप कर जोर ।
सुन शार्दूल कृपाय तन, यह भ्रम बड़ मन मोर ।।
शिव सेवक पावत विभव, रमानाथ जन दीन ।
कहिये कारन कौन यह , मुनि वरतत्व प्रवीन ।। -2-

चौपाई - भाव विरुद्ध दास शिव सोई । कारन प्रकट केर प्रभु दोई ।
जटी अमंगल वेष पुरारी । व्याल कपाल भस्म तन धारी ।।
तिनके जन भोगहि सुख भोगा । विष्णु दास दारिद संयोगा ।।
रमानाथ शुभ गाथ सुवाना । जन हित मत विपरीत निदाना ।।
चाहिय देव दास मत सोई । यहै प्रमान कहै सब कोई ।।
कहि सुन सुन प्रीति नर राई । सुन सरवस प्रणत सुखदाई ।।
राजस तामस सात्विक आई । तीनहु गुनन भेद दिखराई ।।
राजस तामस शिव सिकराई । धन ऐश्वर्य चाह अधिकाई ।।
सात्विक सद्गुन हरि आराधी । रति विराग धन विभव उपाधी ।।
मन ध्रुव हर हरि आतम रूपू । कीने सर्व धर्म अभिषेकू ।।

चौपाई - रथ गत कथन कहे कवि गाई । मारुत मन खगराज लजाई ।।
अति कराल तम चक्र विदारी । भयो पार रथ तम तर भारी ।।
व्यापी सर्व भूत भगवाना । अज अनादि निर्गुण गुनवाना ।।
घनतेज तहँ परो दिखाई । चक्र चौंधी अर्जुन दृग छाई ।।
कोट सूर्य सैकाश प्रकाशा । कारण अखिल ब्रह्माण्ड विलासा ।।
भई पथ गति मति अति हीना । तहि नहि सके भाव हवे दीना ।।
तेज असह तहि परत न मोरे । करुणा सिन्धु शरण अब तोरे ।।
देख पंथ को व्याकुल ताई । दीनी दिव्य दृष्टि यदुराई ।। -53-

दोहा - पाउ चक्र तर चक्र धर , पिरजा तर तट जाय ।
प्रविशा अलौकिक लोक हरि ,कृष्ण खण्ड कहि जाय ।। -54-

चौ. उन्नित कोट विचित्र विराजे । लोकन की उपमा सब लाजे ।।
रवि सम तेज वर्न नहि जाई । परी मनोहर सुन्दर ताई ।।
तासु मध्य धामावलि राजे । अद्भुत अकथ अलौकिक भ्राजे ।।
तिन मध दिव्य धाम इक सोहै । देख ताहि अज सिव मन मोहै ।।
चन्द्र सूर्य सम शुभ वितानां । खम्भ रव हाटक मय नाना ।।
मनिन जडित तह भूप विशेषी । होत चकित चित मंदिर देखी ।।
जाहि कहत शारद सकुच ही । रूप मन्द किम बरनै ताही ।।
रवि सम दिव्य सिंघासन साजे । तापर श्री भगवान विराजे ।। -58-

दोहा - नीर घनो रज नील मन अतिसी पुष्प प्रकाश ।
भावत मद नावत मदन, कोटन गाह विकाश ।। -59-

चौ. चरण कज्ज नख सुवत प्रभाती । सुन मानस मुनाल अलपाती ।।
कट पट पीत दामि मद मोहे । श्री निवास उर भृगु पद सोहै ।।
कर 2 सम तुजबल निध भूरी । मुख छवि सुत मयंक मन दूरी ।।
भृकुट अनंग चाप दुत हारी । नैन ताम रस लोभ निवारी ।।
नासाग्रीव सीव छवि कांनन । कहि नहि सकहिं रूप सहसानन ।।
सुनंदादि षोडश पार्षद दिन । सूर्य मान आयुध चक्रादिक ।।
पुष्टी कीर्ति रमा विभूती । माया रिद्ध सिद्ध मन सूली ।।
सेवहि सब प्रभु पद मन लाई । भृकुटि विलोकहि लोकन राई ।। -63-

दोहा - वासुदेव विश्वातमा , अज निर्गुण गुन धाम ।।
स्वर्ग सकल निहार हरि , कीनी उर्भ प्रनाम ।। -64-

चौ. कीन दण्डवत पंथ बहोरी । सन्मुख सखा ठाढ़ कर जोरी ।।
वासुदेव बोले मुसक्याई । कृष्णचन्द्र प्रति प्रेम बढ़ाई ।।

तुम्हरे देखन हित मन भायो । दुख सुख सहित शरीर भगायो ।।
तुम विभुत पर पूरन मेरी । थापहु धर्म सृष्टि सुत केरी ।।
दासन दुख खल कुलन संहारी । आवहु पर दुख भार उतारी ।।
दुख सुख ले अब गवनहु धामा । सुन निदेश हरि कीन प्रणामा ।।
हरि अर्जुन अरूढ़ रथ भयऊ । मारग द्वारका कर लयऊ ।।
दोनों तुरतहि पुन पुर आई । विप्र आशिष दीन हरषाई ।। -68-

दोहा - हरि चरित्र अद्भुत अमय, वेद न पावत पार ।
कौशलनहि जग जीव पर, माया मय संसार ।। -69-

चौ. अर्जुन प्रभु प्रभाव अविलोकी । निज कृतार्थ मन भयो अशोकी ।।
यह करन पूछे भगवाना । निज मत भ्रम अवहित कर माना ।।
दीन छोह अति दीन दयाला । क्षमा किए मम दोष विशाला ।।
यह विध विविध भाँति पछिताई । हरि पद पूरन प्रीत बढ़ाई ।।
सुन गोपा हरि चरित उदारा । दासन हेत धरहि हेत धरहि अवतारा ।।
अस अद्भुत सत्मिलन निहारहि । सेवक प्राण समान विचारहि ।।
इहि विधि जन्म कर्म प्रभु केरे । गावहि सुर मुन संत घनेरे ।।
जो चाहहि भव पारहि पावा । कृष्ण कथा ताकहँ दृढ़ नावा ।। -73-

दोहा - दो तुरट निज पान प्रभु, कहु श्रीमार्जुन हाय ।
वेद धर्म थापित कियो, कीने दास सनाथ ।। -74-

सो श्रीमद भागवत, दशम अयन हरि आय ।
कृष्ण चन्द्रका रूप सुत, नवे अध्याय ।। -90-

0 ========================= 0

- 91 -

दोहा - यह इक्यानवे अध्याय मैं, कहली कृष्ण विहार ।
शुभ सुन्दर आनन्द मय, चारो फल दातार ।।
कहि मुनीश महिपाल सुन, हरि जस शशि रत चाय ।
जीव सब निज पावहीं, भव बन्धनहि विहाय ।। -2-

चौ. - निज करतुत विभूतन गाई । रिद्ध सिद्ध लोकन प्रत गाई ।।
बसी सकल द्वारावति माँही । विहाव बन्त प्रभुन बस चाँही ।।
सुखी सकल सुर भोग कराही । रुख भय काल कर्म दुख नाहीं ।।
नारि प्रतिष्ठा नर अधिकारी । सुन्दर गुनी ज्ञान अधिकारी ।।

सेवहि प्रभु पद पंकज प्रीती । निरत निरन्तर श्रुत पथ नीती ।।
विरनी अन्धक जादव वीरा । राजत भोज राज रनधीरा ।।
बारह बरन्न धर्म जग माँही । तमन्हि कल कुचाल अघ नाही ।।
कृष्ण चन्द्र मुख चन्द विलोकी । भए सकल जग जीव बिसोकी ।। -6-

दोहा -

सोड़स सहस सताइ बहु , रत्न महल परधान ।
तितने रूप अनूप हरि , क्रीड़ा विविध विधान ।। -7-

चौ.

सकल बनिर्थ पट मदन विमोहत ।शोभा सदन बदन छवि सोहत ।।
दामिन सुत विडम्ब तन धांगा । चन्द विनिंदिक मुख छवि धांगा ।।
जग उपमा गन मान विभञ्जन । क्रीड़हि केल कलन मन रञ्जन ।।
साजत शुभ सिंगार विभूषन । पेखहि पिय मुख चन्द पियूषन ।।
दासी वृन्द सेव विधि साजहि । सब सुपास तिन करतल राजहि ।।
चौर छत्र विञ्जन सुकरारक । पांन गंध रेला पन सारक ।।
पट पालकी सुखासन राजहि । विहिरहि रूप विमान सब साजहि ।।
प्रति निकेत सरवान सुहावन । सुरपन मानसमान विहावन ।। -11-

दोहा -

कोकिल कीर चकोर चक , चात्रिक सारस मोर ।
उड़त सुमन बोलत मधुर , अवण सुखद चित चोर ।।
पंक रहित सर घाट वर , जलज विपुल बहु रंग ।।
विहरत सारस हंस गन, गुञ्जत गुञ्जत भ्रंग ।। -13-

चौ.

सब आराम दम्भ सुख दानी । देवी आय तैस सब रानी ।।
द्रुम निकाय सुरतरु मद मोहे । फूले फले छहूरित सोहे ।।
नव पल्लव नव लता विराजे । निदर वितान वल्लरी भ्राजे ।
लगे फूल फल भार न धरनी । मन मय आल वाल की करनी ।।
देखे हरि विहार सुख छाए । नाक नटीगन औसर आए ।।
हरि छवि देख हीय अनुरागे । सब सब नृत्यन गावन लागे ।।
नृत्य वाद्य गति गान अतीवा । जंगम को मोहे जड़ जीवा ।।
बहु विध प्रभुहि सुखद सरताई लोकन गए भवत घर पाई ।। -17-

दोहा -

प्रमित सकल रनवास गन , सुख निवास यदुवीर ।
द्रुम अवलोकन स्याम के गए सरोवर तीर ।। -18-

कवि.दण्डक -

प्रविसे सकल सुख वेल जल केल जल ललित सुचीन जल
देखिन प्रभा लई ।
भूषन रतन हार उर 2 परत धार वहरि विहार
नारि मेघ चपला भई ।।

पियउर लाग लाग त्याग भाग हुव 2 टूंड पुन कण्ठ लाग
मीन उपमा हई ।
विविध विलास रास हित हुलास हंस बदन विकास वास
कञ्ज कमला जई ।। -19

दोहा - क्रीडा कुन उपचाय हरि , उपजी मदनहि लाज ।
भाज हुरी दीरघ दरी, अति अधीर गति साज ।।
श्रम निवार जल केल कर , रानिन हुव तट साय ।
देखहि सब हरि पुव हरष , परे न लखत लखाय ।। -22-

चौपाई - रानिन जब न देख गिरधारी । भई सकल अति व्याकुल भारी ।।
हुव हुव जल ढूंढन लागी । दाहत हृदय कठिन बिरहागी ।।
मिले न हरि शार सकल निहारी । जल बाहर हुवे कान पुकारी ।।
करहि विलाप कलाप निदाना । द्रवहि देख सुन कुलिश पखाना
तरतरतर तर पूछहि धाई । तुम देखेउ प्रभु देहु बताई ।।
देवन बहुर मनावन लागी । पूजन कहहि देय बलि भागी ।।
तरबस जात गयो धन होई । भई गति त्रियन केर तह सोई ।।
बरण न जाय विषाद अगारा । बिलपहि सब हुरी अजुहारा ।। -26-

दोहा - मीन दीन बिन हीन जल , तिम प्रभु बिन रनवास ।
विरह विकल बिलपत सकल , कल न लहत इक स्वांस ।। -27-

चौपाई ।- द्रुम बन पुन मनाय विध नाना । गति मति अति विश्विप्त समाना ।।
हुवे निरास रच मरन उपाई । प्रगटे प्रणत पाल यदुराई ।।
देख प्रभुहि सब भई हुवारी । जनु विधु उदय चकोर कुमारी ।।
भयो हृदय आनंद अधिकाई । रंकन रतन रास जनु पाई ।।
प्रभु मुख छवि दृग मग उर भरहीं । भूषण बसन निछावर करहीं ।।
रानिन हुव कर सैल किबिन । क्रीडहि विविध केल मन रंजन ।।
नित नूतन विहार अधिकाई । बरण सकी अस किहि मति पाई ।
जात विलास विरच सब काई । सो प्रभु प्रकट सुजन सुख पाई ।। -31-

दोहा - रानी सोरह सहस रास , रूप शील गुण धाम ।।
अष्ट पट्ट महिषीन मिल , विहरत श्री घनश्याम ।। -32-

छप्पमाला - पट्ट रानिन मध्य राजत रुक्मिणी महरान ।
इन्दिरादि विमोहहीं गुण शील निधान ।।
जाहवी दस पुत्र उद्भट कृष्ण के अनुहार ।
ज्येष्ठ प्रद्युम्न काम विमुह लोक जीतन हार ।।

--- :0: ---

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

परिशिष्ट :

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

(क)- संस्कृत :-

1- ऋग्वेद
सम्पादक-पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा (प्रथम संस्करण 1960)

2- श्रीमद्भागवत
महर्षि वेदव्यास

3- काव्यादर्श
दण्डी

4- चन्द्रालोक:
जयदेव

5- काव्यालंकार:
भामह

(ख)- हिन्दी :-

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास
पण्डित रामचन्द्र शुक्ल,
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2022 वि0

2- साहित्यिक निबन्ध
डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त,
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1964

3- सिद्धान्त और अध्ययन
बाबू गुलाबराय,
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-110006, सन् 1965

4- काव्य के रूप
बाबू गुलाबराय,
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-110006, सन् 1964

5- काव्य प्रदीप
पण्डित रामबहोरी शुक्ल,
हिन्दी भवन, रानी मण्डी, इलाहाबाद, सन् 1952

परिशिष्ट : - 2 -

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

6- हिन्दी साहित्य रत्नाकर
डॉ० किरन कुमार जैन,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली, सन् 1955.

7- आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ
कमलापति त्रिपाठी,
विद्याभूषण प्रेस, वाराणसी, सन् 1966.

8- हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि
डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना,
विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा, सन् 1964.

9- श्रीकृष्ण-कथामृत
पण्डित गोविन्ददास व्यास "विनीत"
कमल बुक डिपो, सतघड़ा, मथुरा, सन् 1953 ई०.

10- रस-दोष-अलंकार
द्वारका प्रसाद मीत्तल
रामा प्रेस, बस्ती, सन् 1967.

11- सूरदास और भगवद् भक्ति
डॉ० मुन्शीराम शर्मा "सोम"
साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद, (प्रथम संस्करण-1958).

12- त्रिवेणी
(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)
सम्पादक - कृष्णानन्द,
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी (28वाँ संस्करण 2031 वि०).

13- भ्रमरगीत सार
सम्पादक - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,
रामदास पोद्दार एण्ड सन्स,
साहित्य सेवा सदन, वाराणसी-1 (नवम् संस्करण, संवत्-2020).

14- श्रीमद्भागवत्-कथा (श्रीकृष्ण-कथा)
गिरजाप्रसाद उपाध्याय,
युगान्तर चेतना,
शांति कुंज, सप्त सरोवर, हरिद्वार, द्वितीय संस्करण, सन्-1976.

15- श्रीकृष्ण गीतावली
गोस्वामी तुलसीदास,
गीताप्रेस, गोरखपुर (चतुर्थ संस्करण, संवत् 2014)

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

16- श्रीमद्भागवत् (अनुवाद, नय राधेश्याम)
पण्डित गोविन्ददास व्यास "विनीत"
लाला श्यामलाल हीरालाल,
श्यामकाशी प्रेस, मथुरा, (तृतीय संस्करण, सन् 1927).

17- बुन्देल वैभव (भाग-1, 2, 3)
पण्डित गौरीशंकर द्विवेदी शंकर.

18- संक्षिप्त रामचन्द्रिका
महाकवि केशव,
स्टूडेन्ट स्टोर, बरेली (द्वितीय संस्करण, सन् 1964).

19- मिश्रबन्धु विनोद, भाग-1, 2.
मिश्रबन्धु.

20- भक्ति का विकास
डॉ० मुंशीराम शर्मा "सोम"

21- श्रीकृष्ण चरित्र (16 भाग)
पण्डित गोविन्ददास व्यास "विनीत"
श्यामकाशी प्रेस, मथुरा, सन्-1927.

22- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
पण्डित गोरेलाल तिवारी.

23- ब्रजलाल ग्रन्थावली — वियोगी हरि.

24- मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ
डॉ० सावित्री सिन्हा.

25- हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य
डॉ० सियाराम तिवारी.

26- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त.

27- सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य
डॉ० शिवप्रसाद सिंह.

28- कविप्रिया
आचार्य केशवदास.

29 - रसिक प्रिया
आचार्य केशवदास.

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

30- अलंकार मंजूषा
लाला भगवानदीन
रामनारायण लाल (पब्लिशर एवं बुक सेलर),
इलाहाबाद, (आठवाँ संस्करण, सं० 1993)

31- रीतिकाव्य नवनीत
डॉ० भगीरथ मिश्र,
ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर.

32- काव्यांग त्रिवेणी
पण्डित शिवाधार मिश्र और डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी,
भारतीय प्रकाशन, चौक, कानपुर-1, (प्रथम संस्करण)

33- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व
डॉ० एस०डी० त्रिवेदी,
निदेशक, राजकीय संग्रहालय, झाँसी (प्रथम संस्करण- 1984).

34- रासपंचाध्यायी
श्री हरीराम शुक्ल (व्यासजी).

35- नखशिख
कवीन्द्र मिश्र

36- कविकुल कंठाभरण — दूलह

37- कृष्ण चन्द्रिका — गुमान मिश्र

38- कृष्णायन — मंचित द्विज

39- कृष्ण चन्द्रिका — श्रीमोहनलाल मिश्र

40- रासपंचाध्यायी — श्री नवलसिंह कायस्थ

41- श्रीकृष्ण चन्द्रिका — ठाकुर रूपसिंह

(ग)- पत्र एवं पत्रिकायें :-

1- बेतवा वाणी - दिसम्बर 1980,- डॉ०नर्मदाप्रसाद गुप्त
2- लोक संगम - (बुन्देली अंक) - श्री भगवत नारायण रावत,
छत्रसाल इंटर कालेज, जालौन, वर्ष 1970.
3- बेतवा वाणी - जनवरी 1981 - डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त
4- शोध-मंजूषा) - डॉ० भगवानदास माहौर.

——— :0: ———